ISSN 2277-5587
Indexed in ULRICH

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

शोध श्री

Volume-16 Issue-3 July-September 2015 RNI No. RAJHIN/2011/40531

CHIEF EDITOR
Virendra Sharma

EDITOR
Dr. Ravindra Tailor

shodhshree@gmail.com
www.shodhshree.com

Shodh Shree Volume-16 Issue-3 July-September 2015

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

Virendra Sharma
Chief Editor
Government Girls P.G. College,
Ajmer

Dr. Ravindra Tailor
Editor
Shodh Shree,
Jaipur

Editorial Board

Prof.H.S.Sharma (Retd.)
University Of Rajasthan, **Jaipur**

Prof.T.K.Mathur (Retd.)
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Ravindra Kumar Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Sarah Eloy
Museum The House of Alijn, **Belgium**

Prof. B.P.Saraswat
Dean of Commerce
M.D.S. University, **Ajmer**

Prof. Pushpa Sharma
Kurukshetra University, Kurukshetra **(Haryana)**

Dr. Rajesh Choudhary
Deputy Director (Research)
Indian Council of Historical Research, **NewDelhi**

Dr. Pankaj Gupta
Government P.G. College, **Kotputli**

Advisory Board

Prof. S.P.Vyas
Jainarain Vyas University, **Jodhpur**

Prof. S.N.Tailor (Retd.)
S.D.Government P.G.College, **Beawar**

Dr. Mahesh Narayan
Archivist (Retd.)
National Archives of India, **NewDelhi**

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

Contents

Volume-16 | Issue-3 | July-September 2015

1. आधुनिकीकरण के आलोक में उपचार पद्धति एवं अनुसूचित जाति (नैनीताल जनपद के विकासखण्ड रामनगर के विशेष सन्दर्भ में) — 1-7
डॉ. मनोहर चन्द्र जोशी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

2. कृषि आधारित उद्योगों से रुग्णता:कारण एवं निदान — 8-10
डॉ. प्रवीण ओझा, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

3. प्रशासनिक परिवर्तन में समाचार पत्रों का योगदान (राजपूताना में रियासती प्रशासन और समाचार पत्र:सन् 1920 से 1947 तक का अध्ययन) — 11-17
डॉ. विनोद कुमार केवलरामानी, जयपुर

4. विश्व स्तर पर भारतीय नारी — 18-20
ज्योति नवल उदय, अजमेर

5. आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री प्रणीत 'काकली' में वर्णित विविध भाव — 21-23
ऋतु दीक्षित, आगरा (उत्तर प्रदेश)

6. वर्तमान भारत में मानवाधिकार और महिलाओं की स्थिति — 24-27
डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़, लाडनूं

7. राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्दजी का योगदान — 28-30
नितेश जेफ, जयपुर

8. 'युक्षते हा धरित्री' महाकाव्य में युग चेतना — 31-33
आरती पुण्डीर, आगरा (उत्तर प्रदेश)

9. हिन्दू स्त्री और उत्तराधिकार विधि — 34-38
डॉ. पंकज गौर, अजमेर

10. संस्कारों की आवश्यकता क्यों? — 39-44
हिमा गुप्ता, कोटा

11. जल संसाधनों का प्रबंधन 'ग्वालियर जिले के विशेष संदर्भ में' — 45-48
डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

12. सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता व शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन — 49-50
डॉ. मीरा गुप्ता , ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

13. सम्बन्ध सुधरते नहीं, भारत-पाक के बीच सिर्फ बात ही बात — 51-53
अनिल कुमार शर्मा, जयपुर

14. भिण्ड जिले का पुरातात्विक वैभव 54-56
डॉ. शुक्ला ओझा, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

15. महिला सशक्तीकरण : बहुआयामी परिप्रेक्ष्य 57-61
डॉ. शालिनी चतुर्वेदी, जयपुर

16. पूर्वी राजस्थान की कृषि व्यवस्था के सन्दर्भ में 18-19वीं शताब्दी के साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन 62-65
डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर, जयपुर

17. उत्तर प्रदेश की लोककला (लोकचित्र व लोकगीत) 66-68
अपर्णा श्रीवास्तव, आगरा (उत्तर प्रदेश)

18. मानवाधिकारों का नारी संदर्भ (उत्पीडन एवं विधिक संरक्षण) 69-76
डॉ. योगेश चन्द्र शर्मा, जयपुर

19. 19वीं शताब्दी के मारवाड़ में धर्म का राजनीतिक जीवन व कला पर प्रभाव - एक सर्वेक्षण 77-81
डॉ. तेजेन्द्र वल्लभ व्यास, जोधपुर

20. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि एवं सृजनात्मकता पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के प्रभाव का अध्ययन 82-85
डॉ. अनीता गौड़, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

21. भारत में महिला कामगारों को प्रदत्त संवैधानिक एवं विधिक अधिकार : एक परीक्षण 86-90
डॉ. पंकज गुप्ता, कोटपूतली

22. **Impact of Tourism on Environment of Jim Corbett National Park** 91-100
Madan Mohan Joshi, Nainital (Uttarakhand)

23. **A Comparative Study of Adjustment of Secondary School Students** 101-106
Dr. Jitendra Kumar, Rampur (Uttar Pradesh)

24. **Creating Space for Peace: Sufi abodes amidst political chaos** 107-112
Dr. Veenu Pant, Jaipur

25. **Literature Review on Sleep Disturbances in People with Mental Retardation** 113-116
Dr. Narendra Kumar, Rangareddy (Telangana)

26. **Concerns of Teacher Education Under New Set of Global Conditions** 117-120
Dr. Gaurav Sachar, Ambala (Panjab)

27. **Effect of Shift Work on Health** 121-124
Vandita Sharma & Kanika Varma, Jaipur

28. **Ethnobotanical Uses of Medicinal Plants of Hadoti: A Review** 125-130
Dr. Shivali Kharoliwal, Kota

29. **Geo-political History of Ajmer City** 131-134
Dr. Babli Parveen, Kolkata (West Bengal)

30. **Role And Functions of The United Nations In Global World** 135-138
Dr. Ranjana Garg, Shahpura

आधुनिकीकरण के आलोक में उपचार पद्धति एवं अनुसूचित जाति (नैनीताल जनपद के विकासखण्ड रामनगर के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. मनोहर चन्द्र जोशी
नैनीताल (उत्तराखण्ड)

shodhshree@gmail.com

प्रस्तुत अध्ययन में रामनगर विकास खण्ड के मालधन चौड़ नामक क्षेत्र में स्थित अनुसूचित जाति के सन्दर्भ में चिकित्सा पद्धति के प्रति समुदाय के सदस्यों की मनोवृत्ति को जानने का प्रयत्न किया गया है। ज्ञातव्य है कि सदियों से अनुसूचित जाति के सदस्यों को भारतीय जाति व्यवस्था में निम्न स्थान प्राप्त था। फलस्वरुप यह समूह विकास की दौड़ में भारतीय समाज के अन्य जातीय समूहों की तुलना में पिछड़ते चले गये और सदियों तक निम्नस्तरीय जीवन जीने को बाध्य रहे। प्रस्तुत अध्ययन में अनुसूचित जाति से तात्पर्य उन जातियों से है, जो सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक आधार पर दुर्बल हैं तथा जिन्हें संविधान के अन्तर्गत अनुसूचित जाति में सम्मिलित किया गया है। ''अनुसूचित जाति शब्द सर्वप्रथम साइमन कमीशन द्वारा प्रयोग में किया गया था, जो कि अस्पृश्य लोगों के लिए प्रयोग में लाया गया'' **(आहुजा:1995:322)**। यद्यपि स्वतन्त्रता के पश्चात इन जातीय समूहों के उत्थान हेतु सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर अनेकों प्रयास किये गये तथापि वर्तमान में भी यह समूह अपनी वांछित प्रस्थिति को नहीं प्राप्त कर पाये हैं। प्रस्तुत अध्ययन में मालधन चौड़ क्षेत्र में निवासरत अनुसूचित जाति के सदस्यों में, जो कि क्षेत्र में प्रभु जाति के रुप में निवासरत है, चिकित्सा पद्धति के क्षेत्र में आए बदलावों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

पद्धतिशास्त्र :

प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययन समग्र के रुप में उत्तराखण्ड राज्य के नैनीताल जनपद के विकासखण्ड रामनगर के दक्षिण पश्चिम में स्थित सात राजस्व ग्रामों तथा पाँच ग्राम पंचायतों के संयुक्त तथा अनुसूचित जाति बाहुल्य क्षेत्र मालधन चौड़ का चयन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से मालधन चौड़ का इतिहास अत्यधिक प्राचीन नहीं है। सन 1960 के दशक में उत्तराखण्ड भर में फैले अनुसूचित जाति के सदस्यों को आवास तथा रोजगार उपलब्ध कराने के उद्‌देश्य से इस क्षेत्र कर चयन किया गया। सन 2001 की जनगणनानुसार मालधन चौड़ क्षेत्र की कुल जनसंख्या 8965 में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 8028 है, जो कि अध्ययन समग्र की कुल जनसंख्या का 89.5 प्रतिशत तथा विकासखण्ड की कुल जनसंख्या 70841 का 11.3 प्रतिशत है। प्रस्तुत शोध पत्र में सूचना संग्रहण हेतु मालधन चौड़ क्षेत्र में निवासरत कुल 1702 परिवारों में से 20 प्रतिशत अर्थात 340 परिवारों का चयन दैव निदर्शन की लाटरी पद्धति द्वारा किया गया है। चूंकि सूचनादाताओं में साक्षरता का प्रतिशत कम है अत: साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

उपचार पद्धति :

परम्परागत भारतीय समाज जो, यद्यपि शनै: शनै: आधुनिकता की ओर बढ़ रहा है तो भी वर्तमान में भारतीय समाज के अनेकों समूहों में परम्परात्मक जीवन शैली विद्यमान है। चिकित्सा के क्षेत्र में आये क्रान्तिकारी परिवर्तनों के सन्दर्भ में यह समूह प्राय: कम जागरुक है। आज भी यह समुदाय धार्मिक

विश्वासों, अन्धविश्वासों, एवं जादू-टोने आदि से स्वयं को पूर्णत: मुक्त नहीं कर पाये हैं। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण हेतु यहाँ आज भी सर्वप्रथम झाड़-फूंक, अथवा धार्मिक कृत्यों आदि की सहायता ली जाती है, जो इन समूहों में पिछड़ेपन एवं आधुनिक मानसिकता की कमी को परिलक्षित करता है। इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत अध्ययन में मालधन चौड़ में स्थित अनुसूचित जाति के सदस्यों में भी चिकित्सा पद्धतियों के प्रयोग की सीमा को ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया है, जिसे तालिका संख्या-1 में प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है।

तालिका संख्या-1

सामान्य बीमारी की दशा में अपनाए गये उपचार के साधन एवम उत्तरदाताओं की संख्या

क्र.स.	उपचार के साधन	संख्या	प्रतिशत
1	देशी दवा	49	14.4
2	झाड़-फूंक	211	62.1
3	झोला छाप डाक्टर	45	13.2
4	सरकारी अस्पताल	35	10.3
6	योग	340	100

तालिका संख्या- 1 से स्पष्ट है कि 62.1 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकारा है कि सामान्य बीमारी की दशा में वह सर्वप्रथम झाड़-फूंक की सहायता लेते हैं। 14.4 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि वह उपचार हेतु सर्वप्रथम देशी अथवा घरेलू दवाओं को प्राथमिकता प्रदान करते हैं। इसी क्रम में 13.2 प्रतिशत उत्तरदाता, इस स्थिति में वह सर्वप्रथम झोला छाप डाक्टरों के पास जाते हैं। जबकि 10.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सामान्य बीमारी की दशा में सरकारी अस्पताल से सहायता लेना स्वीकार किया है। चूंकि क्षेत्र में कोई भी निजी अस्पताल स्थित नहीं है, अत: उत्तरदाताओं द्वारा सामान्य बीमारी की दशा में उपचार हेतु इस विकल्प का प्रयोग नहीं किया गया। तालिका से प्राप्त आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि आज भी लगभग 89 प्रतिशत से अधिक उत्तरदाता सामान्य बिमारी की दशा में उपचार के परम्परागत साधनों की ही सहायता लेते हैं। वर्तमान समय में जबकि चिकित्सा के क्षेत्र में नित नये-नये आविष्कार मानव समाज को व्याधियों से बचाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं, उत्तरदाताओं की यह प्रवृत्ति, समुदाय में आधुनिक उपचार के साधनों के प्रति जागरुकता की कमी को इंगित करती है। जो चिकित्सा पद्धतियों के सन्दर्भ में आधुनिकीकरण के प्रक्रिया के सूक्ष्म प्रभावों को ही परिलक्षित करता है।

उपचार पद्धतियों की प्राथमिकता :

तालिका संख्या 1 से यह स्पष्ट है कि वर्तमान में भी मालधन चौड़ में आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में परम्परागत चिकित्सा पद्धतियों को ही प्राथमिकता प्रदान की जाती है। अध्ययन में परम्परागत उपचार विधि से तात्पर्य झाड़-फूंक, देशी दवाओं, घरेलू नुस्खे तथा झोला छाप डाक्टरों द्वारा किये जाने वाले उपचार से है। झाड़-फूंक से तात्पर्य ऐसी चिकित्सा विधि से है, जिसमें यह विश्वास किया जाता है कि तन्त्र-मन्त्रों की सहायता से रोग का उपचार सम्भव है। देशी दवाओं तथा घरेलू नुस्खों से तात्पर्य अपने व्यक्तिगत ज्ञान के आधार पर घर अथवा आस-पास उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की सहायता से किये जाने वाले उपचार पद्धति से है। अन्त में झोला छाप डाक्टरों के सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि ये किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से डिग्री प्राप्त किये डाक्टर नहीं है अपितु यह वह तथाकथित चिकित्सक हैं जो किसी क्लीनिक अथवा किसी डाक्टर के साथ कुछ समय कार्य करने अथवा अनुभव प्राप्त करने के पश्चात अपना स्वयं का क्लीनिक खोल लेते हैं। मालधन चौड़ क्षेत्र में भ्रमण करने पर स्पष्ट होता है कि यहाँ ऐसे क्लीनिकों का अस्तित्व विद्यमान है। इसी क्रम में आधुनिक उपचार विधि से तात्पर्य सरकार द्वारा संचालित अथवा सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त अस्पतालों से हैं, जहाँ रोगी के उपचार हेतु मान्य डिग्री धारी चिकित्सकों द्वारा आधुनिक उपचार प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। ज्ञातव्य है कि अध्ययन क्षेत्र मालधन चौड़ में सरकार द्वारा स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से अस्पताल स्थापित किया गया है।

तालिका संख्या-1 से स्पष्ट है कि सामान्य बीमारी की दशा में उत्तरदाता आधुनिक उपचार विधि की तुलना में परम्परागत उपचार पद्धति को ही प्राथमिकता प्रदान करते हैं तो भी इस सन्दर्भ में और अधिक जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया। इस हेतु मालधन चौड़ में विभिन्न रोगों में प्राथमिकता के क्रम में उत्तरदाताओं द्वारा अपनाये गये उपचार के साधनों को अग्रलिखित तालिका संख्या-2 में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तालिका संख्या-2

विभिन्न रोगों के उपचार में परम्परागत एवं आधुनिक साधनों के प्रयोग की सीमा- प्राथमिकता के क्रम मे

क्र.स.	रोग	परम्परागत उपचार विधि				आधुनिक उपचार विधि				तटस्थ	
		I वरीयता		II वरीयता		I वरीयता		II वरीयता			
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	पैरालिसीस	264	77.6	68	20	68	20	264	77.6	8	2.4
2	पीलिया	301	88.5	39	11.5	39	11.5	301	88.5	-	
3	माइग्रेन	209	61.5	97	28.5	97	28.5	209	61.5	34	10
4	सांप के काटने पर	281	82.6	59	17.4	59	17.4	281	82.6	-	
5	हरपीज/चर्म रोग	219	64.4	102	30	102	30	219	64.4	19	5.6
6	खसरा	291	85.6	38	11.2	38	11.2	291	85.6	11	3.2
7	डायरिया	230	67.6	91	26.8	91	26.8	230	67.6	19	5.6
8	बुखार	196	57.6	138	40.6	138	40.6	196	57.6	6	1.8

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि उत्तरदाता विभिन्न बीमारियों में उपचार हेतु आधुनिक उपचार पद्धति की तुलना में परम्परागत उपचार पद्धति को वरीयता प्रदान करते हैं। लगभग तीन चौथाई उत्तरदाताओं (77.6%) ने स्वीकारा है कि वह पैरालीसिस (लकवा) के उपचार में परम्परागत उपचार पद्धति को आधुनिक उपचार साधनों के स्थान पर वरीयता देते हैं। इसी क्रम में मात्र 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने ही आधुनिक उपचार पद्धति को वरीयता प्रदान की है। 2.4 प्रतिशत उत्तरदाता तटस्थ हैं, जिन्होने इस सन्दर्भ में अपना मत व्यक्त नहीं किया। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि पीलिया, माइग्रेन, सांप के काटने पर, हरपीज एवम चर्म रोगों, खसरा, डायरिया, तथा बुखार आदि बिमारियों के उपचार हेतु भी उत्तरदाता परम्परागत उपचार विधि को ही वरीयता प्रदान करते हैं। 88.5 प्रतिशत उत्तरदाता पीलिया, 61.5 प्रतिशत उत्तरदाता माइग्रेन, 82.6 प्रतिशत उत्तरदाता सांप के काटने पर, 64.4 प्रतिशत उत्तरदाता हरपीज एवम चर्म रोगों, 85.6 प्रतिशत उत्तरदाता खसरा, 67.6 प्रतिशत उत्तरदाता डायरिया, तथा 56.8 प्रतिशत उत्तरदाता बुखार के उपचार हेतु परम्परागत उपचार पद्धति को ही आधुनिक उपचार पद्धति की तुलना में वरीयता प्रदान करते हैं तथा वर्तमान समय में भी उपचार हेतु झाड़-फूंक, देशी दवाओं एवं घरेलू नुस्खों, तथा झोला-छाप डाक्टरों पर ही विश्वास करते हैं। उत्तरदाताओं की यह मनोवृत्ति स्पष्ट करती है कि वर्तमान में भी समुदाय में उपचार हेतु परम्पराओं का मजबूती से पालन किया जाता है जो कि आधुनिकीकरण के प्रभावों के विस्तार में बाधक है।

शिक्षा एवम उपचार पद्धति में सम्बन्ध :

उपचार प्रविधियों के प्रयोग के सन्दर्भ में शिक्षा के प्रभाव को जानने का प्रयास भी प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है। अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि शिक्षा आधुनिकीकरण के प्रसार में सहायक है। शिक्षा के बढ़ते स्तर के साथ आधुनिक जीवन पद्धति को आत्मसात करने की प्रवृत्ति में भी वृद्धि होती है। इस उपकल्पनात्मक तथ्य को ध्यान में रखकर प्रस्तुत अध्ययन में उपचार पद्धतियों के प्रयोग की उत्तरदाताओं की प्रवृत्ति पर शिक्षा के प्रभाव को अग्रलिखित तालिका संख्या-3 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-3

शैक्षिक स्थिति एवम उपचार के साधनों के प्रति उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति

क्र.स.	रोग	निरक्षर		साक्षर		शिक्षित		तटस्थ	कुल परम्परागत	कुल आधुनिक
		पर0 उप0 विधि	आधु0 उप0 विधि	पर0 उप0 विधि	आधु0 उप0 विधि	पर0 उप0 विधि	आधु0 उप0 विधि			
1	पैरालिसीस	86.4	13.6	81.3	18.7	71	24.6	2.4	77.6	20
2	पीलिया	97.6	2.4	87.5	12.5	82.5	17.5	-	88.5	11.5
3	माइग्रेन	80.8	15.2	65.6	25	47.5	38.3	10	61.5	28.5
4	सांप के काटने पर	94.4	5.6	84.4	15.6	74.3	25.7	-	82.6	17.4
5	हरपीज/चर्म रोग	89.6	8.8	65.6	34.4	47	43.7	5.6	64.4	30
6	खसरा	96	4	84.4	15.6	78.7	15.3	3.2	85.6	11.2
7	डायरिया	92.8	7.2	81.2	18.8	48.1	41.5	5.6	67.6	26.8
8	बुखार	79.2	20.8	56.3	34.4	43.2	55.2	1.8	57.6	40.6
9	औसत	89.6	9.7	75.8	21.9	61.5	32.7	3.6	73.2	23.2

सभी आंकड़े प्रतिशत में

पर0 : परम्परागत उप0 : उपचार

तालिका से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्तरदाताओं की शिक्षा के स्तर का, उनकी चिकित्सा पद्धति पर प्रभाव अत्यन्त न्यून है। निरक्षर हो या साक्षर अथवा शिक्षित, उत्तरदाताओं द्वारा दी गयी जानकारी से स्पष्ट है कि वह उपरोक्त बीमारियों के उपचार में परम्परागत उपचार पद्धति को ही प्राथमिकता देते हैं। यद्यपि उपरोक्त तालिका से यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि शिक्षा के बढ़ते स्तर के साथ उपचार हेतु आधुनिक पद्धति के उपयोग का स्तर सूक्ष्म रुप में बढ़ा है तथापि यह कहा जा सकता है कि शिक्षित उत्तरदाताओं द्वारा वर्तमान में भी बीमारियों के उपचार हेतु परम्परागत उपचार पद्धति को ही प्राथमिकता प्रदान की जाती है। औसत से इस तथ्य की पुष्टि भी होती है कि जहाँ 89.6 प्रतिशत निरक्षर उत्तरदाता उपरोक्त बीमारियों के उपचार हेतु परम्परागत उपचार पद्धति को प्राथमिकता देते हैं, वहीं साक्षर उत्तरदाताओं का औसत 75.8 तथा शिक्षित उत्तरदाताओं का औसत 61.5 है। स्पष्ट है कि यद्यपि शिक्षा के बढ़ते स्तर के साथ परम्परागत उपचार पद्धति का उपयोग कम हुआ है तथापि वर्तमान में भी दो तिहाई से अधिक शिक्षित उत्तरदाता परम्परागत उपचार पद्धतियों को ही प्राथमिकता प्रदान करते हैं। तालिका से प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट है कि क्षेत्र में स्थित दलित समुदाय के सदस्यों में चिकित्सा पद्धति के प्रति जागरुकता का अत्यन्त अभाव है। यद्यपि शिक्षा स्तर में वृद्धि से स्थिति में आंशिक सुधार दृष्टव्य है तथापि यह स्थिति इस दिशा में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के सूक्ष्म प्रभावों को ही इंगित करती है।

चूंकि तालिका संख्या-2 से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं द्वारा वर्तमान में भी आधुनिक चिकित्सा पद्धति की तुलना में परम्परागत धार्मिक विश्वासों को ही अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। अत: यह आवश्यक है कि समुदाय में प्रचलित धार्मिक विश्वासों के सन्दर्भ में जानकारी एकत्रित की जाए। चूंकि परम्परागत पहाड़ी क्षेत्रों में वर्तमान में भी जागर और जादू-टोने के प्रयोग की प्रवृत्ति विद्यमान है। अत: प्रस्तुत अध्ययन में इनके प्रयोग के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति को जानने का प्रयत्न किया गया है।

जागर के प्रयोग के सन्दर्भ में :

जागर पूजा अर्चना का एक विशेष रुप है, जो लगभग समस्त उत्तराखण्ड राज्य में प्रचलित है। इस पूजा के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि मानव शरीर में होने वाली किसी भी प्रकार की व्याधि अथवा कष्ट देवी देवताओं के नाराज होने के कारण होती है। साथ ही यह भी मान्यता है कि प्रत्येक मानव को उसके पूर्वजों द्वारा किये गये कर्मो का ही फल इस जन्म में ही भोगना पड़ता है। इसी कारण इस जन्म में मानव के साथ घट रही घटनाएं अथवा कष्ट उसके पूर्वजों द्वारा किये गये कर्मो का ही प्रतिफल है। इन्हीं नाराज देवताओं अथवा पूर्वजों को मनाने के उद्देश्य से जागर का आयोजन होता है। पूजा अर्चना के इस विशेष प्रारुप में ढोल-नगाड़ों का विशेष महत्व है और यह सम्पूर्ण पूजा ढोल-नगाड़ों के मध्य ही सम्पन्न होती है। इसमें परिवार के सभी सदस्य तथा नातेदार सम्मिलित होते हैं। पूजा के इस प्रारूप के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि इसमें भगवान स्वयं किसी व्यक्ति विशेष के शरीर में प्रकट होते हैं तथा लोगों को उनकी परेशानियों का कारण तथा उनसे मुक्ति पाने का मार्ग बतलाते हैं। प्राचीन समय में जागर में ढोल बजाने का कार्य मुख्य रुप से औजी उपजाति के सदस्य किया करते थे किन्तु वर्तमान में इस कार्य को कोई भी व्यक्ति सीखकर कर सकता है। इन्हें जगरिया या दास कहा जाता था। जागर के दौरान जिस व्यक्ति के शरीर में भगवान प्रकट होते हैं, उसे डंगरिया कहा जाता है। इनकी संख्या एक से अधिक भी हो सकती है। जागर में ढोल अथवा कांसे की थाली की सहायता से विशेष ध्वनि तरगें उत्पन्न कर डंगरिये के शरीर में देवताओं का आह्वान किया जाता है तथा उनसे अपनी व अपने निकट सम्बन्धियों की परेशानियों व उनसे मुक्ति का मार्ग जाना जाता है। मालधन चौड़ में स्थित अनुसूचित जाति के सदस्यों के देवताओं के सम्बन्ध में जानकारी एकत्रित करने पर ज्ञात हुआ कि यहाँ पर मुख्यत: दो वंशों के लोग निवास करते हैं। एक जोगीवंशीय जिन्हें, हरज्यू कहा जाता है तथा दूसरे राजवंशीय जिन्हें, कत्यूरी के नाम से जाना जाता है। जागर के दौरान हरज्यू लोगों में मुख्यत: कलबिष्ट, देवी, सैम, लाकुड़ा, गोल्ज्यू तथा नारसिंह आदि देवताओं की आराधना की जाती है। जबकि कत्यूरी लोगों में जियाराणी, भीमाकठैत, पामाकठैत, ध्यामदेव, बरमदेव, तथा गोल्ज्यू आदि देवताओं का आह्वान किया जाता है। देवताओं के सन्दर्भ में एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि मात्र गोल्ज्यू ही एक ऐसे देवता हैं, जिनका आह्वान दोनों वंशों के लोगों द्वारा जागर में किया जाता है। इनके अतिरिक्त दोनों वंशों के देवता अलग-अलग हैं। जागर के आयोजन किये जाने के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति को निम्नलिखित तालिका में स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तालिका संख्या-4
जागर लगाने के प्रति उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति

क्र.स.	मनोवृत्ति	संख्या	प्रतिशत
1	पक्ष में	307	90.3
2	विपक्ष में	33	9.7
3	योग	340	100

ISSN 2277-5587

तालिका से स्पष्ट है कि 9.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में किसी भी अवसर पर जागर का प्रचलन नहीं है। शेष 90.3 प्रतिशत उत्तरदाता जागर के प्रचलन पर विश्वास करते हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ऐसे भी उत्तरदाता हैं, जो किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट होने की दशा में डाक्टर के पास भी इलाज हेतु जाते हैं, किन्तु इनका विश्वास है कि स्वास्थ्य से जुड़ी अनेकों ऐसी भी समस्याएं हैं, जिनका समाधान जागर के माध्यम से ही हो सकता है। अत: इन उत्तरदाताओं की जागर में भी पूर्ण निष्ठा है। इसका मुख्य कारण सम्भवत: जागर से उत्तरदाताओं का प्राप्त होने वाला मनोवैज्ञानिक लाभ है। जिसकी पुष्टि निम्नलिखित तालिका द्वारा की जा सकती है।

तालिका संख्या-5

जागर से प्राप्त होने वाला लाभ एवम उत्तरदाताओं की संख्या

क्र.स.	लाभ का स्वरुप	संख्या	प्रतिशत
1	घरेलू समस्याओं के निदान मे	51	15
2	बिमारियों के निदान में	156	45.9
3	जादू - टोने के निदान में	64	18.8
4	किसी भी रुप में नहीं	33	9.7
5	अन्य	36	10.6
6	योग	340	100

उपरोक्त तालिका जागर के माध्यम से उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त किये गये लाभ के स्वरुपों को व्यक्त करती है। 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं की मान्यता है कि जागर से उन्हें घरेलू समस्याओं के निदान में लाभ प्राप्त हुआ है। 45.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि जागर उनकी बीमारियों के निदान में सहायक है। 18.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि जागर जादू-टोने के निदान में सहायक है। 9.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का स्पष्ट कहना है कि जागर से उन्होने किसी भी रुप में लाभ प्राप्त नहीं किया है। जबकि 10.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उन्होने अन्य रुपों में जागर से लाभ प्राप्त किये हैं। इनमें मुख्य रुप से खोयी वस्तुओं की प्राप्ति तथा पुत्र की प्राप्ति सम्मिलित हैं। तालिका से प्राप्त आंकड़े स्पष्ट करते हैं कि जागर के प्रति समुदाय के सदस्यों में अत्यधिक निष्ठा है, जो कि समुदाय में व्याप्त धार्मिक विश्वासों को परिलक्षित करती है। साथ ही यह स्थिति चिकित्सा के क्षेत्र में उत्तरदाताओं की मानसिकता में जागरुकता के अभाव का भी द्योतक है। सार रुप में कहा जा सकता है कि मालधन चौड़ में स्थित दलित समुदाय के सदस्यों में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता का स्तर निम्न है, जो क्षेत्र में चिकित्सा पद्धतियों के सन्दर्भ में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के सूक्ष्म प्रभावों को ही व्यक्त करता है।

जादू-टोने के प्रयोग के सन्दर्भ में :

धर्म और जादू-टोने के सन्दर्भ को स्पष्ट करते हुए **दुर्खीम** ने कहा है कि ''जादू में भी विश्वास और संस्कार या अनुष्ठान के तत्व होते हैं। उसमें निश्चित मान्यताएं और धारणाएं होती हैं। जादू में विशुद्ध चिन्तन का तत्व अधिक महत्वपूर्ण नहीं होता। इसका उद्देश्य मुख्य रुप से उपयोगितावादी होता है। इसमें क्रिया पक्ष का, बलि, भेंट, प्रार्थना, ध्वनि, संगीत, और नृत्य आदि का उतना ही महत्व है जितना कि धर्म में। जादू में भी उसी प्रकार की शक्तियों की, प्राय: उन्हीं शक्तियों की भी, आराधना की जाती है, जो धर्म में महत्व रखती हैं। मृत व्यक्तियों की आत्माएँ, उनके बाल, उनकी अस्थियां जादूगर की क्रियाओं में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जादू में राक्षसों (भूत-प्रेतों), का महत्व है। जादू एक वैयक्तिक तथ्य है, जबकि धर्म एक सामूहिक घटना है''। **दुर्खीम** का मत है कि ''इतिहास में ऐसा कोई धर्म नहीं, जिसके अनुयायियों के रुप में कोई धार्मिक संगठन या समूह विद्यमान न रहा हो। जादू में यह लक्षण नहीं पाया जाता। जादूगर और उसके ग्राहक के बीच या जादू में विश्वास करने वालों के बीच संगठन का कोई स्थायी सूत्र नहीं होता। जादूगर के ग्राहक तो होते हैं, अनुयायी नहीं होते। जादू-टोना करने वाला व्यक्ति प्राय: पृथकता के वातावरण में कार्य करता है। गोपनीयता उसकी विशेषता है। वह समाज से दूर भागता है। एकान्त में अपना कार्य करता है।'' भारतीय ग्रामीण समाज में जादू-टोने को प्राचीन काल से ही स्थान प्राप्त रहा है। वर्तमान में भी प्रत्येक ग्रामीण संरचना में जादू-टोना करने वाले अथवा इससे छुटकारा दिलाने वाली इकाई विद्यमान है। इसी क्रम में समुदाय के सदस्यों की जादू-टोने के सम्बन्ध में मनोवृत्ति को जानने का प्रयत्न किया गया, जिसे निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

सारणी संख्या-6

जादू-टोने के प्रयोग के प्रति उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति

क्र.स.	मनोवृत्ति	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	229	67.4
2	नहीं	111	32.6
3	योग	340	100

तालिका से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में भी 67.4 प्रतिशत उत्तरदाता जादू-टोने के उपयोग को स्वीकारते हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि वर्तमान समय में, जहाँ प्रौद्योगिकी तथा अन्य आधुनिक साधनों पर मानव की निर्भरता बढ़ती जा रही है, वहीं अध्ययन क्षेत्र में आज भी लोग अपने कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु जादू-टोने की सहायता लेते हैं। इसके विपरीत 32.6 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकारा है कि उनके द्वारा किसी भी रुप में जादू-टोने का प्रयोग नहीं किया गया है। इसी क्रम में उत्तरदाताओं से जादू-टोने के कारणों के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया। इसे अग्रलिखित तालिका संख्या-7 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या-7

जादू-टोने के प्रयोग के कारण एवम उत्तरदाताओं की संख्या

क्र.स.	कारण	संख्या	प्रतिशत
1	शारीरिक कष्ट के निवारण में	96	41.9
2	पुत्र प्राप्ति के लिए	19	8.3
3	धन सम्पत्ति की प्राप्ति हेतु	16	7.0
4	दुश्मनों के कारण	67	29.3
5	अन्य	31	13.5
6	योग	229	100

उपरोक्त तालिका से प्राप्त आंकड़े द्योतक है कि धार्मिक विश्वासों के प्रति वर्तमान में भी उत्तरदाताओं की मानसिकता में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं है। तालिका से स्पष्ट है कि जादू-टोने में विश्वास करने वाले उत्तरदाताओं में 41.9 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने शारीरिक कष्ट के निवारण हेतु जादू-टोने की सहायता ली है। जबकि 29.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपने दुश्मनों द्वारा उनके लिए किये गये जादू-टोने के विरुद्ध जादू-टोने के प्रयोग को स्वीकार किया है। इसी प्रकार 8.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने पुत्र प्राप्ति तथा 7 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने धन सम्पत्ति की प्राप्ति हेतु जादू-टोने के प्रयोग को स्वीकार किया है। 13.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जादू-टोने की सहायता से अन्य लाभ प्राप्त किये जाने को स्वीकार किया है। उत्तरदाताओं द्वारा उनके शरीर में धारण किये गये विभिन्न प्रकार के ताबीज, अंगूठी, डोर आदि भी इस तथ्य की पुष्टि ही करते है।

निष्कर्ष:

विदित है कि प्रस्तुत अध्ययन में मालधन चौड़ स्थित अनुसूचित जाति के सदस्यों में चिकित्सा पद्धति के सन्दर्भ में आधुनिकीकरण के प्रभावों को ज्ञात करने का प्रयत्न किया गया है। अध्ययन से प्राप्त आंकड़े इस सन्दर्भ में आधुनिकीकरण के सूक्ष्म प्रभावों को ही व्यक्त करते हैं। वैश्वीकरण के इस दौर में भी अध्ययन क्षेत्र में मात्र 10 प्रतिशत उत्तरदाता ही सामान्य बीमारी की दशा में सरकारी अस्पताल से उपचार को प्राथमिकता देते हैं। शेष उत्तरदाताओं द्वारा वर्तमान समय में भी देशी दवाओं, झाड़-फूंक और झोला छाप डाक्टरों पर ही विश्वास किया जाता है। पैरालिसीस, पीलिया, माइग्रेन, सांप आदि के काटने पर, हरपीज, अथवा अन्य चर्म रोग, खसरा, डायरिया, तथा सामान्य बुखार आदि की स्थिति में भी इन उत्तरदाताओं द्वारा परम्परागत उपचार विधि को ही प्रथम वरीयता प्रदान की जाती है। यहाँ यह तथ्य अवश्य आश्चर्यचकित करता है कि उपरोक्त समस्त बीमारियों में परम्परागत उपचार विधि को प्रथम वरीयता प्रदान करने वाले उत्तरदाताओं में निरक्षर (89.6 प्रतिशत) व साक्षर (75.8 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के साथ-साथ शिक्षित (61.5 प्रतिशत) उत्तरदाता भी सम्मिलित हैं। इसी क्रम में क्षेत्र में अधिकांश उत्तरदाता अपनी समस्याओं के निदान हेतु जागर का आयोजन करते हैं। जागर का आयोजन करने वाले 90.3 प्रतिशत उत्तरदाताओं में सर्वाधिक प्रतिशत (45.9 प्रतिशत) उन उत्तरदाताओं का है, जो स्वयं की अथवा उनके परिवार के सदस्यों की बीमारियों के निदान हेतु जागर का आयोजन करते हैं। इसके

अतिरिक्त वर्तमान वैज्ञानिक युग में जादू-टोने का भी पर्याप्त प्रभाव उत्तरदाताओं की मनोवृत्ति में परिलक्षित हुआ है। दो-तिहाई से अधिक (67.4 प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने उनके द्वारा जादू-टोने के प्रयोग को स्वीकारा है। जिनमें उन उत्तरदाताओं (41.9 प्रतिशत) का प्रतिशत सर्वाधिक है जिन्होंने शारीरिक कष्ट के निवारण तथा अपने दुश्मनों के कारण जादू-टोने का प्रयोग किया है। चिकित्सा पद्धति के सन्दर्भ में प्राप्त उपरोक्त जानकारी के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान में एक ओर जहाँ, विज्ञान के नित नये-नये प्रयोग और उपचार पद्धतियां विभिन्न रोगों के उपचार को सरलता प्रदान कर रही हैं, वहीं अध्ययन क्षेत्र मालधन चौड़ में वर्तमान में भी विभिन्न रोगों के निदान हेतु परम्परागत उपचार पद्धतियों, जागर, तथा जादू-टोने आदि को अधिक महत्व दिया जाता है, जो समुदाय में चिकित्सा पद्धति के सन्दर्भ में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के सूक्ष्म प्रभावों को ही परिलक्षित करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आहूजा, आर. (1995) भारतीय सामाजिक व्यवस्था, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली*
2. *दुर्खीम, इमाइल (2001) द एलीमेन्ट्री फोर्म्स ऑफ रिलीजियस लाइफ, ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.एस.ए.*
3. *दुर्खीम, इमाइल (2001) द एलीमेन्ट्री फोर्म्स ऑफ रिलीजियस लाइफ, ओक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.एस.ए.*

कृषि आधारित उद्योगों से रुग्णता:कारण एवं निदान

डॉ. प्रवीण ओझा
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास का सर्वोत्तम रास्ता औद्योगीकरण है क्योंकि यह उद्योगो में कार्यरत व्यक्तियों की उन्नति के साथ साथ प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में अभिवृद्धि का उत्तम साधन है। यहीं कारण है कि विकासशील राष्ट्रों के लिये औद्योगिक विकास एक धर्म युद्ध बन चुका है। भारत के औद्योगिक विकास में कृषि आधारित उद्योगों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यूनाइटेड नेशन्स इन्डस्ट्रियल डेव्लपमेंट आर्गेनाइजेशन (यू. एन. आई. डी.ओ.) की परिभाषा के अनुसार वे उद्योग जो कृषि उपज को कच्चे माल के रुप में उपयोग कर व्यावसायिक स्तर पर वस्तुओं का निर्माण करते हैं, कृषि उद्योग की परिधि में आते है। कृषि आधारित उद्योग भी दो प्रकार के होते हैं प्रथम बड़े उद्योग जिनकी महत्ता अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार जगत में स्थापित है यथा सूत्री वस्त्र, चाय, कॉफी, रबर, चीनी, कागज उद्योग इत्यादि द्वितीय लघु एवं कुटीर उद्योग जो स्थानीय व्यापार जगत में महत्पपूर्ण भूमिका का निर्वाह करतें हैं उदाहरणार्थ - औषधि उद्योग, चावल, आटा, पापड, तेल, दालें, चिप्स, पोहा मिलों द्वारा उत्पादित समग्री इसी श्रेणी में आतीं है।

वर्तमान में भारत के आर्थिक विकास के क्षेत्र में एक अत्यंत चिन्तनीय विषय यहाँ के कृषि पर अधारित उद्योग की रुग्णता की समस्या है। औद्योगिक रुग्णता सर्वप्रथम उन्नीस सौ साठ के दशक के मध्य में दिखाई दी तथा उन्नीस सौ अस्सी के दशक में औद्योगिक रुग्णता का विस्तार हुआ और आज यह गम्भीर समस्या का रुप ग्रहण कर चुकी है। भारतीय रिजर्व बैंक के अनुसार रुग्ण उद्योग का अर्थ है- एक मझोली अथवा बडी (गैर लघु उद्योग की क्षेत्र की एक ऐसी कम्पनी जो 7 वर्षो से पंजीकृत है) औद्योगिक कम्पनी जिसे वित्तीय वर्ष के अंत में अपनी कुल अचल सम्पति के बराबर अथवा अधिक संचित नुकसान हो गया और उसे उस वित्तीय वर्ष में और उस वित्तीय वर्ष के पहले वर्ष के दौरान नगद नुकसान भी हुआ है। इसी प्रकार रुग्ण औद्योगिक कम्पनी (विशेष प्रावधान) अधिनियम 1995 के अनुसार - रुग्ण औद्योगिक ईकाई वह है जिसको लायसेंस प्राप्त हुये सात वर्ष बीत गये हो जिसकी किसी भी वित्तीय वर्ष में या सभी वर्षो को मिलाकर हानि उसकी शुद्ध पूंजी से अधिक वित्तीय वर्ष या उससे पूर्व या उसके पूर्व वित्तीय वर्ष में नगद हानि हुई हो। औद्योगिक रुग्णता की यह स्थिति कृषि पर आधारित उद्योग की भी ज्वलंत समस्या के रुप में विद्यमान है।

भारत की गणना सदियों से कृषि प्रधान देश के रुप मे की जाती है। यहीं प्रधानता एवं अनुरुप स्थित का सकारात्मक प्रभाव पडा है। फलत: यहां कृषि आधारित उद्योगो की बहुलता है । कृषि आधारित उद्योग देश के लगभग सभी राज्यों में स्थापित है जिनमें से प्रमुख निम्नानुसार है-

 ISSN 2277-5587

भारत में प्रमुख कृषि आधारित उद्योग

क्र.	प्रमुख उद्योग	राज्य
1	टेक्सटाइल उद्योग	
अ	सूती वस्त्र उद्योग	आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक, उत्तरप्रदेश, म.प्र. पश्चिम बंगाल
ब	ऊनी वस्त्र उद्योग	उ.प्र., राजस्थान, म.प्र., महाराष्ट्र, पंजाब
स	रेशमी (सिल्क) वस्त्र उद्योग	तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, बंगाल, महाराष्ट्र
द	सिन्थेटिक वस्त्र उद्योग	महाराष्ट्र, गुजरात, दिल्ली, पंजाब, म.प्र.
इ	जूट उद्योग	पश्चिम बंगाल
2	चीनी उद्योग	उ.प्र., बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब, कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, म.प्र.
3	वेजीटेबल इण्डस्ट्री	पूर्व, पश्चिम, तथा दक्षिण भारत के सभी राज्य
4	चाय उद्योग	कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, उत्तर पूर्वी राज्य
5	काफी उद्योग	कर्नाटक, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, उत्तर पूर्वी राज्य
6	लघु एवं कुटीर उद्योग (आटा, पापड़, तेल, पोहा, चिप्स, उद्योग)	लगभग सभी राज्य

स्रोत : उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार

भारत सरकार ने सदैव कृषि आधारित उद्योगों की महत्ता को ध्यान में रखकर ही नियोजन किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य ही कृषि उत्पादन था जिससे खाद्यान्न की पूर्ति के साथ साथ आधारित उद्योग जैसे जूट चीनी, सूती वस्त्र, उद्योग आदि को पर्यापत कच्चा माल उपलब्ध हो सके। इस योजना में कुल औद्योगिक विकास व्यय 97 करोड़ रुपये में से 15 करोड़ रुपये चीनी उद्योग पर व्यय किये गये तथा सूती वस्त्र, चीनी उद्योग के उत्पादन में आशातीत वृद्धि हुइ तथा कृषि से समद्ध लघु कुटीर उद्योग के विकास हेतु छः विशिष्ट बोर्ड स्थापित किये गये। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में औद्योगिक विकास पर 938 करोड़ रुपये तथा लघु एवं कुटीर उद्योग पर 175 करोड़ रुपये व्यय कर इनके विकास का प्रयत्न किया गया। तृतीय पंचवर्षीय योजना का प्रारुप भी मुख्यतः दो तत्वो पर आधारित था प्रथम कृषि उत्पादकता बढ़ाना एवं द्वितीय रोजगार के अवसरों वृद्धि । इस योजना में लघु एवं कुटीर उद्योगों को बड़े उद्योग के सहायक के रुप में विकसित करने हेतु इन पर 241 करोड़ रुपये व्यय किया गया। इसी प्रकार सभी पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिकता पाकर भी कृषि क्षेत्र में आशातीत उन्नति नहीं कर सका। पूर्व केन्द्रीय मंत्री एवं योजना आयोग के पूर्व सदस्य योगेन्द्र के अलघ के मतानुसार नब्बे के दशक में कृषि का विकास पिछड़ गया। वित मंत्री का बयान कि'' अर्थव्यवस्था ठीक ठीक है । परंतु हमें नहीं पता कि कृषि का क्या करें भी यहीं चिंता प्रकट करता है। कि कृषि आधारित उद्योग में रुग्णता भी इसी समस्या का एक हिस्सा है। इन उद्योग की रुग्णता का प्रत्यक्ष संबंध कृषि क्षेत्र के विकास से होता है। ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि विकास के प्रयास पर बल दिया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ मनमोहन सिंह का मानना था कि कृषि क्षेत्र गम्भीर संकट में है। इस संकट से निपटने के लिये प्रयासो में एक प्रयास कृषि आधारित उद्योग की रुग्णता का निवारण भी है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में भी एक प्रमुख बिंदु है। चिंतन एवं निवारण के उपायों पर अमल आज प्रासंगिक हो गया है।

कृषि पर आधारित उद्योगों की रुग्णता का प्रथम सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण भारत के कृषि विकास का पिछड़ना है। कृषि विकास राष्ट्र की प्रमुख आवश्यकता है। देश की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के मसौदे की 52 वीं बैठक का उदघाटन के समय इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया। इस योजना में कृषि क्षेत्र की कमजोरियों को दूर करने को सर्वोच्च प्राथमिकता अवश्य देनी चाहिये। कृषि क्षेत्र का पुनरुत्थान किये बगैर हम समन्वित विकास की अपेक्षा नहीं कर सकते। कृषि क्षेत्र जिस पर कुल ग्रामीण जनसंख्या का आधा हिस्सा निर्भर है। 1990 के दशक के मध्य से लेकर अब तक होने वाले दो प्रतिशत से भी कम वार्षिक विकास दर इस ओर इशारा करते है कि आज सम्पूर्ण कृषि व्यवस्था संकट में है। जब तक इस संकट का निवारण नही होगा तब तक इन उद्योगों की रुग्णता की स्थिति बरकरार रहेगी। सफल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि की हिस्सेदारी और बढ़ाया जाना है।

यदि भारत को अंतराष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी पहचान बनानी है तो उसे औद्योगिक ढांचे की प्रमुख कमजोरी कृषि आधारित उद्योगों की रुग्णता को दूर करना आवश्यक होगा। इस रुग्णता का एक अहम कारण उद्योग के स्वामियों का उद्योग में रुचि न लेना, राष्ट्रीय हितो की अपेक्षा व्यक्तिगत स्वार्थों में लिप्त होना है। उद्योग स्वामियों का उदास दृष्टिकोण उद्योगों को रुग्ण होने से रोक सकता है। रुग्णता किसी एक कारण का परिणाम नहीं होती है वरन यह अनेक कारणों का सम्मिश्रण होती है। मूलतः इन कारणों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- प्रथम जन्मजात कारण यथा उद्योगपति की अनुभवहीनता, गलत क्षेत्र एवं गलत परियोजना चुनाव, वित्तीय संसाधनों का गलत अनुमान एवं कमी एवं बाजार संबंधी गलत अनुमान इत्यादि। उदाहरण के रुप में शक्कर उद्योग मुख्यतः उत्तर प्रदेश एवं बिहार में गन्ना उत्पादन का प्रतिशत अधिक होने के कारण इन्ही राज्यो में अधिक कार्यरत है तथा ये राज्य कुल शक्कर का 85 प्रतिशत का अंशदान करते रहे है किंतु विगत 35 वर्षो में कम उत्पादन के कारण यह उद्योग महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, तामिलनाडु कर्नाटक में भी उन्नति कर रहे है। यहां की उत्पादन लागत उत्तर भारत से कम है। जिससे यहां कई नई इकाइयों की स्थापना की अपार संभावनाऐं है। यही सही आकलन न कर पाना इस क्षेत्र में रुग्णता का कारण है।

कृषि आधारित उद्योगों में रुग्णता के लिये आंतरिक कारण भी जिम्मेदार होते है जैसे परियोजना के क्रियान्वयन में कमी, उद्यमियों की अयोग्यता, प्रबंध संबंधी कमियां, उद्योगपति श्रमिक संबंधो में तनाव इत्यादि। उदाहरणार्थ म.प्र. के बालाघाट जिले में रेशम उद्योग स्थापित करने पर प्रारम्भ में आशातीत मुनाफा न मिलने का कारण ग्रामीण किसानों में प्रचार प्रसार की कमी एवं तकनीकि ज्ञान एवं प्रशिक्षण की कमी रहा। कृषि आधारित उद्योग की रुग्णता का यह आम कारण है कि इनके उद्यमी प्राय: आधुनिकतम तकनीकि की अनुपलब्धता एवं मंहगे लोन के कारण इसका प्रयोग नही कर पाते हैं। जिससे उनका उत्पाद बाजार की प्रतिष्ठित इकाइयों के उत्पाद के समक्ष टिक नही पाता है एवं उद्योग शनै: शनै: रुग्णता की ओर बढता जाता है। इन्ही समस्याओ को ध्यान में रखते हुये ग्रामीण एवं लघु उद्योग को आवश्यक सुविधाऐं एवं सहायता उपलब्ध कराने के लिये प्रत्येक जिले में जिला उद्योग केन्द्र नामक अभिकरण की स्थापना किये जाने का प्रावधान किया गया। परंतु प्रशासनिक अव्यवहारिकता के कारण ये केन्द्र कोई विशेष भूमिका का निर्वाह नही कर पाये। इन जिला उद्योग केन्द्रो की नीतियों का पुनरीक्षण कृषि आधारित उद्योग की रुग्णता को रोकने में उपयोगी हो सकता है। श्रम समस्या ने भी रुग्णता को बढाया ही है। देश की अनेक सूती वस्त्र मिले श्रमिक विवाद, हडताल, तालाबंदी का शिकार होकर रुग्ण होती रही है। इस परेशानी से बचने के लिये प्रबंध में श्रमिको की भागीदारी बढानी चाहिये तथा आपसी सामजस्य एवं वार्तालाप द्वारा विवादो को हल करने की प्रवृति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। साथ ही उद्यमियों द्वारा मजदूरी एवं श्रम कल्याण संबंधी सरकारी नियमों का पालन एवं श्रम सुविधाओं का विकास भी रुग्णता का अवरोधक बन सकता है।

कृषि पर आधारित उद्योगों की रुग्णता के लिये अनेक बाह्य कारण भी उत्तरदायी होते हैं, जैसे उत्पादन मूल्य निर्धारण, वितरण सबंधी सरकारी नीतियों, कच्चे माल की कमी या अनिश्चितता आयात निर्यात नीति के साधनों यथा तेल, कोयला, विद्युत की अपर्याप्त उपलब्धता आदि।

मूल्य निर्धारण, वितरण संबंधी सरकारी नीतियों की अनवरत परिवर्तनशीलता का प्रभाव शक्कर उद्योग पर स्पष्ट दिखाई देता है। गन्ने का केन्द्र शासन द्वारा निर्धारित मूल्य प्राय: राज्यों द्वारा निर्धारित मूल्यों से कम होता है। क्षेत्रानुसार भी अंतर घटता बढता देखा गया है। इसी प्रकार शक्कर उत्पादन में समय समय पर अपेक्षाकृत कमी का प्रमुख कारण गन्ने का कम मूल्य निर्धारण एवं गुड उत्पादकों के द्वारा गन्ने का पर्याप्त मूल्य दिया जाना भी रहा है जिसके कारण कारखानों में गन्ना आपूर्ति कम रही तथा उत्पादन की कमी कारखाने को रुग्णता की ओर बढाती गयी। ऐसी विसंगति से उद्योग का बचाव आवश्यक है। इसी प्रकार कृषि आधारित उद्योग का कच्चामाल कृषि क्षेत्र से आता है जो मानसून पर निर्भर होने के कारण अनिश्चतता से युक्त होता है। जैसे सू.ती वस्त्र उद्योग में कपास की अनिश्चतता व अनियमित आपूर्ति निम्न किस्म बढी हुई कीमते, लम्बे रेशो के कपास के आयात पर रोक इत्यादि बाधाऐं अनेक मिलो को रुग्ण बनाने में सहायक हुई हैं। इस दिशा में कोटा पद्धति निगरानी समितियों का गठन, कच्चे माल का बफर स्टाक स्थापित करना, कृषि अनुसंधान के साधनों का विस्तार इत्यादि उपायों से कच्चे माल की समस्या को कम किया जा सकता है।

शासन की आयात निर्यात नीति की जटिलता के कारण प्राय: उद्यमी उनके उत्पाद निर्यात नहीं कर पाते है तथा उन्हे देश में ही सस्ते मूल्य पर ब्रिकी के लिये विवश होना पडता है। इसी प्रकार शक्ति के साधनों की कमी एवं मूल्य वृद्धि ने अलग ही संकट निर्मित कर दिया है।विद्युत आपूर्ति की अनिश्चतता एवं मूल्य वृद्धि के कारण उत्पादन प्रभावित होना, पेट्रोल, डीजल की कीमतो में वृद्धि के कारण लागत में वृद्धि होना आदि भी कृषि आधारित उद्योगों की रुग्णता का कारण है। इसका निवारण सरकार द्वारा शक्ति के साधनों को पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध करवाकर नवीन संयत्र लगाकर सौर उर्जा, बायोगैस, इत्यादि का प्रयोग बढाकर किया जा सकता है। ये उद्योग आम परिवहन, विपणन की समस्या से जूझ रहे है। उदारीकरण की नीति में बाजार में विभिन्न कम्पनियों के प्रवेश ने प्रतियोगिता को बढा दिया है। उदाहरणार्थ अंकल चिप्स जैसे उत्पाद ने स्थानीय स्तर पर बने चिप्स को बाजार से बाहर कर दिया है। इस दिशा में सरकार की सार्थक पहल ही एकमात्र उपाय है। राय समिति के अनुसार औद्योगित रुग्णता का मुख्य कारण प्रबंध संबंधी विफलताऐं है। समिति ने उन इकाईयों के वित्तीय एवं संरचनात्मक पुर्नगठन , स्वेच्छा से स्वस्थ्य मिलों के साथ विलय , बैंक ऋण उपलब्ध कराने जैसे सुझाव दिये जो आज भी प्रासंगिक है।

कृषि आधारित उद्योग की रुग्णता के लिये यद्यपि अनेकानेक कारण उत्तरदायी है तथापि इनका निवारण संभव है। इनकी समस्याओं के निवाराणार्थ एक त्रिपक्षीय समिति का गठन किया जाना चाहिये जिसमें कृषक, उद्यमी तथा शासकीय नीति निर्धारक सम्मिलित हो। इसके अतिरिक्त सरकार को प्रारंभ से ही वित, विद्युत एवं कच्चे माल की आपूर्ति, विपणन व्यवस्था, आधुनिकीकरण राजस्व छूट आदि ऐसे उपाय करने चाहिये जिससे कोई ईकाई रुग्ण की श्रेणी में ही न आये। यदि कोई इकाई रुग्ण हो भी जाती है तो युद्ध स्तर पर सुधारात्मक प्रयासों के माध्यम से उसके पुनरुद्धार का प्रयत्न करना चाहिये किंतु सरकारी सहायता के दुरुपयोग को रोकने हेतु सतर्कता अतिआवश्यक है। इन समस्त उपायों की सफलता की दृढ इच्छा शक्ति, प्रशासनिक कुशलता एवं अपेक्षित जनसहयोग पर निर्भर करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *गुन्नार मिर्डल - द इंटरनेशनल इकॉनोमी - पृ. 226*
2. *ब्रेस एम डी- इंण्डस्ट्रियल डवलपमेंट - पृ. 05*
3. *रुद्रदत्त सुंदरम- इण्डियन इकोनोमी - पृ. 579*
4. *गुप्ता एन एस एवं सिंह - फायनेनसियल आफ स्माल इंण्डस्ट्रीज - पृ. 194*
5. *जोशी एवं मीणा - भारतीय सूती वस्त्र उद्योग पृ. 148*
6. *विकास का अर्थशास्त्र - एस पी सिंह*
7. *भारतीय अर्थव्यवस्था - सिंह*

प्रशासनिक परिवर्तन में समाचार पत्रों का योगदान
(राजपूताना में रियासती प्रशासन और समाचार पत्र: सन् 1920 से 1947 तक का अध्ययन)

shodhshree@gmail.com

डॉ. विनोद कुमार केवलरामानी
रिसर्च ऑफिसर, शिव चरण माथुर सामाजिक नीति शोध संस्थान, जयपुर

राजस्थान के राजनीतिक इतिहास से अनभिज्ञ व्यक्ति इस भ्रान्त धारणा से ग्रसित हैं कि इस सामन्ती भू-भाग का स्वाधीनता संग्राम से कोई सक्रिय सम्बन्ध नहीं था। ऐसे व्यक्तियों का सबसे बड़ा तर्क यह है कि यहाँ के लोग ब्रिटिश सत्ता से शासित न होकर अपने ही राजाओं और सामन्तों से शासित थे और इसी कारण उनका जो भी संघर्ष था वह सिर्फ इसी वर्ग के विरुद्ध सीमित था। किन्तु राजस्थान की रियासतों में जब निरंकुश शासन तन्त्र और उससे उत्पन्न दमन, उत्पीड़न, अत्याचार और आर्थिक शोषण के विरुद्ध जन-चेतना जागृत होकर लोकतंत्री मांगों की संवाहिका बनी, तो यह संघर्ष स्वत: ही ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध हो गया, क्योंकि जनता यह निरन्तर अनुभव कर रही थी कि जिस दुष्चक्र की वह शिकार है, उसके प्रणेता और सम्पोषक अंग्रेज ही हैं। दूसरी ओर रियासतों के आन्तरिक मामलों में ब्रिटेन के हस्तक्षेप ने भी यहाँ के राजन्य वर्ग में असंतोष उत्पन्न कर दिया। देशी रियासतों के सामन्तों में इस नई भावना ने जन्म लिया कि ब्रिटेन उनकी स्वायत्तता में व्यवधान उत्पन्न कर रहा है। इस प्रकार ब्रिटिश विरोध की चेतना का यह उदीयमान स्तर राजस्थान में उजागर हो गया। बहुत आवश्यक है कि ब्रिटिश विरोध की इस चेतना के विभिन्न स्तरों और विकास-श्रृंखला को प्रदेश की राजनैतिक चेतना मूलक मिशनरी पत्रकारिता के परिपार्श्व में समझने का प्रयास किया जाए।

प्रकटत: समकालीन समाज के विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिम्बित करने एवं राजनीतिक तथा प्रशासनिक परिवेश को चित्रित करने में समाचार पत्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वस्तुत: समाचार पत्र समकालीन इतिहास के महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। इस दृष्टि से स्वतंत्रता संग्राम कालीन राजपूताना क्षेत्र की देशी रियासतों में हुए राजनीतिक आंदोलनों और प्रशासन के कार्य-कलापों के अध्ययन की स्रोत-सामग्री के रुप में समाचार पत्र एक सशक्त माध्यम हैं। विपुल संभावनाओं से परिपूर्ण इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में अध्ययन के बहुत कम प्रयत्न हुए हैं। यह एक निर्विवाद सत्य है कि प्रसंगाधीन अवधि (1920-1947 ई.) के प्रशासन के उपरोक्त हालात के प्रति जन-आक्रोश को वाणी देने में राजपूताना क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया गया।

समाचार पत्रों का उद्‌भव, विकास एवं महत्व

मुद्रण-यंत्रों के आविष्कार से पूर्व जब आधुनिक अर्थ में समाचार-पत्रों की परिकल्पना तक नहीं की जा सकती थी, उस समय भी विश्व के विभिन्न भागों में सूचना-प्रसार किसी न किसी माध्यम से अवश्य होता था। पत्रकारिता के प्रादुर्भाव से पहले सूचना स्तंभों अथवा पट्टों के द्वारा, एक दूसरे से सम्पर्क द्वारा, पत्राचार के माध्यम से, अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचनाओं को पाषाण स्तंभों पर खुदवा कर, जैसा कि सम्राट अशोक के काल में शिलालेखों आदि के द्वारा किया जाता था, राज्य के संदेश वाहकों द्वारा सूचनाओं का आदान-प्रदान होता था।

भारतवर्ष पौराणिक काल से ही सूचना-सेवाओं को प्रयोग में लाता रहा है। हमारे शास्त्रों के अनुसार महर्षि

ISSN 2277-5587

नारद एक विशेष संवाददाता का कार्य करते थे। वे एक लोक से दूसरे लोक तक भ्रमण कर सूचनाओं के आदान-प्रदान का महत्वपूर्ण कार्य करते थे।[1]

विश्व में पत्रकारिता का आरंभ सन 131 ईस्वी पूर्व रोम में हुआ था। उस साल पहला दैनिक समाचार-पत्र निकलने लगा। उसका नाम था – "Acta Diurna (दिन की घटनाएं)। वास्तव में यह एक पत्थर की या धातु की पट्टीनुमा होता था जिस पर समाचार अंकित होते थे।

दुनिया में प्रेस के आगमन के साथ ही समाचार पत्रों की शुरुआत मानी जा सकती है। विश्व में पहली प्रेस लगाने का श्रेय इंग्लैंड को है और 1702 में लंदन का पहला दैनिक 'डेली कॉर्नेंट' नामक समाचार पत्र अस्तित्व में आया।[2] इसके पश्चात 1803 आस्ट्रेलिया से 'द सिडनी गजट' और 'न्यू साउथ वेल्स एडवर्टाइसर' प्रकाशित हुए। 1844 में थाइलैण्ड से पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। 1903 में पहला टेबलाइड न्यूजपेपर 'डेली मिरर' प्रकाशित हुआ।[3] इसके पश्चात तो विश्व के लगभग सभी देशों से समाचार पत्रों के प्रकाशन प्रारम्भ हो गये।

मुद्रण यंत्र के आविष्कार हो जाने और भारत में अंग्रेजों की सत्ता काबिज होने के बावजूद भी भारत में पत्रकारिता का उद्भव काफी विलम्ब से हुआ। 29 जनवरी, 1780 को पहला भारतीय समाचार पत्र 'बंगाल गजट अथवा कलकत्ता एडवर्टाइजर' जेम्स हिक्की ने निकाला। यह पत्र 'कलकत्ता जनरल एडवरटाइजर' एवं 'हिक्की गजट' के नाम से भी प्रसिद्ध है।[4] भारत में शुरुआती दौर के जो समाचार पत्र प्रकाशित हुए, वे अंग्रेजी में थे एवं इन्हें अंग्रेज ही निकालते थे। इनका उद्देश्य सूचनाएं देना एवं मनोरंजन करना ही था एवं सामान्यत: ये पत्र गैर राजनीतिक थे।[5]

सन् 1818 में दो बंगाली समाचार पत्र 'दिग्दर्शन' और 'समाचार-दर्पण' का प्रकाशन किया गया। 1822 में भारतीय राष्ट्रवाद के प्रमुख सूत्रधार और भारतीय राजनैतिक विचार-धारा के जनक राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज के मुख पत्र 'संवाद कौमुदी' का कार्यभार संभाला और फारसी में भी एक पत्र 'मिरातूल अखबार' का प्रकाशन किया। 1838 में 'संवाद लिमिर नाशक' एक कट्टरपंथी पत्र काशी प्रसाद घोष द्वारा निकाला गया। इस समय तक देश में 600 से भी अधिक छोटे-बड़े पत्र प्रकाशित होने लगे थे।[6] इनमें प्रभाकर, चंद्रोदय एवं महाजन दर्पण दैनिक, भास्कर त्रि-साप्ताहिक, तत्व बोधिनी पत्रिका, चंद्रिका, सराज अर्द्ध साप्ताहिक, ज्ञान दर्पण, बंगदूत, साधु रंजन, ज्ञान संचारिणी, रस खगु, रंगपुर भारतबन्ध एवं रस युद्धगार साप्ताहिक, नित्य धर्म नारंजिका एवं दर्पण, दमन महानाबन अर्द्धमासिक तथा तत्व बोधिनी मासिक प्रमुख थे।[7]

भारत में हिन्दी पत्रकारिता

भारत में हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव की बात अगर की जाये तो हिन्दी का पहला पत्र साप्ताहिक 'उदन्त मार्तण्ड' 30 मई, 1826 को कोलकाता से युगल किशोर शुक्ल ने प्रकाशित किया। इसके बाद तो हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन का सिलसिला बढ़ता गया और हिन्दी पत्रकारिता की जड़े जमने लगी।[8] उदन्त मार्तण्ड (1826, कलकत्ता), बंगदूत, (1829, कलकत्ता), बनारस अखबार (1845, कलकत्ता), ज्ञानदीपक (1846, कलकत्ता), मालवा अखबार (1848, मालवा), बुद्धि प्रकाश (1852, आगरा), ग्वालियर गजट (1853, ग्वालियर), प्रजाहितैषी (1853, आगरा), समाचार सुधावर्षण (1854, कलकत्ता), पयामे आजादी (1857, दिल्ली), धर्म प्रकाश (1859, अहमदाबाद), सूरज प्रकाश (1861, आगरा), लोकहित (1863, आगरा), जोधपुर गवर्नमेंट गजट (1864, जोधपुर), ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका (1866, लाहौर), मारवाड़ गजट (1866, जोधपुर) द्वारा हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की पृष्ठभूमि तैयार की गई।[9]

राजपूताना में समाचार पत्रों का उद्‌भव एवं विकास

भारत में पहला समाचार पत्र 1780 में प्रारम्भ हुआ जबकि राजपूताना में इसके उनहत्तर वर्ष बाद 1849 में कोई पत्र निकला।[10] राजपूताना का सर्वप्रथम पत्र 'मजहरुल सरुर' माना जाता है। यह द्विभाषी पत्र उर्दू और हिन्दी में सन् 1849 में भरतपुर से प्रकाशित होता था, इस पत्र की कोई प्रति उपलब्ध न होने के कारण इसके स्वरुप के बारे में प्रामाणिक रुप से कुछ नहीं कहा जा सकता। फ्रेंच लेखक तासी ने अपने 'डिसकोर्सेज' में इसका उल्लेख मात्र किया है।

सन् 1856 में जयपुर से हैडमास्टर कन्हैयालाल के नेतृत्व में एक पत्र 'रोजतुल तालीम' अथवा 'राजपूताना अखबार' प्रकाशित किया गया। यह पत्र द्विभाषी थी। इस पत्र की आधी सामग्री हिन्दी में तथा आधी सामग्री उर्दू में प्रकाशित की जाती थी।[11] इसके बाद राजपूताना में पत्रकारिता को थोड़ी गति प्राप्त हुई। विभिन्न रियासतों से कई समाचार पत्र निकलने लगे।1863 में 'जगहितकारक'[12], 1864 में 'जोधपुर गवर्नमेंट गजट'[13], 1866 में जोधपुर से 'मारवाड़ गजट'[14], 1882 में अजमेर से 'देश हितैषी', 'राजस्थान समाचार'[15] आदि पत्रों का प्रकाशन हुआ।

राजपूताना में 1920 के पश्चात् जो पत्र आरम्भ हुए वे स्वातंन्त्रय भाव से ओत-प्रोत थे। उनका उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक जागृति था। राजपूताना की राजनीतिक कमान उसके आंदोलन के प्रारम्भ से पत्रकारों के हाथ में रही।[16]

'राजस्थान समाचार' के प्रकाशन के पश्चात राजपूताना में पत्रकारिता क्षेत्र का निरन्तर विकास होता गया। कई साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। राजपूताना में गणेश शंकर विद्यार्थी के पत्र 'प्रताप' ने पत्रकारिता को सुदृढ़ आधार प्रदान किया एवं इस परंपरा को 'राजस्थान केसरी' ने आगे बढ़ाया। इसके पश्चात् 'नवीन राजस्थान', 'तरूण राजस्थान', 'राजस्थान', 'रियासती', 'त्यागभूमि', 'मीरां', 'प्रभा', 'आगीवाण', 'यंग राजस्थान', 'नवज्योति', 'प्रजा सेवक', 'नया राजस्थान', 'लोकवाणी', 'जयभूमि', 'प्रचार', 'अलवर पत्रिका', 'जयपुर समाचार' आदि के

साथ ही राजपूताना के बाहर से निकलने वाले पत्र-पत्रिकाओं, यथा - 'स्टेट्समैन', 'हिन्दुस्तान', 'बांबे क्रानिकल', 'प्रिंसली इंडिया', 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'वीर अर्जुन', 'विश्वामित्र', 'आवाज', 'अखंड भारत', 'सैनिक', 'गणेश', 'अर्जुन' आदि ने राजपूताना की रियासतों में राजनीतिक-सामाजिक जनजागृति एवं आंदोलनों को संबल प्रदान करने की दिशा में महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय योगदान दिया।[17]

राजपूताना क्षेत्र के प्रशासन का स्वरुप

स्वतंत्रता से पूर्व राजस्थान विभिन्न छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त था तथा इस राज्य का कोई संगठित स्वरुप नहीं था। यह 19 देशी रियासतों, 2 चीफशिप एवं एक ब्रिटिश शासित प्रदेश में विभक्त था। इसमें सबसे बड़ी रियासत जोधपुर थी, तथा सबसे छोटी लावा चीफशिप थी। राजपूताना की प्रशासनिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी।[18] प्रजा को, अंग्रेजी सत्ता, राजाओं और सामन्तों/जागीरदारों के तिहरे दमन चक्र का शिकार होना पड़ रहा था।

राजपूताना में शासकों के बाद सर्वाधिक महत्व सामंतों का था।[19] सामंतों पर राज्य की सुरक्षा का दायित्व तो रहता ही था, प्रशासनिक कार्यो के संचालन के लिए उच्च पदों पर भी उन्हें नियुक्त किया जाता था।[20] वस्तुत: शासक-सामंत संबंध स्वामी-सेवक का नहीं वरन् बंधुत्व रक्त का माना जाता था।[21] सामंत शासक को रेख, हुकूमनामा, न्यौता आदि के रूप में धनराशि देने को बाध्य था।[22] मेवाड़ के सामन्तों की आय का मुख्य स्त्रोत भूमिकर था। मेवाड़ के सामंत दीवानी एवं फौजदारी मामलों की सुनवाई स्वयं करते थे तथा अपने क्षेत्र के अपराधियों को मृत्युदंड तक दे सकते थे।[23] कोटा में सामंत दो वर्गो - देश के जागीरदार तथा दरबार के जागीरदार में विभक्त थे।[24] बीकानेर के सामन्त मुख्यत: तीन वर्गो - प्रथम राव बीका के वंशज, द्वितीय राव बीका के भाई एवं चाचा के वंशज तथा तृतीय स्थानीय अधीनस्थ सामन्त में विभक्त थे।[25] बीकानेर के सामंत अपनी जागीर में अपराधियों को दण्डित कर सकते थे, परन्तु उन्हें मृत्युदण्ड देने का अधिकार नहीं था। जयपुर में सामंतों को राव, राजा, रावल, रावराजा, रावत, आदि पदवियों से भी विभूषित किया जाता था।[26] मारवाड़ में सामंतों की कई श्रेणियां थी। इनमें राजवी, सरदार, मुत्सद्दी, एवं गनायत प्रमुख थे जबकि जातीय आधार पर दो वर्ग प्रमुखत: सिरायत एवं गनायत मुख्य थे। सामंतों को राज्य शासन में भी कुछ विशेष अधिकार प्राप्त थे।[27] जैसलमेर में राजपरिवार के संबंधी सामंत, राजवी एवं दूर के संबंधी रावलोत कहलाते थे। जैसलमेर के सामंतों के अधिकार भी बहुत सीमित थे।[28] राजपूताना पर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करने के बाद ब्रिटिश सरकार की नीति सामंतों को धीरे-धीरे किन्तु निश्चित रूप से पूर्णतया महत्वहीन एवं प्रभावहीन बनाने की रही।[29]

राजस्थान में सामाजिक-आर्थिक जीवन

राजस्थान की विशिष्ट राजनीतिक संस्कृति ने यहां के सामाजिक ताने-बाने के निरुपण को प्रभावित किया है। इस सामाजिक ताने-बाने के पार्श्व में न्यूनाधिक रुप से यहां की सामंती व्यवस्था एवं देशी राज्यों के निरन्तर आपसी संघर्ष एवं आन्तरिक षड्यंत्र रहे हैं।[30] ब्रिटिश सत्ता कायम होने तक आर्थिक जीवन काफी अस्त-व्यस्त हो चुका था।[31] प्रत्येक रियासत में भूमि का बंदोबस्त दो प्रकार का था। एक खालसा और दूसरा जागीरी। खालसा जमीन जागीरदार के अधीन होती थी। प्रत्येक जागीर का एक जागीरदार होता था। जागीरदार भी राजा के पद चिन्हों पर चलते थे। बड़े जागीरदारों को दीवानी और फौजदारी अधिकार प्राप्त थे। जागीरदार इन अधिकारों का दुरुपयोग करते थे। जिसको चाहे उसे दण्ड दे देते थे। जुर्माना कर देते थे। झूठे मुकदमे चला देते थे। जनता के लिए उनके जुल्म सहने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। प्रत्येक जागीर में जागीरदार लगान के अलावा अनेक लागबाग वसूल करते थे। प्रजा को लड़के या लड़की के जन्म पर और उनके विवाह पर अलग से कर देना पड़ता था। किसान अपनी गरीबी के कारण कर्ज से दबा रहता था। किसान फसल तैयार होने पर अनाज को खेतों में इकट्ठा कर लेते थे। उसमें से जागीरदार अपना हिस्सा लगान के रुप में लेते थे। रियासतों में अफसरों को निरंकुश अधिकार प्राप्त थे। जनता उनकी मनमानी से परेशान रहती थी। इनका आतंक बड़ा जबर्दस्त होता था। खड़ी फसल का कूता (अंदाज) करके पैदावार के अनुसार रकम तय कर दी जाती थी। रियासतों में न्याय की बहुत बुरी व्यवस्था थी। जिसको राजा चाहता उसको न्यायाधीश के पद पर नियुक्त कर देता था। न्याय एक मखौल था।[32] न्यायालयों में रिश्वत का बोलबाला था। राजस्थान में कई कुप्रथाओं यथा बाल-अनमेल विवाह, कन्यावध, पर्दा, बहुविवाह, कष्टपूर्ण वैधव्य, रखैल व दासप्रथा तथा कतिपय रुप में सती-प्रथा का बोलबाला था।[33] शिक्षा की दृष्टि से भी पिछड़ा होने के कारण राजपूताना का आर्थिक आधार मुख्यत: कृषि ही था। ब्रिटिश शासन की नीतियो के परिणामस्वरुप घरेलू धंधों के पतन के साथ-साथ ग्रामीणों के लिए कृषि कार्य से जीविकोपार्जन दूभर हो गया।[34] राजस्थान की प्रजा अंग्रेजी सत्ता, राजाशाही और जागीरदारी के दमनचक्र के नीचे कराह रही थी। उन पर तरह-तरह के प्रतिबन्ध थे, आर्थिक शोषण ही नहीं, दैहिक-उत्पीड़न भी अपनी चरम सीमा पर था। राजदरबारों की साजिशें, मर्दानी और जनानी ड्योढ़ी के आपसी क्लेश और मनमुटाव आदि भी आम जनता के प्रति शासकों की उदासीनता के कारण थे।[35]

राज्यों में व्याप्त अव्यवस्था का चित्रण एवं समाचार पत्र

राजपूताना में राजनीतिक चेतना जगाने के उद्देश्य से ही 1918 में राजपूताना मध्य भारत सभा की स्थापना की गई और उसका प्रथम अधिवेशन जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में दिल्ली में हुआ। राजपूताना सभा के अधिवेशन की एक विशेषता थी कि इस क्षेत्र के सामान्य कृषकों की दयनीय दशा दर्शाने के लिए एक प्रदर्शनी लगाई गई। सामन्ती राजतंत्र की फिजूलखर्ची, राज्य की जनता के प्रति

उसकी उदासीनता, दण्ड देने के निर्दयी साधन, अन्याय की व्यापकता, कृषकों की निर्धनता इत्यादि को बड़ी सफलता के साथ दिखाया गया। बेगार की व्यापकता तो अत्यन्त हृदय विदारक थी। अस्पतालों के अभाव, आवागमन के साधनों की कमी, शिक्षा के प्रति लापरवाही से राज्यों में सामान्य जीवन बहुत कठिन और निम्न स्तर का था।[36]

तत्कालीन समाचार पत्रों, नवीन राजस्थान (1922), तरुण राजस्थान (1922), राजस्थान (1923), त्याग भूमि (1927), प्रभात (1932), जयपुर समाचार (1935), नवज्योति (1936), आगीवाण (1937), नवजीवन (1939), प्रजा सेवक (1940), जयभूमि (1940), प्रचार (1942), लोकवाणी (1943), आदि के साथ ही राजपूताना के बाहर से निकलने वाले पत्र-पत्रिकाओं, यथा - 'स्टेट्समैन', 'हिन्दुस्तान', 'बांबे क्रानिकल', 'प्रिंसली इंडिया', 'टाइम्स आफ इंडिया', 'वीर अर्जुन', 'विश्वामित्र', 'आवाज', 'अखंड भारत', 'सैनिक', 'गणेश', 'अर्जुन' आदि ने रियासती शासकों के शोषण, अत्याचार एवं निरंकुशता के विरुद्ध वाणी मुखर करने के साथ ही नौकरशाही की मनमानी एवं अन्य सामाजिक विद्रूपताओं के विरुद्ध भी तीखी एवं कटु आलोचनाएं की।

पुलिस, न्याय व्यवस्था एवं समाचार पत्र

राजस्थान में उत्तरदायी शासन की मांग के उठने के पीछे सिर्फ शासकों की उदासीनता और नौकरशाहों के अत्याचार ही जिम्मेदार नहीं थे बल्कि तत्कालीन पुलिस एवं न्याय व्यवस्था भी इसका एक प्रमुख कारण रही। नौकरशाहों के गुलाम रहे पुलिस अधिकारी जनता पर मनमाने ढंग से अत्याचार किया करते थे। पुलिस प्रशासन का वर्णन करते हुए रामनारायण चौधरी के लेख 'पुलिस का प्रबन्ध' में पुलिस की निर्दयता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया।[37]

राजस्थान निर्माण के पूर्व राजपूताना में संहिता द्वारा निर्मित कानून अथवा सुचारु रुप से संगठित कोर्ट नहीं थे। ब्रिटिश शासन में भी मुश्किल से ही राज्यों में एकरूप न्यायिक व्यवस्था पाई जाती थी। न्यायाधीश बिना किसी प्रशिक्षण तथा अनुभव के नियुक्त किये जाते थे। कार्यालय में उनकी उपस्थिति राजप्रमुख की सनक पर आधारित होती थी। प्रत्येक राज्य में बहुत से नियमित सिविल एवं आपराधिक न्यायालय होते थे, जो कि जिला न्यायाधीशों के न्यायालय से लेकर अन्तिम अपील के न्यायालय तक होते थे।[38] जनता को नाममात्र के भी राजनीतिक अधिकार नहीं थे।[39]

'आगीवाण' ने स्थानीय भाषा में लिखित समाचार 'बीकानेर में तलाशियां' शीर्षक से प्रकाशित किया जिसमें पुलिस की निरंकुशता की जानकारी मिलती है। जयपुर राज्य के एक ठिकाने दांता में नौकरशाही के जुल्मों का बखान करते हुए आगीवाण में बताया गया है कि गरीब लोगों के जमीन के पट्टे फाड़ दिये गये और उनकी जमीन पर ठिकाने के लोगों ने कब्जा कर लिया। पुलिस पर रिश्वत लेने, मारपीट करने सम्बन्धी समाचार, समाचार पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। जैसे 'नाईयां सूं बेगार' और 'गैर-कानूनी मारपीट' शीर्षक से प्रकाशित समाचार इसके उदाहरण हैं। आगीवाण में ही 'भरतपुर में श्री गोकुलजी वर्मा की गिरफ्तारी'[40] शीर्षक से प्रकाशित समाचार न्याय व्यवस्था की निरंकुशता को दर्शाता है।

'आगीवाण' समाचार पत्र के अलावा कई अन्य पत्र भी थे जिन्होंने निडर होकर न्याय व्यवस्था और उसके जुल्मों को बैखोफ होकर प्रकाशित किया, उनमें से एक पत्र था 'तरुण राजस्थान'। मेवाड़ की 'राजस्थानी कन्दराओं में अन्याय और स्वेच्छाचार का साम्राज्य' और कोटा की 'बलवन के हालचाल' शीर्षक[41] से छपी खबरों के अंश जो वहां की न्याय व्यवस्था की दुरावस्था को चित्रित करते हैं। इसके अलावा नवीन राजस्थान, वीर अर्जुन, प्रताप, सैनिक सारांश, प्रभा, त्यागभूमि आदि समाचार पत्रों में सम्बन्धित पक्ष को उजागर करने के अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। 'अदालती नाटक'[42] शीर्षक से प्रकाशित श्री रामनारायण चौधरी द्वारा वर्णित स्थिति से स्पष्ट है कि न्याय के नुमाइंदे भी राजनैतिक दबाव से पूरी तरह ग्रसित थे।

राजपूताना में उत्पन्न उक्त स्थिति में प्रेस ने जनजागृति की दृष्टि से महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके लिए जो साहसी आगे आए उनमें से विजयसिंह पथिक, रामनारायण चौधरी, हरिभाऊ उपाध्याय, जयनारायण व्यास, बाबा नृसिंह दास, ऋषिदत्त मेहता, जगदीश प्रसाद माथुर, दीपक, क्षेमानंद राहत, हीरालाल शास्त्री, प्रेमनारायण माथुर, सिद्धराज ढड्ढा, रघुवर दयाल गोयल, युगल किशोर चतुर्वेदी, मास्टर आदित्येन्द्र, मास्टर भोलानाथ, अभिन्न हरि, शोभालाल गुप्त, गोकुल लाल असावा एवं रमेश चन्द्र व्यास आदि ने पत्रकारिता के माध्यम से ही जन-आंदोलनों को आगे बढ़ाया।[43]

राजस्थान की राजनीतिक-सामाजिक जनजागृति में जो योगदान प्रांत से प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं का रहा, वैसा ही योगदान प्रांत के बाहर से निकलने वाले पत्रों का भी रहा। 'प्रताप' के अतिरिक्त 'अखंड भारत', 'गणेश', 'सैनिक', 'लीडर', 'प्रिंसली इंडिया', 'बांबे क्रानिकाल', 'अर्जुन', 'आवाज', 'नवजीवन', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'द टाइम्स ऑफ इण्डिया', 'आज', आदि प्रमुख हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

शिक्षा और प्रेस न केवल भारत बल्कि वैश्विक दृष्टि से राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के वाहक रहे हैं।[44] विश्व के अनेकों प्रमुख आन्दोलन और जनक्रान्तियां, शिक्षा और प्रेस की नींव पर ही निर्मित हुए। झालावाड़ से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'सौरभ' के प्रथमांक में 'शिक्षा सुधार' नाम से अपने लेख में श्री कन्नोमल द्वारा हमारे देश में शिक्षा की आवश्यकता और उसके स्वरुप पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।[45] 'सौरभ' और 'त्यागभूमि' जैसी पत्रिकाओं ने शिक्षा की अनिवार्यता और स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों पर बल दिया।[46] 'सौरभ' में प्रकाशित सम्पूर्णानन्दजी का लेख 'शिक्षा का आदर्श' शिक्षा के निम्न से लेकर उच्चतम आदर्शों का उल्लेख करता है।[47] 'त्यागभूमि' में प्रकाशित

ISSN 2277-5587

'जापान और भारत' शीर्षक से लेखक केशवकुमार ठाकुर ने अपने लेख में दोनों देशों की तुलना करते हुए भारत में शिक्षा के अप्रसार पर गहरा दु:ख प्रकट किया है।[48]

विभिन्न सेवा-समितियों, हितकारिणी सभाओं, पुस्तकालयों और रात्रि पाठशालाओं में होने वाली चर्चाओं ने जहाँ लोगों को सामाजिक दृष्टि से जागरुक बनाने में सहायता की वहीं समाचार-पत्रों ने भी समाचारों, सम्पादकीय टिप्पणियों, लेखों और कविताओं द्वारा सामाजिक चेतना जाग्रत करने में अपनी प्रभावी भूमिका अदा की।[49]

तत्कालीन अर्थव्यवस्था एवं समाचार पत्र

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के संपादक अंग्रेजों की वाणिज्यिक नीतियों को समझने में पूर्ण रुप से सक्षम थे एवं अपने पत्रों द्वारा उनके इरादों को जनता के समक्ष पहुंचाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील थे। 'त्यागभूमि' में प्रकाशित 'राजस्थान की समस्याएँ' नामक सम्पादकीय में व्याप्त सभी प्रकार की समस्याओं पर गहन दृष्टि डाली है और आर्थिक समस्या की ओर अपनी चिन्ता व्यक्त की है।[50] इसी क्रम में 'राजस्थान' एवं 'तरुण राजस्थान' के समाचारों के अंश अध्ययन में समाविष्ट किये गये हैं। नवज्योति में प्रकाशित समाचार 'राजस्थान के जागीरदार'[51],'जागीरदारों को संभालो'[52], 'मारवाड़ के जागीरदार'[53] शीर्षक से प्रकाशित लेख जागीरदारों की मनोवृत्ति एवं वहां के लोगों के कष्टप्रद जीवन, जो तत्कालीन अर्थव्यवस्था को परिलक्षित करते थे, का सजीव एवं मार्मिक वर्णन किया गया। 'सौरभ' के फरवरी 1922 के अंक में 'कृषकों की दुर्दशा'[54] शीर्षक से पत्र के पूरे पृष्ठ पर छपे चित्र में एक गांव का चित्रण प्रस्तुत किया गया है जो उस गांव की दयनीय अर्थव्यवस्था को दर्शाता है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि पत्र-पत्रिकाएं न सिर्फ राजनैतिक और सामाजिक परिपेक्ष्य को ध्यान में रखकर अपने कर्तव्यों को सिद्ध करने में संलग्न है बल्कि देश एवं समाज की अर्थव्यवस्था को बनाये रखने में भी अपना महत्वपूर्ण योगदान स्वतंत्रता संग्रामकाल से लेकर आज तक निरन्तर दे रही हैं।

समाचार पत्रों के प्रति प्रशासन का व्यवहार

बीसवीं शताब्दी के शुरु में राजनीतिक जागृति की दिशा में हलचल शुरु होने के साथ ही रियासतों ने उसे दबाने के लिए दमनात्मक कदम उठाने शुरु कर दिए। इसी के तहत टोंक, सिरोही, धौलपुर, डूंगरपुर, करौली, झालावाड़, शाहपुरा आदि रियासतों में कानून लागू कर पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाश प्रवेश पर रोक लगाने के साथ ही सभाएं करना तथा भाषण देना भी प्रतिबंधित कर दिया गया।[55] 'राजस्थान केसरी', 'नवीन राजस्थान' और 'तरुण राजस्थान' के माध्यम से पर्याप्त प्रचार कार्य किया। इन पत्रों के तेवर से घबराकर मेवाड़ में इनके प्रवेश पर प्रतिबंध तक लगाया गया।[56] किसान आन्दोलनों को जिस ढंग से भारतीय पत्र-पत्रिकाओं ने प्रचारित किया उसकी गूंज ब्रिटिश संसद में भी हुई।[57] बीकानेर के बदतर हालत पर सत्यनारायण सर्राफा ने रियासत एवं प्रिंसली इंडिया में लेख लिखकर लोगों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया।[58] बीकानेर में भाषण लेखन तथा पत्र-पत्रिका के प्रकाशन पर रोक लगी हुई थी। सामाजिक-शैक्षिक गतिविधियां संचालित करना प्राय: जोखिम भरा कार्य माना जाता है। अलवर के राजा ने 1927-28 में 'प्रताप', 'तरुण राजस्थान' सहित छ: पत्रों के राज्य में प्रवेश पर रोक लगा दी। आदेशानुसार पत्रों की एक भी प्रति अगर किसी के पास पाई गई उसे पांच वर्ष की कैद तथा पांच हजार रुपए के आर्थिक दंड का प्रावधान किया गया।[59] जैसलमेर शासक को लोगों ने समाचार पत्रों के माध्यम से प्रशासनिक दोषों को स्पष्ट करने का प्रयास किया पर उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के पठन-पाठन पर रोक लगा दी।[60]

भीलों और मीणों के राजाज्ञा आन्दोलन एवं नीमूचाणा हत्याकांड की बर्बरतापूर्ण खबरों को प्रकाशित करने पर मेवाड़ में 'प्रताप' एवं 'राजस्थान केसरी' के साथ ही 'नवीन राजस्थान' के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया और राजकीय गजट में इस आशय की घोषणा की गई कि इन पत्रों को पढ़ना, रखना अथवा उसकी पूर्ण अथवा आंशिक सामग्री को प्रचारित-प्रसारित करना अपराध माना जाएगा।[61] 'नवीन राजस्थान' पर प्रतिबंध के बाद इसके संचालकों ने इसका नाम बदलकर 'तरुण राजस्थान' कर दिया। 'तरुण राजस्थान' के तीखे तेवर से घबराकर मेवाड़ में उसके प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया। बाद में अलवर, सिरोही एवं बूंदी रियासतों में भी 'तरुण राजस्थान' के प्रवेश पर रोक लगा दी गई।[62]

'तरूण राजस्थान' के संवाददाताओं का पता लगाकर उन पर अत्याचार करने के भरसक प्रयास किए गए।[63] 'तरुण राजस्थान' की लोकप्रियता एवं उसके तीखे तेवर से घबराकर जोधपुर में भी उसके प्रवेश पर प्रतिबंध लगा दिया गया।[64] प्रतिबंध के पश्चात् यह पत्र 'राजस्थान संदेश' के रुप में निकलने लगा।[65] एक अन्य पत्र 'यंग राजस्थान' का पहला अंक 24 फरवरी 1929 को निकला और अन्तिम अंक 26 दिसम्बर 1929 को प्रकाशित हुआ। 'यंग राजस्थान' बंद करने का लेख महात्मा गांधी ने स्वयं 'अलविदा' शीर्षक से लिखा था।[66] 'प्रजा सेवक' के संपादक-संचालक अचलेश्वर प्रसाद शर्मा को भारत सरकार की गोपनीय योजना का भंडाफोड़ करने पर डेढ़ वर्ष के कारावास से दंडित किया गया। उन्हें अमानुषिक यातनाएं भी भुगतनी पड़ी।[67] 'राजस्थान' ने जोधपुर के बारे में लिखा - ''नवम्बर 1937 में जोधपुर राज्य प्रजामंडल गैरकानूनी घोषित कर दिया गया तथा इसके प्रधानमंत्री अचलेश्वर प्रसाद शर्मा को राजद्रोहात्मक भाषण देने के आरोप में मई 1938 में छह वर्ष के कारावास की सजा दी गई।[68] बीकानेर में पत्र-पत्रिकाओं के दमन के रुप में जब बीकानेर प्रेस अधिनियम पारित किया गया, नवजीवन[69], प्रजा सेवक, हिन्दुस्तान टाइम्स[70], नवज्योति[71], विश्वामित्र[72], वीर अर्जुन एवं अन्य पत्रों ने इसकी तीव्र भर्त्सना की। प्रेस एक्ट द्वारा समाचार पत्रों पर कई तरह प्रतिबंध लगाये गये। न

मालूम कितने ही पत्रों के प्रेस जब्त हुए और कितनों में ही ताला पड गया, कितने ही बिक गये। जमानतें तो न जाने कितने पत्रों की जब्त हुई। फिर भी कई पत्र पुराने नाम से बंद होकर नये नाम से निकले। श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति अपनी कृति पत्रकारिता के अनुभव में लिखते हैं –'उन दिनों पत्रकारिता एक मिशन था, पेशा नहीं। जो पत्रकार लक्ष्य वाले समाचार पत्रों में काम करने जाते थे वे अपने आपको आने वाले मानसिक संकटों के लिए तैयार कर लेते थे। वे सोच लेते थे कि संभव है, पत्र के बन्द हो जाने के कारण शीघ्र ही बेरोजगार हो जाना पड़े पत्र के चलते रहने की दशा में भी संभव है कि निर्वाह मात्र का वेतन मिले और यह भी संभव है कि '124ए' धारा जेल में घसीट लाए।'

निष्कर्ष

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि राजपूताना में एक ओर जहां राजाओं की विलासिता में लिप्तता का नाजायज फायदा उठाते बेखौफ नौकरशाहों द्वारा किये जा रहे घोर अत्याचारों की भरमार थी, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश शासन के उत्पीड़न का दमनचक्र चरम सीमा पर था। इससे त्रस्त जनता ने उत्तरदायी शासन की मांग उठाना प्रारम्भ किया। इसी पृष्ठभूमि में राजस्थान में राजनैतिक चेतना मूलक लक्ष्यपरक पत्रकारिता का सूत्रपात हुआ। देश की स्वाधीनता और राष्ट्रीय संवेदनाओं को जागृत कर उन्हें परिपुष्ट बनाना ही उसका एकमात्र लक्ष्य था। अर्थात् स्वाधीनता पूर्व के समाचार-पत्रों एवं सम्पादकों की भूमिका सही अर्थों में एक धर्म-प्रवर्तकों की भांति थी। सामन्तों और विदेशी शासन के खिलाफ आवाज उठाने के कारण समाचार पत्रों को अनेकों प्रतिबन्धों एवं अत्याचारों का सामना करना पड़ा। किन्तु इसके बावजूद ये आमजन में राजनीतिक चेतना का संचार कर जुम्बिश पैदा करने में सफल रहे। इसी पथ पर चलते समाचार पत्रों की जनचेतना यात्रा स्वतंत्रता संग्राम से लेकर भारत के आजाद होने तक कुप्रशासकीय व्यवस्था के परिवर्तन हेतु जारी रही जो आज तक भी कायम है।

जिस प्रकार ज्ञान-प्राप्ति की उत्कण्ठा, चिंतन एवं अभिव्यक्ति की आकांक्षा ने भाषा को जन्म दिया। ठीक उसी प्रकार समाज में एक दूसरे का कुशल-क्षेम जानने की प्रबल इच्छा-शक्ति ने पत्रों के प्रकाशन को बढ़ावा दिया। पहले ज्ञान एवं सूचना की जो थाती मुट्ठी भर लोगों के पास कैद थी, वह आज पत्रकारिता के माध्यम से जन-जन तक पहुंच रही है। इस प्रकार पत्रकारिता हमारे समाज-जीवन में आज एक अनिवार्य अंग के रुप में स्वीकार्य है। उसकी प्रामाणिकता एवं विश्वसनीयता किसी अन्य व्यवसाय से ज्यादा है । शायद इसीलिए इस कार्य को कठिनतम कार्य माना गया । इस कार्य की चुनौती का अहसास प्रख्यात शायर अकबर इलाहाबादी को था, तभी वे लिखते हैं:-

खींचो न कमानों को, न तलवार निकालो
जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *ब्रूकर, हर्बर्ट, फ्रीडम ऑफ इन्फर्मेशन, मैक मिलन कं., न्यूयार्क, 1949*
2. *http://vicharmimansa.com/hindiblog/2010/09/23/ सत्य-और-स्पष्टता-को-समेटे*
3. *http://inventors.about.com/od/pstartinventions/a/printing_4.htm*
4. *राव, एम. चलपति, द प्रेस, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 1974*
5. *वैदिक, वेदप्रताप, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1973*
6. *प्रभाकर, डॉ. मनोहर, राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1981*
7. *राव, एम. चलपति, पूर्वोक्त*
8. *प्रभाकर, डॉ. मनोहर, पूर्वोक्त*
9. *तिवारी, डॉ. अर्जुन, हिन्दी पत्रकारिता का बृहद इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997*
10. *डॉ. ताराचंद, पूर्वोक्त*
11. *प्रभाकर, डॉ. मनोहर, पूर्वोक्त*
12. *सक्सैना, के. एस., पोलीटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, एस. चन्द, दिल्ली, 1971*
13. *वाजपेयी, अंबिका प्रसाद, समाचार पत्रों का इतिहास, बनारस, संवत 2020*
14. *वैदिक, वेद प्रताप, पूर्वोक्त*
15. *सक्सैना, के.एस., पूर्वोक्त*
16. *पुरोहित, डॉ. प्रकाश, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007*
17. *वैदिक, पूर्वोक्त*
18. *http://rajgkbook.blogspot.in/2012/03/blog-post_3629.html*
19. *व्यास, आर.पी., रोल ऑफ नोबिलिटी ऑफ मारवाड, जैन ब्रदर्स, नई दिल्ली, 1969*
20. *व्यास, आर.पी., पूर्वोक्त, पृ. 138*
21. *शर्मा, जी.सी., एडमिनिस्ट्रेटिव सिस्टम ऑफ द राजपूत, राजेश पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1979, पूर्वोक्त*
22. *देवड़ा, जी.एल., राजस्थान की प्रशासनिक व्यवस्था, धरती प्रकाशन, बीकानेर, 1980*
23. *मेवाड़ एजेंसी रिपोर्ट*
24. *एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट्स ऑफ राजपूताना स्टेट्स 1867-68*
25. *देवड़ा, जी.एल., पूर्वोक्त*
26. *पुरोहित, डॉ. प्रकाश, राजस्थान में स्वतंत्रता संग्राम कालीन पत्रकारिता, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2007*
27. *बारहठ, शिवदत्तदान, जोधपुर राज्य का इतिहास, जयपुर, 1982*
28. *पुरोहित, डॉ. प्रकाश, पूर्वोक्त*
29. *रशबुक, विलियम, द ब्रिटिश क्राउन एण्ड द नैटिव स्टेट्स*
30. *अरोड़ा, शशि, राजस्थान में नारी की स्थिति, तरुण प्रकाशन, बीकानेर, 1981*
31. *शर्मा, कालूलाल, उन्नीसवीं सदी के राजस्थान का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, जयपुर, 1974*

 ISSN 2277-5587

32. जोशी, निर्मला, राजस्थान: स्वाधीनता-संग्राम की कहानी, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय, राजस्थान, प्रिमियर प्रिंटिंग कम्पनी, जयपुर, 1985
33. कोटा रिकार्ड, नं. 2/2, बस्ता नं. 72, वि.सं. 1904, राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
34. इर्सकिन, के.डी., राजपूताना गजेटियर्स खण्ड ब, द वेस्टर्न राजपूताना स्टेटस रेजिडेन्सी एण्ड बीकानेर एजेन्सी, इलाहबाद, 1909
35. प्रभाकर, डॉ. मनोहर, आग के आखर, जनजीवन प्रकाशन, जयपुर, 1986
36. शर्मा, डॉ. आदर्श, जन जागरण और हिन्दी पत्रकारिता, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 1993
37. चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशक मंडल, अजमेर, 1967
38. पारीक, कीर्ति, (Ph.D Thesis) राजस्थान के अधीनस्थ न्यायालयों में न्यायिक अधिकारियों का कार्मिक प्रशासन, राजस्थान विश्वविद्यालय, 2011
39. जोशी, निर्मला, राजस्थान स्वतंत्रता संग्राम की कहानी, सूचना एवं जनसम्पर्क निदेशालय, राजस्थान, 1985, पृ. 7
40. आगीवाण, 20 नवम्बर, 1937
41. तरुण राजस्थान, 16 अप्रैल, 1928
42. चौधरी, रामनारायण, आधुनिक राजस्थान का उत्थान, राजस्थान प्रकाशक मंडल, अजमेर, 1967
43. जयभूमि, जयपुर
44. कुमार, दुष्यन्त, (Ph.D Thesis) बीसवीं सदी के राजस्थान में महिलाओं की सामाजिक समस्याएं एवं समाधान, इतिहास विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, 2006
45. सौरभ, सितम्बर, 1920
46. सौरभ, नवम्बर 1920
47. सौरभ, मार्च 1921
48. त्यागभूमि, वैशाख, सं. 1985
49. सौरभ, फरवरी, सन् 1922
50. त्यागभूमि, मार्गशीर्ष, सं. 1984
51. नवज्योति, 13 मई, 1938
52. नवज्योति, 25 दिसम्बर, 1939
53. नवज्योति, 16 मार्च, 1942
54. प्रभाकर, डॉ. मनोहर, पत्रकारिता के प्रेरक प्रसंग, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2008
55. सक्सैना, के.एस., पोलीटिकल मूवमेंट एण्ड अवेकनिंग इन राजस्थान, एस. चन्द, दिल्ली, 1971
56. सज्जन कीर्ति सुधाकर, 2 जुलाई 1923
57. मेहता, पृथ्वी सिंह, हमारा राजस्थान, इलाहबाद, 1950
58. राठौड़, लक्ष्मण सिंह, पॉलिटिकल एण्ड कॉस्टिट्यूशनल डवलपमेन्ट इन प्रिंसली स्टेट्स ऑफ राजस्थान, जैन ब्रदर्स, नई दिल्ली, 1970
59. रियासत, 14 मई 1928
60. केला, भगवानदास, देशी राज्यों की जनजागृति, इलाहबाद, 1948
61. सज्जन कीर्ति सुधाकर, 2 जुलाई 1923
62. चौधरी रामनारायण, पूर्वोक्त
63. वैदिक, वेदप्रताप, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1973
64. द यंग राजस्थान, 14 नवम्बर 1929
65. मीरां, अजमेर, 18 जनवरी 1947
66. चौधरी रामनारायण, वर्तमान राजस्थान
67. प्रभाकर, डॉ. मनोहर, रोल ऑफ राजस्थान प्रेस ड्यूरिंग फ्रीडम स्ट्रगल, जनसम्पर्क निदेशालय, राजस्थान, 1985
68. राजस्थान, 20 दिसम्बर, 1937
69. नवजीवन, 8 अप्रैल 1946,
70. हिन्दुस्तान टाइम्स, 1 अप्रैल 1946,
71. नवज्योति, 24 जून, 1946,
72. विश्वामित्र, 4 अप्रैल 1946

विश्व स्तर पर भारतीय नारी

ज्योति नवल उदय
शोधार्थी, राजकीय कन्या महाविद्यालय, अजमेर

shodhshree@gmail.com

नारी त्रैलोक्य जननी, नारी त्रैलोक्य रुपिणी
नारी त्रिभुवन धारा, नारी शक्ति स्वरुपिणी।।

शक्ति आगमन तन्त्र के इस श्लोक में नारी को समस्त प्रगति का मूलाधार कहा गया है। प्रगति की सारी गति नारी की भागीदारी पर निर्भर करती है। आज की नारी का स्वरुप बदल रहा है। विश्व के प्रत्येक कोने में नारी जागरण और नारी विमर्श की चर्चा हो रही है। नारी की जागरुकता को देखकर पुरुष समाज उसके विषय में सोचने पर विवश हो गया है।

आज के समय में विद्यालय, कॉलेजो, प्रतियोगी परीक्षाओं में भी छात्राओं का परीक्षाफल सर्वोतम दिखता है। नारी में आज जो परिवर्तन और बदलाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है वह एक दिन का प्रयास नहीं है बल्कि वर्षो से इसकी भूमिका तैयार हो रही थी। ग्रीष्म की तपती लू से भरी धरती पर पावस की बूँदों की सोंधी खुश्बू की बात ही और है। वह सारे तपिश को समेट लेती है। आज की नारी भी प्राचीन वर्जनाओं, श्रंखलाओं को तोड़कर सारे दु:खों को समेटकर मुक्ति की साँस ले रही है।

कल तक जो स्त्री अपने घर की चौखट तक सिमटी थी तथा गृहलक्ष्मी कहकर जिसके पैरों में मर्यादा की बेड़ियाँ डाल दी गयी थीं, वह आज पंख फड़फड़ाकर उन्मुक्त गगन की सैर करने को लालायित है। अब किसी प्रकार का बन्धन उसे सहनीय नहीं है। आज आप किसी बालिका को लड़की होने के कारण दिग्भ्रमित नहीं कर सकते। महानगरों में आज असंख्य छात्राएँ उच्च शिक्षा एवं अन्य कलाओं में दक्षता प्राप्ति हेतु अकेली रहकर गौरव का अनुभव कर रही है। नौकरी करने वाली भी अनेक नारियाँ है जिन्हें परिवार से दूर रहना पड़ता है।

आज देश ही नही पूरे विश्व में आर्थिक एवं अन्य मोर्चे पर एक मौन क्रान्ति हो रही है और इस क्रान्ति को अर्थोपार्जन क्षेत्र का सबसे सशक्त एवं सफल माध्यम माना जा रहा है। यह क्रान्ति है कामकाज के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान। जब भी समाज, राष्ट्र एवं विश्व विकास के शिखर पर पहुँचा उसके पीछे नारियों के त्याग, बलिदान एवं योगदान भी महत्वपूर्ण रहे हैं। आज भी कुछ इसी तरह की परिस्थितियाँ दृष्टिगोचर हो रही है।[1]

नारी तो सृष्टि का अनमोल रत्न है। वह सृजन करने के साथ-साथ ममता, त्याग, प्रेम एवं सेवा की प्रतिभूर्ति है। इसी नारी ने ही सृष्टि के आरम्भ में मनु-शतरुपा के रुप में सृष्टि को बचाने का कार्य किया है। जलप्लावन के समय श्रद्धा ने ही मनु का साथ दिया और आज सृष्टि का इतना विस्तार हुआ है कि अकेले भारत की ही आबादी एक अरब से आगे बढ़ गयी है। यह श्रद्धा रुपी नारी आदि सृष्टि ही तो है। इसे ही जयशंकर प्रसाद ने इस रुप में सराहा है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रज़त नग पगतल में।
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में।।

ISSN 2277-5587

नारी के बिना तो संसार की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। नारी ने प्रत्येक युग में पुरुष का साथ दिया है। उसके जीवन को सँवारा है विभिन्न रुपों में। कहीं माँ तो कहीं बहन, कहीं बेटी तो कहीं सच्ची सहधर्मिणी के रुप में पुरुष की प्रेरणा बनकर, सहयोग देकर वह आदि सृष्टि बनी हैं।[2]

नारी आज जिस रुप में दिखाई दे रही है इसका बीजारोपण तो वैदिककाल में ही हो चुका था। हमारा समाज मानवीय सम्बन्धों का ताना-बाना है और इन सम्बन्धों का मूलाधार स्त्री-पुरुष की सहजता है। जिस समाज में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हों और विकास के समान अवसर उपलब्ध हों, वही समाज उन्नत समाज कहलाता है। नारी नर की असीम शक्ति है। वह माता, बहन, पत्नी और पुत्री आदि सभी रुपों में अपनत्व की भावना जगाती है। नारी का एक सबसे महत्वपूर्ण रुप है – वह है परिवार। परिवार और नारी वस्तुत: एक दुसरे के पर्यायवाची है। अत: शताब्दियों से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कारण आज नारी के व्यक्तित्व की अलग पहचान स्थापित नहीं हो पाई थी, किन्तु आज सामाजिक जागरण, नारी आन्दोलन, शिक्षा एवं स्वाधीनता की भावना के परिणामस्वरुप नारी समाज ने अपनी अलग पहचान रेखांकित की हैं।

आज स्त्री पुरुष की अनुकर्त्ता मात्र न होकर अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के प्रति पूर्णरुपेण जागरुक है। नि:सन्देह आजादी के बाद यदि कहीं सबसे अधिक बदलाव आया है तो वह नारी के जीवन और उसकी स्थित्ति-परिस्थित्ति में ही। विश्व की नारी अब भीगे आँचल पर मन का सब कुछ रखकर सन्धि-पत्र लिखने वाली नहीं रह गयी है, वह अब जीवन के सुन्दर समतल पथ पर चलने वाली भर नहीं रह गयी है। बल्कि उसने भी पुरुषों की तरह ऊबड़-खाबड़ रास्तों को चुनना पसन्द किया हे, काँटों पर उसने पाँव रखना सीखा है।[3]

भारतीय नारी आज मुक्त होना चाहती है पर वह उच्छृंखल नहीं है। अपनी विशिष्टता और शालीनता से वह आगे बढ़ रही है। मौन दीनहीन बनकर नतमस्तक होकर वह नहीं रहेगी बल्कि निर्बाध सरिता की तरह निरन्तर आगे बढ़ती रहेगी। नारी के सारे रुप-गुण कुछ ता शाश्वत हैं और कुछ बदलाव, जागरुकता एवं समय की माँग के कारण हैं। इस प्रकार भारतीय नारी का विश्व में आज अलग ही स्तर है। यह बदलाव अब थमने वाला नहीं है।

नारी स्वतन्त्रता के कई प्रकार के आन्दोलन भी देश-विदेश में चल रहे है। विश्व में चलने वाले विभिन्न सुधार-कार्यक्रमों और आन्दोलनों ने तो इसे बल प्रदान किया ही, स्वतन्त्रता आन्दोलन चलने पर नारी को घर से बार आने तथा शिक्षा और काम-धाम करने के विविध अवसर प्राप्त हो सके हैं। इन सबके अतिरिक्त नारी के विविध क्षेत्रों में जाने का एक और भी सबसे बड़ा कारण रहा है – आर्थिक स्वतन्त्रता और स्वालम्बन का भाव। आज पश्चिम की देखा-देखी नारी के जीवन में यहाँ भी भरपूर बदलाव देखे जा सकते हैं। अब वह आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों में क्रियाशील है। यह संसार परिवर्तनशील है। यहाँ प्रत्येक क्षण स्थित्ति बदलती रहती है। नारी वर्ग की स्थित्ति में भी व्यापक बदलाव आया है। आधुनिक युग नवजारण का युग है। आज की नारी आधुनिकता के परिवेश में जी रही है। वह अनेकानेक समस्याओं के साथ संघर्ष कर रही है। उसे सामाजिक समस्याओं के साथ-साथ आर्थिक समस्याओं से भी जूझना पड़ रहा है। इसक बावजूद विश्व स्तर पर भारतीय नारी समाज का भविष्य अति उज्ज्वल है। हमारी परम्पराएँ और मान्यताएँ नारी को उच्चतम स्थान की अधिकारिणी समझती है। हमारा समाज नारी के गौरव के समक्ष सदा-सर्वदा नतमस्तक रहा है और नतमस्तक रहेगा।

''सभी शक्तियों से बढ़कर नारी शक्ति महान है
विश्व प्रगति के लिए जरुरी नारी का उत्थान है।
अबला नहीं कहा जा सकता, अब विश्व की नारी को
राख समझना भूल बहुत है, छिपी हुई चिनगारी को।।''

वर्तमान समय स्त्री का है। पिछले दो दशकों में देश में स्त्री ने जो प्रगति की है, आर्थिक स्तर पर स्वावलंबन की राह अपनाई है, जिससे न सिर्फ अपनी सामाजिक स्थिति सुदृढ़ तथा गौरवशाली बनाई हैं वही स्वयं उसके आत्मविश्वास में वृद्धि और मनोदशा में भी परिवर्तन आये हैं। शासन, राजनीति शिक्षा, समाज कल्याण, व्यापार सब क्षेत्रों में देश में स्त्री ने महत्वपूर्ण पदों पर आसीन रह कर्मठता और निर्णय क्षमता से अपनी प्रतिभा साबित की हैं। आज स्त्री का क्षेत्र स्वतंत्रता, समानता देश के समाज के विश्वास में योगदान आदि हैं जहाँ वह मौखिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ जनमत को भी पूरा समर्थन प्रदान कर रही हैं। आज स्त्री न सिर्फ कर्मठता से अपने दायित्वों का निर्वहन कर रहीं हैं, घर -परिवार, बच्चों की जिम्मेदारी बखूबी निभाने के साथ साथ वह आर्थिक स्तर पर घर-परिवार, पति को संबल प्रदान करने के लिए कार्य स्थल पर उपस्थित्ति दर्ज करा चुकि हैं। स्त्री की नज़रे घर परिवार के अलावा समाज तथा भविष्य की तरह भी ताकने में सक्षम हैं। घटने वाली घटनाओं तथा परिवर्तनों का भांपने की उनमें अलौकिक शक्ति निहित होती हैं।

आज के समय में पीछे जाये तो हमें ज्ञात होगा कि संसार के अन्य देशों की, नारियों की तुलना में भारतीय नारी की स्थिति सुदृढ़ रही हैं। उसे पुरुष के समकक्ष दर्जा प्राप्त था। किन्तु वर्तमान में नारी की स्थिति में शोचनीय परिवर्तन आया हैं। विदेशी परंपराओं, विषमताओं के चलते स्त्री का स्वयं का मनोबल भी गिरता गया। परन्तु विगत वर्षों में अनेक शासकीय प्रयासों, समाज सेवी आन्दोलनों, संगठनों का मिला-जुला असर यह रहा कि आज स्त्री इंजीनियर, डॉक्टर, लेखक, पायलेट, पत्रकार, मंत्री, सचिव, सरपंच, पार्षद हर स्तर पर स्त्री की मौजूदगी दर्ज हैं। जितनी बुद्धिजीवी महिलायें हमारे देश में है उतनी विश्व के किसी भी देश में नहीं हैं। प्राचीन समाज की गार्गी, लोपा, मैत्रयी से शुरु होकर महादेवी वर्मा अमृता, प्रीतम, मृदुला गर्ग, मैत्रयी पुष्पा आदि बुद्धिजीवी लेखिकाओं ने भारत में ही नहीं विश्व पटल पर भी अपना नाम दर्ज

कराया है। प्रधानमंत्री के रुप में इंदिरा गांधी हो या राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल, राजनीति में विश्व के सबसे बडे लोकतंत्र की सर्वोच्च कुर्सी पर आसीन रहीं। अंतरिक्ष के क्षेत्र में कल्पना चावला, सुनीता विलियम्स के अंतरिक्ष की गहराई नापने के साथ विश्व रिकॉर्ड बनाकर पूरे संसार में भारत का नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिख दिया। सिनेमा जगत में जहाँ मधुबाला, माधुरी दीक्षित, रानी मुखर्जी ने अपना योगदान दिया है, वहीं सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में रीता फारिया से लेकर सुष्मिता सेन, ऐश्वर्या राय, तनुश्री दत्ता, लारा दत्ता ने विश्व में अपनी सुन्दरता व दिमाग का लौहा मनवाया है। खेल जगत में जहाँ साइना नेहवाल, सानिया मिर्जा ने अपनी पहचान बनाई हैं।[4]

सरोज वशिष्ठ के अनुसार:-

''व्यक्तित्व तेरी उम्मीद नहीं, सिर्फ पहचान हूँ मैं,
किसी का अधिकार नहीं, अपना ही स्वीकार हूँ मैं।''

चाहे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को इसका श्रेय मिले या फिर स्त्री की जागरुकता को जिसका उदय सामूहिक स्तर पर पश्चिम देशों में भी हुआ है। आज का युग संघर्ष का युग है। हर किसी को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है। आज की नारी का संघर्ष अब सही मायनों में सफल साबित हो रहा है। अब वह विश्वभर की राजनैतिक, सामाजिक, मानसिक धरातल पर संघर्षरत दिखाई दे रही है।[5]

वर्तमान सदी में अपनी सकारात्मक भूमिका तय करने तथा स्त्री की भूमिका अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए स्त्री की चेतना के साथ स्त्री अस्मिता दोनों का सही संतुलन आवश्यक है। वर्तमान में पश्चिमी चकाचौंध तथा संस्कृति से प्रेरित न होकर स्वयं की गरिमा बनाये रखते हुए देश तथा समाज का नाम गौरवान्वित करना होगा।

आज के समय में जब स्त्री की पुरानी स्थित्ति परिवर्तित हो चुकी है। तब आवश्यकता है कि समाज की जड़ता भी टूटे अर्थात समाज की स्त्री के प्रति मानसिकता में परिवर्तन हो। आज के सन्दर्भ में समाज व खुद स्त्री को एक और अहम दिशा की तरफ ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है वह यह है कि स्त्री की कर्मठ तथा दायित्वपूर्ण छवि के परे जो छवि मीडिया, दूरदर्शन तथा फिल्मों में गढ़ी जा रही है, कही ना कहीं नैतिकता से परे है। यह छवि हमारे देश की परम्परा के अनुकुल नहीं है। फैशन, देह व्यापार और अश्लीलता ये सब कारण स्त्री की बदलती तस्वीर को धूमिल करते है। विज्ञापन बाजार में और हर उपभोक्ता वस्तु में स्त्री देह का फूहड़ प्रदर्शन कहीं ना कहीं स्त्री की गरिमा को ठेस पहुँचाता है। आवश्यकता है कि शासकीय विभागों तथा संगठनों के साथ ही समाज सेवी सगठनों का यह दायित्व हो कि वे स्त्री की फूहड़ व प्रदर्शनपूर्ण छवि पर रोक लगाने का प्रयास करे इसके लिए सामाजिक आंन्दोलन हो, इस तरह के फैशन शो जो आज बड़े शहरों से प्रेरणा ले छोटे-छोटे शहरों, कस्बों में भी आयोजित होने लगे है, उन पर रोक लगाए। दूरदर्शन पर प्रतिभा प्रदर्शन के नाम पर फूहड़ नाच गाने का प्रदर्शन, अश्लील लिबास व द्विअर्थी संवादों पर शासकीय प्रतिबन्ध होना चाहिए। सबसे बढ़कर स्वयं स्त्री को अपनी गरिमा व सम्मान को बचाये रखने का प्रयास करना होगा। उसे प्रदर्शन की वस्तु बनने से बचना होगा। यदि स्वयं वह इस तरह की फूहड़ता में प्रतिभागी नहीं होगी तो स्पष्टत: ही ऐसे आयोजनों और प्रदर्शनों पर अंकुश लग सकेगा।

स्त्री के प्रति बढ़ते अपराधों, छेड़छाड़, बलात्कार तथा यौनशोषण की घटनाओं में वृद्धि तथा स्वयं स्त्री की घटती सम्माननीयता के चलते आज आवश्यक है कि इस दिशा में सकारात्मक पहल हो। पश्चिमी संस्कृति से प्रेरणा लेकर युवा वर्ग तथा समाज की मानसिकता विकृत हो गयी है, कुंठित हो गयी है। स्त्री के प्रति पश्चिमी संस्कृति का परिदृश्य दुर कर भारतीय परम्परा तथा मानसिकता को अपनाकर ही स्वस्थ समाज का निर्माण सम्भव हो सकेगा। जब हम स्त्री प्रगति का व स्त्री की स्थिति का आंकलन करते है तो अच्छाईयों तथा बुराइयों दोनों को ही तटस्थ रुप से यह ज्ञात होगा की बराबरी की मांग तथा एक इन्सान के रुप में जीने की स्वतन्त्रतां में समाज तथा परिवार में नैतिकता के मापदण्ड निर्धारित हो। पारिवारिक रिश्तों में कसावट के साथ साथ स्नेह विश्वास की गर्माहट भी हो और यह भी कि वह उस घर में भी सम्मान की पात्र है जितनी की समाज में भी।

अत: स्त्री को अपनी विशेषताओं की पहचान स्वयं बनानी होगी। उसका स्वयं का अस्तित्व हो, गौरव हो, खुद का स्वाभिमान हो। जिससे वह अपनी पहचान बनाने मे विश्व स्तर पर कामयाब हो सके। और अपनी भारतीय परम्पराओं का निर्वाह भी कर सके तथा उन परम्पराओं के साथ अपनी क्षमता का परचम पूरी दुनियाँ में दिखा सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *आधुनिक एवं हिन्दी कथा-साहित्य में नारी का बदलता स्वरुप डॉ. मुदिता चन्द्रा, डॉ. सुलक्षणा टोप्पो भावना प्रकाशन 109ए, पटपड़गंज दिल्ली-110091*
2. *कामायनी - जयशंकर प्रसाद प्रकाशन- वाणी प्रकाशन दिल्ली।*
3. *विश्व में नारी का बदलात स्वरुप - डॉ. जयप्रकाश पाण्डेय के लेख से - भावना प्रकाशन 109ए, पटपड़गंज दिल्ली-110091*
4. *बदलते परिवेश में स्त्री की प्रगति - डॉ. अनिता सिंह चौहान पृष्ठ 101 प्रकाशक अखिल भारती, 3014, चर्खेवालान, दिल्ली - 110006*
5. *हंस पत्रिका मई 2000 राजेन्द्र यादव पृष्ठ - 49 अक्षर प्रकाशन, प्रा.लि.-नई दिल्ली।*

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री प्रणीत 'काकली' में वर्णित विविध भाव

ऋतु दीक्षित
शोधार्थी, दयालबाग शिक्षण संस्थान, दयालबाग, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

काकली' आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री जी की सर्वप्रथम रचना है। इसका प्रथम प्रकाशन सन् 1935 में हुआ था, जब शास्त्री जी की उम्र मात्र 17 साल की थी। इसमें मात्र 37 कविताएँ थीं, किन्तु अद्यतन संस्करण में इसकी संख्या 65 है।

'काकली' के काव्यगत वैशिष्ट्य और सुकुमार भावों के परिनिष्ठित उपस्थापन को देखकर कोई भी महज यह अनुमान नहीं कर सकता कि रचनाकार 17 वर्षीय किशोर होगा। अत: किशोरावस्था होने पर विविध प्रकार के भावों का सुव्यवस्थित वर्णन करना निश्चय ही प्रगाढ़ पाण्डित्य का प्रदर्शन है।

यदि भाव के विषय में कहें तो सुख-दु:ख आदि भावों के द्वारा (सहृदय के चित्त को) भावित कर देना भाव कहलाता है अर्थात् विभिन्न प्रकार के सुख-दु:ख आदि भावों का जीव में वर्णन किया जाता है। कवि के मन में विभिन्न प्रकार के भाव समय-समय पर उत्पन्न होते रहते हैं। इन भावों में कवि को जिस प्रकार की अनुभूति होती है उसी प्रकार के रसमय शब्द कवि के अधरों से अनायास ही निकलते हैं। इसी प्रकार आचार्य ने भी अपनी लेखनी से काकली के विविध गीतों में भिन्न प्रकार के भाव वर्णित किये हैं- 'काकली' की प्रथम गति रचना 'भारतीवसन्तगीति:' में कवि ने माँ सरस्वती की आराधना की है। उन्होंने माँ के चरणों में अपनी भावना के प्रसून प्रस्तुत करते हुए याचना की कि हे माँ वीणापाणि ! आप अपनी वीणा का वादन ऐसे करो अर्थात् उसमें नवीनता हो कि जब मेरे द्वारा किसी काव्य का निर्माण हो तो वह नूतन-नव्य हो, उसमें कोई पिष्ट पेषण न हो।

निनादय, नवीनामये, वाणि! वीणाम्!
मृदुं गाय गीतिं ललित-नीति-लीनाम्।।
मधुरमञ्जरीपिञ्जरीभूतमाला:,वसन्ते लसन्तीह सरसा रसाला:;
कलापा: सकलकोकिलाकाकलीनाम्।
निनादय, नवीनामये, वाणि! वीणाम्।।[1]

उसी प्रकार 'पीयूष लहरी' में कवि ने अपने आराध्य कृष्ण से, पीड़ित मानवता के सम्बन्ध में निवेदन किया है। संसार में परिव्यक्त वैषम्य को देखकर कवि का अन्तर्मन आंदोलित हो चुका है, उस पर भी अभाव ने जीवन दूभर कर दिया है। कवि विगलित चित्त से कहते हैं कि इस संसार में कौन रहे, जहाँ 'कौए' पाले जाते हैं एवं 'सुग्गे' का वध किया जाता है। धैर्यवान् और विद्वान व्यथित है तथा अधीर, मूर्ख, वैभव और विलास में लीन है। इस परिस्थिति से त्राण के लिये कवि ने कृष्ण से विनम्र निवेदन किया है-

'निधनोत्का विनैव वित्तमधीरा धीरा:
विलसन्ति हसन्ति धनेनाधीरा धीरा:।
निर्विण्णा हन्त वसन्ति दिगन्ते वीरा:;
काका लाल्यन्ते हन्यन्ते कलकीरा:।।'[2]

अर्थात् निर्धनतावश धीर जन भी अधीर हो जाते हैं। जो सुधीर हैं वे धनवान हैं और सुख भोग रहे हैं। खेद है कि वीर अधीर और निर्धन हैं। कौए पाले जाते हैं और सुन्दर कीरों (शुकों) का वध किया जाता है। कवि ने स्पष्ट किया है कि परिस्थितिवश मानव कितना अधीर हो जाता है किस प्रकार उसका धैर्य टूट जाता है।

'सफलता' नामक कविता में कवि निराशा के महासागर में डूब जाता है। उसकी आशा के कदम असहाय हैं। वह ईश को खोजते-खोजते क्लान्त-श्रान्त हो चुका है। उसे ईश्वर का 'दीनबन्धु' नाम मिथ्याभिमान प्रतीत होता है। कवि की भावना की सफलता उनकी कविता में इतनी सहजता के साथ छलकती है कि पाठक की आँखें नम हो जाती हैं-

देव! परीक्षितमेव मया ते दीनबन्धुरभिधानम्;
मैहि, रक्ष शिष्ट 'निर्दय' इति नाम नैजमनिदानम्।[3]

अर्थात हे देव! मैंने तुम्हारे 'दीनबन्धु' नाम की जाँच कर ली है। मत आओ, अपने बचे हुए निर्दय नाम को ही सफल करो अर्थात् केवल निर्दय ही बने रहो।

कवि की 'प्रलापः' नामक कविता में कवि की दार्शनिक दृष्टि अभिभूत होती है। कवि ईश्वर के विषय में कहते हैं कि 'जीव', 'लहर' और 'ब्रह्म' पारावार के समान है। जब तक जीव संसार में है, तब तक वह कार्य बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता। ब्रह्म के विषय में कवि ने वर्णन किया है-

आहूतोऽस्मि साम्प्रतं रिंगदुदन्वत्तुंगतरंगैः
तत्कक्षंगच्छामि मोचितस्त्वाम्यदनंगासंगैः॥[4]

मैं समुद्र की तरंग के समान हूँ और तुम ब्रह्म के समान हो। मैं जब तक इस संसार में हूँ, तब तक क्रोध, काम, बन्धन से मुक्त कैसे हो सकता हूँ। तुम मुझे मुक्ति दे सकते हो। तुमने मेरे साथ ही आकाश का सृजन किया है, जो पूर्ण है और मैं अपूर्ण। अब मैं आकाश को भी नहीं देखूँगा।

काकली की 'जागरणम्' नामक कविता में बौद्धिकता का भाव स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर होता है। मानव मन के स्वाभाविक चांचल्य का चित्रण कवि ने बड़ी ही सफलता के साथ किया है। मानव मन दृढ़ता के साथ स्थिर रह ही नहीं सकता। उसमें सर्वत्र चंचलता रहती है। न जाने कैसे-कैसे भाव मन में जागृत होते रहते हैं। संसार के प्राणियों में जीवन को समाप्त कर देने के भाव जागते हैं, यह स्वप्नावस्था की देन है और दुःख की भी बात है किन्तु इस दुःख से यदि संसार के अन्य लोग जागृत हो जायें तो इस दुःख को भी समर्थक ही कहा जायेगा-

'स्वप्न दशामागत्य पश्य ते हन्त जीवनं घ्नन्ति;
किमभूत्-प्रियं मृगयमाणाः पाणा मे सदोच्छ्वसन्ति?[5]

देखो, संसार के लोग स्वप्न की अवस्था को मोहवश अपने जीवन का अन्त करना चाहते हैं, यह दुःख की बात है। क्या हुआ, अगर मेरे दुःख से संसार के प्राणी दुःखी हो जाते हैं। सुख दुःख को भुलाने वाली आत्मा व्यर्थ है और इस अवस्था में प्राणी विमुगध हो जाते हैं।

कवि के काव्य में उपदेशात्मकता का भाव भी गहन रुप से विद्यमान है। कवि ने उपदेश के शास्त्रीय निदेश का सम्यक् अनुपालन किया है। 'गीतम्' शीर्षक में कवि ने संसार के लोगों से दयाभाव के लिए आग्रह किया है, विशेषकर धनवानों को असहायों के प्रति दया दिखाने की चेष्टा की है-

'प्रिये! जगति वर्त्तस्व सन्ततं समेऽसमे सदयम्।
काननचारिवृन्दमयि !सदयम् ;
गगनविहारिपुञ्जमपि सदयम्,[6]

हे प्रिये, संसार में तुम सदा सम और विषम अवस्था में दया दिखाओ। वन में विचरण करने वाले सभी जीव दयालु हैं, आकाश में विहार करने वाले सभी नक्षत्र पुंज भी दयालु हैं, सभी जीव सह्रदय हैं।

'प्रेम' गीत का प्रधान विषय है। प्रेम की भावना के अभाव में गीत की संवेदना अपूर्ण है। जब तक गीत के कोमल भावों से प्रेम की अभिव्यक्ति का वर्णन नहीं होगा, गीत सफल नहीं हो सकता। भले ही वह प्रेम का विप्रलम्भ रुप हो या संयोग। कवि ने इस प्रणय-तत्त्व को भी अपनी काकली में संजोया है। 'गोविन्दगानम्' शीर्षक में राधा और कृष्ण के प्रणय व्यापार का चित्रण अतीव आह्लादक है। विरह और मान दोनों ही भाव यहाँ परिलक्षित हैं।

'निन्दति नन्दनन्दनहरिचन्दनसुमपीतरागम् ।
विन्दति मन्दं मन्दमिलिन्देन्दीवररागम् ॥[7]

इसी प्रकार कवि ने 'विहंगमबाला', 'मधुरं मधुरं', 'भ्रमरगानम्' नामक गीतों में प्रेम की विविध प्रकार की अभिव्यक्तियों का वर्णन किया है।

प्रकृति काव्य का मुख्य अंग है। काकली के ऐसे अनेक गीत हैं जो प्राकृतिक परिदृश्यों और नैसर्गिक सुखों के लिए महत्वपूर्ण हैं। 'शिशिरसमीरः' नामक गीत में प्रकृति का वर्णन अत्यन्त रमणीय है-

'अयि सखि ,शीतो वहति समीरः !
निमिशे कृशः श्वसिति शाखान्ते ,
क्षणे दृश्यते वीरः !
अयि सखि ,शीतो वहति समीरः ! 8

इसी प्रकार 'अधिकालिन्दीकूलम्', 'वनीम्प्रति', 'कविता-कल्लोलिनी', 'आत्मपरिचयः' इन सभी शीर्षकों में प्रकृति के उपादानों का सहज प्रयोग किया है।

सम्बोधसूचक भाव गीत का बाह्य रुप है। ऐसे गीतों में किसी को सम्बोधित किया जाता है एवं उसके सम्बन्ध में भाव व्यक्त किये जाते हैं। काकली के विरहः 'कलिके', 'कविताकल्लोलिनी', 'वनीम्प्रति', 'कल्लोलिनीम्प्रति', 'कादम्बिनी', 'दीपकः', एवं 'भग्नावशेषः' आदि गीतों को कवि ने सम्बोधित गीतों की श्रेणी में रखा है।

कवि ने विरह को सम्बोधित करते हुए कहा है कि तू जीवन का संगी है

और मिलनरुपी नाटक का अन्तिम अंक है। तुम जीवन को नवीन स्फुरण देते हो। क्या तुम शोक-सम्भार को वितरित करते हो? क्या मैं काक-समूह में सुखर आलाप कर जिन्दा रहूँ अथवा निम्ब की क्षीण छाया का सेवन करूँ-

'मिलननाटकस्यान्तिमांक, जीवनजीवन ,वितरसि किम्?
अहह, शोकनिवहन्दन्द्रुततरमेतम्मन्दं विहरसि किम्?
काककलापैस्सह मधुरालापं कुर्वन्नजीवेयम् ?
कण्टकिन: प्रतिबिम्बं निम्बं वा सेवेय तथेयम् ?'[9]

(मिलनरुपी नाटक के तुम अन्तिम अंक हो। क्या तुम प्राणियों में जीवन बाँट रहे हो? क्या तुम धीरे-धीरे विहार करते हुए शोक सम्भार बाँट रहे हो? क्या मैं काव्य-समूह में मधुर आलाप का जीवित रहूँ? क्या मैं निम्बतरु की कण्टरित एवं क्षीण छाया का सेवन करूँ?)

कवि अपने गीतों में जीवन के सुख-दु:ख, घात-प्रतिघात, आशा-निराशा को अभिव्यक्त करता है। गीत के स्वरुप की दृष्टि से आत्माभिव्यक्ति गीत का एक प्रमुख तत्त्व है। 'काकली' के गीतों में ऐसे भाव ही अत्यन्त ही प्रखरता के साथ मुख्यरित हुए हैं। उनके गीतों की आत्मव्यंजकता अत्यन्त ही स्वादक है। 'काकली' की 'व्यथाकथा' शीर्षक कविता में कवि ने अपने जीवन की कथा को वाणी दी है। अपनी पत्नी के वियोग में उन्होंने स्वीय व्यथा-कथा को उपनिबद्ध किया है वे चन्द्रमा से कहते हैं कि उनका नाम सुधाकर बेकार है, वह तो विष बरसाता है।

'चन्द्रहेतक किंवीक्ष्य विषण्णां षण्णाम्मध्ये हससि ;
किं कुर्यां पुर्यां नो , गगने निर्मन्दाक्षो वससि ।'[10]

यद्यपि काकली गीतिकाव्य है किन्तु कतिपय मुक्तकों का समावेश भी कवि ने इस संकलन में किया है। इस दृष्टि से 'काकली' की 'षड्दोषा:' शीर्षक कविता उल्लेखनीय है। इसमें तर्क भी है और सूक्तियों का संयोग भी। कवि ने बड़े कौशल से मनुष्य के कुछ दोषों को गुण में परिणत कर दिया है। उनकी दृष्टि में क्रोध भी महत्व रखता है। यदि वह न होता तो न विश्वामित्र द्वारा नया स्वर्ग बनाया जाता और न लंका से सीता वापस आती। साथ-साथ क्रोध के अभाव में पृथ्वी का उद्धार कैसे हो पाता?

निर्मयित नवस्वर्गो नो, सीता स्याच्छ्रितलंका ;
'क्रोधो' न भवेन्न भवेदुद्धारो धरणे ;, का शंका ?[11]

इस प्रकार आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का पाण्डित्य उनकी काकली के पद-पद में अपनी प्रकृष्टता प्रदर्शित करता है। उनकी भाषा, उनके भाव और विचारों को सर्वदा अनुकूल धारा में ले जाती है। कहीं भी पाण्डिय न तो भावों के लिए बाधक हुआ और न ही कहीं भाव, भाषा और शब्द की सामर्थ्य से विलग हो सके हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *काकली, भारतीवासन्तगीति:, पृ. 1*
2. *वही, पीयूषलहरी, पृ. 42*
3. *वही, सफलता, पृ. 74*
4. *वही, प्रलाप:, पृ. 44*
5. *वही, जागरणम्, पृ. 65*
6. *वही, गीतम्, पृ. 61*
7. *वही, गोविन्दगानम्, पृ. 51*
8. *वही, शिशिरसमीर:, पृ. 11*
9. *वही, विरह:, पृ. 48*
10. *वही, व्यथाकथा, पृ. 71*
11. *वही, षड्-दोषा:, पृ. 59*

वर्तमान भारत में मानवाधिकार और महिलाओं की स्थिति

डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़
सहायक आचार्य,जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं

shodhshree@gmail.com

मानव जगत का प्राय: आधा भाग नारी जाति का है। संख्या के दृष्टिकोण से भी नारी जाति का महत्त्व स्पष्ट है। पुरुष और नारी दोनों ही मानवता के समान अधिकारी है। मानव समाज की सम्मुनति दोनों के ही समान सम्मान पर निर्भर करती आयी है। किसी भी युग में किसी समाज ने उत्कर्ष प्राप्ति में नारियों के सम्मान की अवहेलना का कोई भाव प्रदर्शित नहीं किया और न असभ्यावस्था में ही नारियों की उपयोगिता किसी रुप में कम की जा सकती है। वेदों में पत्नी को पुरुष की अर्द्धांगिनी कहा गया है। यही कारण है कि पत्नी के बिना परुषों को अपूर्ण कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी के बिना पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता।[1] इसी धारणा के बल पर पुरुष को पत्नी की अनुपस्थिति में किसी भी प्रकार के यज्ञानुष्ठान कर्म का अधिकार प्राप्त नहीं था।[2] इसी प्रकार तैत्तिरीय संहिता में एक ऐसी स्त्री संस्था का उल्लेख है जिसके अन्तर्गत स्त्रियां अपनी समस्याओं, कर्त्तव्यों एवं अधिकारों पर विचार विमर्श किया करती थी।[3]

वैदिक युग में नारी को धार्मिक अधिकार के साथ-साथ सम्पत्ति का अधिकार भी था। इसके अतिरिक्त धर्मसुत्र में पुत्रोत्पत्ति को ही धर्म का आध्यात्मिक लक्ष्य मानकर स्त्री के लिए विवाह एवं पति की अधीनता को ही जीवन का मुख्य लक्ष्य बना देने से आलोच्य काल की नारी मानवीय अधिकारों से वंचित एवं पददलित दिखायी पड़ती है। एक पूर्णतया मातृसत्तात्मक समाज उस समाज को कहते हैं जहां महिलाओं को पूर्ण अधिकार प्राप्त हो और उनके हाथ में सत्ता हो, धार्मिक संस्थाएं, आर्थिक व्यवस्था, उत्पादन, व्यापार सब कुछ पर उनका नियंत्रण भी रहे।[4] वैदिक युग में शुद्र महिलाओं को विशेष रुप से हिंसा झेलनी पड़ती थी और उनकी पवित्रता का सामाजिक सम्मान कम था। यह भेदभाव उस समय यातनाजनक हो गया जब मनु या बृहस्पति या याज्ञवल्क्य जैसे कानून बनाने वाले व्यक्तियों ने समाज में महिलाओं को पुरुषों से कम स्तर का दर्जा दिया।

संसार के सभी धर्मो की धुरी है मानवता, क्योंकि सभ्यता का अर्थ ही है एक दूसरे मानव की सहायता करना, यदि मानव ऐसा नहीं करेंगे तो उनमें और पशुओं में कोई अंतर नहीं रह जाएगा। अत: मानवतावाद का अर्थ ही मानव का कल्याण है। यह मानवता का बिन्दु सभ्यता के अंकुर के साथ ही प्रस्फुटित हुआ है। सामाजिक व्यवस्था का वर्णन ऋग्वेद में आता है। भारत में आदिकाल से स्त्रियों के सम्मान का भाव रहा है। ऋग्वेद के अनुसार प्रथम नारी में पृथ्वी को माना गया है।

'ह्रस्येना प्रथिवि भवानिक्षरा निवेशिनी यचछा न! शर्म सप्रथ:''

-ऋग्वेद सूक्त 22 (6) (15)

आज भी हिन्दूओं में प्रचलित सभी पूजाओं में सबसे पहले पृथ्वी के पूजन की परम्परा है।

डॉ. राम आहूजा ने भारत में महिलाओं के परम्परागत अधिकार की सैद्धान्तिक विवेचना करते हुए कहा है कि प्राचीन भारत में महिलाओं की परिस्थिति से संबंधित दो विचार सम्प्रदाय मिलते हैं। एक सम्प्रदाय के

ISSN 2277-5587

समर्थकों का कहना है कि महिलाएं पुरुषों के बराबर थी। जबकि दूसरे सम्प्रदाय के समर्थकों की मान्यता है कि महिलाओं का न केवल अपमान ही होता था बल्कि उनके प्रति घृणा भी रखी जाती थी। दोनों ही सम्प्रदायों के समर्थकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण की पुष्टि में धार्मिक साहित्य से अनेक उदाहरण दिए हैं। आपस्त ने निर्दिष्ट किया था - ''जब महिला रास्ते में जा रही हो तो सभी उसे रास्ता दें।'' हम जिनको सम्मान करते हैं, उनके साथ यही व्यवहार करते हैं, अत: यह दर्शाता है कि महिलाओं को उच्च स्थान प्राप्त था। मनु ने कहा था - 'जहां महिलाओं की दुर्दशा होती है, वहां सम्पूर्ण परिवार विनाश को प्राप्त होता है, किन्तु जहां वे सुखी है, वहां परिवार सदैव समृद्धि को प्राप्त होता है।'' याज्ञवल्क्य ने कहा है- ''महिलाएं पृथ्वी पर समस्त दैवीय गुणों की प्रतीक है, सोम ने अपनी समस्त पवित्रता उन्हें प्रदान की है, गान्धर्व ने मृदु वाणी तथा अग्नि ने उन्हें अत्यंत आकर्षण बनाने के लिए अपनी चमक उन पर न्यौछावर कर दी है।'' महिलाओं के विषय में इतने ऊंचे आदर्श रामायण एवं महाभारत में स्थान-स्थान पर दोहराए गए हैं। महाभारत काल में महिलाएं न केवल गृहस्थ जीवन का केन्द्र थीं बल्कि समस्त सामाजिक संगठन की आधार बिन्दु थीं। लेकिन वर्तमान में महिलाओं के साथ अत्याचार बढ़ता ही जा रहा है।

सर्वोदय समाज निर्माण में स्त्री जाति का गौरवपूर्ण स्थान है। सर्वोदय के लिए उसे शारीरिक क्षमताओं के अभाव में हीन मानना स्वीकार्य नहीं है। नागरिकता के क्षेत्र में हम स्त्री पुरुष का भेद का निराकरण करना चाहते हैं। स्त्री को स्वयं भी इस समाज से अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। इसके लिए उसे अभयशील होना होगा तथा स्त्री पुरुष पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति को समाप्त करना होगा। जब तक स्त्री पुरुष रक्षित है, तब तक वह सुरक्षित भी नहीं है। उसे स्वरक्षित बनना चाहिए।[5] शारीरिक विभेद किसी प्रकार से स्त्री और पुरुष के कार्य क्षेत्रों में तो अंतर ला सकते हैं किन्तु वह विषमता पैदा करने वाले बने, यह किसी को भी स्वीकार नहीं होना चाहिए।

महिलाओं की स्थिति पर महात्मा गांधी जी समाज में प्रचलित इस सामान्य धारणा से सहमत नही थे कि महिलाऐं आदमियों की तुलना में कमजोर है और इसलिए समाज में उन्हें नीचा दर्जा देना चाहिए। उनका कहना था कि समाज में महिलाओं को पुरुषों के बराबर का दर्जा ही देना चाहिए क्योंकि वे बुद्धि बल में पुरुषों से किसी भी तरह कम नही होती और समाज में महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां सम्भालती है। महिलाओं के बगैर तो पुरुष का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। गांधीजी के शब्दों में ''महिलाऐं समान मानसिक शक्तियां रखते हुए पुरूषों की सहभागिनी बनती है। अत: उन्हें मानव समाज के जीवन में बराबर का अधिकार होना चाहिए और उन्हें भी पुरूषों के बराबर आजादी का उपभोग करने देना होगा।[6]

गांधीजी ने महिलाओं की स्थिति देखते हुए भविष्य में समाज में ही नही शासन में भी पुरुषों के बाराबर अधिकार दिलाने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि स्त्रियों को मताधिकार के साथ-साथ राजनीति में भी पुरुषों के बराबर भाग लेना होगा। स्वराज्य अथवा राष्ट्र के उत्थान के लिए गांधीजी उन कानूनों को भंग करना चाहते थे जो स्त्रियों को बराबर का दर्जा देने के पक्ष में न थे।

वर्तमान काल में जब से संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई थी तभी से महिला और मानवाधिकार की सोच प्रारम्भ हो गई थी। प्रकृति ने स्त्री को स्वाभाविक कोमलता प्रदान की है और पुरुषों को बल। इसी कारण स्त्रियों की सारे संसार में स्थिति पुरुषों के पश्चात् मानी जाती है। इसलिए कमजोर वर्ग के कारण इनके अधिकारों के बारे में चर्चा एक अन्तर्राष्ट्रीय विषय है। 1992 तक यह बात मान ली गई कि लिंग के आधार पर होने वाले भेद-भाव में ''हिंसा सम्मिलित है जो कि महिला के विरूद्ध इसलिए की जाती है या जो उसे अनुचित-अनुपात में प्रभावित करती है।'' इस तथ्य को समझने पर संयुक्त राष्ट्र की साधारण सभा ने 20 दिसम्बर, 1993 को ''महिलाओं के विरुद्ध हिंसा के विलोपन की घोषणा'' को अंगीकार किया।[7]

वियना में 1993 में मानव अधिकारों पर एक विश्व सम्मेलन हुआ। इसमें 177 देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन ने महिलाओं के अधिकारों के अनुपालन, प्रोत्साहन एवं रक्षा के लिए चल रहे, अन्तर्राष्ट्रीय आंदोलन की प्रेरणा दी। वियना घोषणा एवं कार्य-योजना ने आग्रह किया कि सरकारें एवं संयुक्त राष्ट्र यह सुनिश्चित करें कि समस्त मानव अधिकार, समान रुप से महिलाओं को भी प्राप्त हो।

डॉ. राम आहूजा ने महिलाओं के अधिकार चेतना की विशद विवेचना की है। उनके अनुसार यद्यपि भारत में महिलाओं को अन्य देशों की महिलाओं की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त है तथापि क्या हमारे देश की महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति चेतना है? अधिकार चेतना में प्रमुख बाधाएं अशिक्षा, गृहकार्य में अधिक व्यस्तता, घरेलू बंधन तथा पुरुषों पर आर्थिक निर्भरता आदि है।[8] अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक कारणों से स्त्रियों को शिक्षा देना अनिवार्य नहीं समझा गया। यह माना जाने लगा कि स्त्रियों को नौकरी नहीं करानी है। अत:उन्हें शिक्षा दिलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। शिक्षा के अभाव में स्त्रियां अपने अधिकारों के प्रति जागरुक नहीं रह सकी और वे अन्धविश्वासों, कुसंस्कारों और रुढ़ियों में इस प्रकार जकड़ ली गई कि उनमें चेतना नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रह गई।

महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को समाप्त करने के उक्त अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद महिलायें भारत में सामान्य रुप से न सिर्फ हिंसा का शिकार बनी हुई हैं वरन् असमानता की भी। महिलाओं के साथ बलात्कार, दहेज-मृत्यु, अपहरण तथा यौन पीड़न जैसे अपराध लगातार बढ़ते जा रहे हैं। सत्य जो भी हो यह स्पष्ट है कि भारत में महिलायें सुरक्षित नहीं हैं और महिलाओं के बुनियादी मानव-अधिकारों को प्रोत्साहन देने व उनकी रक्षा करने के मामले में हमें बहुत कुछ करना है।

राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना सन् 1992 में एक वैधानिक अधिकार प्राप्त संस्था के रुप में की गई। महिलाओं के संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा उपायों की समीक्षा करना उनके कल्याणार्थ कानून बनाने के लिए सरकार से सिफारिश करना, उनकी कठिनाइयों के निराकरण में सहायता देना और महिलाओं से सम्बन्धित मामलों के नीति निर्धारण में सरकार को सलाह देना, इसके मुख्य उद्देश्य हैं। इसी के साथ 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रुप में मनाये जाने की भी घोषणा हो गई। यह संस्था प्रत्येक महिला को न्याय सुलभ कराने के लिए वचनबद्ध है। महिला आयोग द्वारा समय-समय पर दूसरे संस्थानों के साथ मिलकर महिला की सुरक्षा हेतु कार्यक्रम किये जा रहे हैं। 8 मार्च 2011 को इण्डिया विमेन फांउडेशन व विमेन पावर कनेक्ट द्वारा कार्यक्रमों की नई पहल की गई।

मानवाधिकार घोषणा-पत्र 1948 में दिये गये अधिकार

1. जीने का अधिकार, स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार
2. कानून के समक्ष समानता का अधिकार
3. आवागमन और निवास की स्वतंत्रता
4. अत्याचार और शोषण के खिलाफ विरोध करने की स्वतंत्रता
5. विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता
6. धार्मिक स्वतंत्रता
7. मत डालने का अधिकार
8. शिक्षा का अधिकार
9. कार्य करने का, मजदूर संगठन बनाने का और उसमें भागीदारी
10. स्वास्थ्य सुरक्षा का अधिकार
11. सांस्कृतिक भागीदारी का पूर्ण अधिकार।

इन सब अधिकारों के अलावा कुछ अधिकार केवल महिलाओं को ही प्राप्त है-

- कामकाजी महिलाओं के अधिकार/कानून जिसमें सरकार द्वारा तय किया गया न्यूनतम वेतन मिलना चाहिए व एक ही तरह के या मिलते जुलते काम के लिए महिलाओं को पुरुषों के समान पारिश्रमिक मिलना चाहिए।
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948- वेतन की न्यूनतम दर, आयु, काम के घंटे, दिन और महीनों के हिसाब से निश्चित की जाती है।
- फैक्टरी अधिनियम 1948, फैक्ट्री में समुचित सुविधाएं होनी चाहिए जिसमें शौचालय, 30 से ज्यादा महिलाएं काम करें वहां झूलाघर होना चाहिए, एक सप्ताह में 48 घंटे से ज्यादा काम नहीं करवाना। 5 घंटे से ज्यादा लगातार काम नहीं करवाना, काम सुबह 6 से शाम 8 बजे तक। ओवर टाइम नहीं व सप्ताह में एक दिन का अवकाश।
- प्रसूति अवकाश अधिनियम 1961
- कामकाजी महिलाओं को प्रसूति से पूर्व व पश्चात् अवकाश का प्रावधान व हल्का कार्य करवाना। अवकाश का पूर्ण वेतन।
- कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ होने वाले यौन शोषण निवारण अधिनियम-2010
- कामगार दुर्घटना मुआवजा (कामगार प्रतिकार अधिनियम-1923)
- गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम (1971)। इसमें गर्भपात करवाना अपराध है।
- घरेलू हिंसा अधिनियम (2005)
- हिन्दू विवाह अधिनियम 1955- इसमें लड़के की न्यूनतम आयु 21 वर्ष व लड़की की न्यूनतम आयु 18 वर्ष होनी चाहिए।
- विशेष विवाह अधिनियम-1954- पत्नी को खर्च पाने का अधिकार है। विधवा बहू के खर्च पाने का अधिकार, स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार, थाने के अधिकार व गिरफ्तारी के अधिकारी, पूछताछ के दौरान अधिकार, तलाशी के समय अधिकार, प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराते समय अधिकार।
- महिला अत्याचार निवारण अधिनियम (2011 बजट घोषणा, राजस्थान, 9 मार्च)

राष्ट्रीय महिला आयोग की अगली पहल देश में लड़कियों का पीछा करना अपराध की श्रेणी में आ जाएगा। इसके लिए भारतीय दण्ड संहिता में पृथक धारा जोड़कर सात साल तक की सजा के प्रावधान की बात कही गई। फिलहाल लड़कियों का पीछा कर उन्हें परेशान करने वालों के खिलाफ स्पष्ट कानून के अभाव में अपराधी बच निकलते है। स्कूल, कॉलेजों व कार्यालयों में आने-जाने वाली लड़कियों व महिलाओं को सुरक्षा के लिहाज से प्रस्ताव को महत्त्वपूर्ण माना जा रहा है। महिला आयोग ने प्रस्तावित यौन उत्पीड़न विधेयक में संशोधन कर नया विधेयक हाल ही में सरकार को भेजा है। आयोग में महिलाओं की सुरक्षा के लिए केन्द्र के पास यौन उत्पीड़न विधेयक पहले ही भेज रखा है। विधेयक को धारदार बनाने के लिए इसमें संशोधन कर नया विधेयक गृह-मंत्रालय को भेजा है। इसमें आईपीसी की धारा 509 (बी) के तहत महिलाओं पर हमला, उन्हें शारीरिक या

मानसिक क्षति पहुँचाने के उद्देश्य से उनका पीछा करने वालों के लिए सात वर्ष तक का कारावास या जुर्माना अथवा दोनों का प्रावधान प्रस्तावित है। हाल ही में दिल्ली विश्वविद्यालय की एक छात्रा का पीछा कर एक युवक ने गोली मारकर हत्या कर दी। उसके बाद महिला आयोग ने दिल्ली के विभिन्न कॉलेजों में जन-सुनवाई की थी। तब उसे लड़कियों का पीछा कर उन्हें नुकसान पहुँचाने या ऐसी चेष्टा करने वालों के खिलाफ ठोस कानूनी कारवाई की जरुरत महसूस हुई। इसे देखते हुए प्रस्तावित विधेयक में संशोधन कर गृह-मंत्रालय को भिजवाया गया।[9]

महिला विकास की प्रमुख योजनाएं

राष्ट्रीय महिला आयोग, महिला विकास परियोजनाएं, महिला एवं बाल विकास विभाग। स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, महिला सशक्तिकरण हतु राष्ट्रीय नीति। महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण हेतु कार्य, सामाजिक सशक्तिकरण हेतु अधिकार, शिक्षा, स्वास्थ्य, कुपोषण आदि।

2 अक्टूबर, 1975 को समन्वित बाल विकास कार्यक्रम की शुरुआत की गई जिसमें बाल विकास की सर्वागीण रुपरेखा बनाकर महिलाओं एवं बच्चों को लाभान्वित करने का कार्यक्रम लागू किया गया। यद्यपि महिला सशक्तिकरण की अवधारणा सातवीं पंचवर्षीय योजना में रखी जा चुकी थी परन्तु आठवीं व नवीं पंचवर्षीय योजना में इसे अत्यन्त बल मिला एवं अनेक परियोजनाएं प्रारम्भ हुई। यह महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम था। संविधान के 73वें व 74वें संशोधन में उन्हें पंचायत व नगर पंचायतों में आरक्षण मिला।[10]

निष्कर्षत: यद्यपि महिलाओं को मानव समझ कर मानवाधिकार दिलाने की चेष्टा जारी है किन्तु जब तक महिलाएं स्वत: अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं होती तब तक बाहरी चेष्टाएं कारगर नहीं हो सकती। भारत में रहने वाले चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों, वे सामाजिक व्यवहारों में भारतीय ही हैं। मनु के काल में स्त्रियों के प्रति हीन भावना का जो बीज बो दिया गया, वह आज भी भारत के जन के रक्त में है। एक ओर तो कहा जाता है कि नारी शक्ति है, देवी है ''यत्र नार्यास्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता:'' और दूसरी ओर अनेक ऋषियों ने कहा है कि पिता बालकपन में, पति युवावस्था में और पुत्र वृद्धावस्था में स्त्रियों की रक्षा करता है, नारी को कभी स्वतंत्र नहीं रहने दिया। अत: आज नारी को अपने सम्बोधन में अबला से 'अ' के स्थान पर 'स' लगाकर सबला बनाना है।

आज 21वीं सदी में भी संसार में नारी की स्थिति कुछ बहुत अच्छी नहीं क्योंकि आज भी भारत की महिलाओं की सरकार में भागीदारी पाकिस्तान के बाद आती है, यह ताजा सर्वे है। पाकिस्तान और अफगानिस्तान में तो सरकारें ही मानवाधिकारों का हनन कर रही हैं। सत्य तो यह है कि विश्व का कोई भी देश या मानव समाज अभी तक मानवाधिकारों के पूर्ण रुप से क्रियान्वयन व उपभोग का आदर्श प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

इसलिए सम्पूर्ण विश्व में ऐसी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिस्थितियों का निर्माण करने की आवश्यकता है जिनमें मानव अधिकारों के उपभोग और उनकी वैधानिक मान्यता स्वीकृत हो और उनकी सुरक्षा हो। इसके बिना मानव अधिकारों की सभी घोषणाएं केवल कागजी घोषणाएं होकर रह जायेगी। वे कभी भी साकार रुप धारण नहीं कर पायेंगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *शतपथ ब्राह्मण, पृ./5.2 1.10*

2 *डॉ. लता सिंहल, भारतीय संस्कृति में नारी, परिमल पब्लिकेशन्स,दिल्ली, पृ. 4,*

3 *कल्चरल फोरम, जनवरी 1964, पृ. 123*

4 *प्रेम नारायण शर्मा, महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पृ. 246*

5 *डॉ. वीरेन्द्र शर्मा, भारत के पुनर्निर्माण में गांधी जी का योगदान, श्री पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ. 279*

6 *रश्मि पाठक, भारतीय राजनीतिक विचारक, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ.119*

7 *सुधा रानी श्रीवास्तव, भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति, कॉमनवेल्थ पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 283*

8 *गुप्ता कमलेश कुमार, भारतीय महिलाएं शोषण, उत्पीड़न एवं अधिकार, बुक एनक्लेव, जयपुर, पृ. 91-93*

9 *राजस्थान पत्रिका, 22 अप्रैल 2011, संस्करण - सीकर।*

10 *महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास, प्रेम नारायण शर्मा, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, पृ. 29*

राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में स्वामी श्रद्धानन्दजी का योगदान

नितेश जेफ
शोधार्थी, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

भारत में प्रारम्भ से ही शिक्षा का महत्व रहा है। प्राचीन समय से ही गुरुकुल पद्धति द्वारा शिक्षा दिये जाने के उल्लेख हमारे धर्मग्रन्थों में मिलते हैं। ऋषि-मुनियों द्वारा शिक्षा दिये जाने की परम्परा भारतीय समाज में प्रारम्भ से ही रही है। अल्टेकर का मत हैं कि ''प्राचीन साहित्य में महर्षियों के विचार इसकी पुष्टि करते हैं कि तत्कालीन शिक्षा उत्कृष्ट कोटि की थी।''[1] वह शिक्षा आत्म ज्ञान कराने का साधन थी। छात्र 'असत' में से बाहर निकलकर 'सत' की ओर बढ़ते और समस्त विश्व भारतीय कुटुम्बवत लोक कल्याण के मूल्यों में बँधा था। भारत में प्राचीन सभ्यता का जन्म सिन्धु घाटी में वैदिक काल से भी पहले हो चुका था। ऐसा मानते हैं कि यह सभ्यता 5000 वर्षो से भी पूर्व की है। इसकी खुदाईयों के अवशेष तत्कालीन नगर सभ्यता का परिचय देते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में कला, संगीत, गणित, ज्योतिष, निर्माण आदि का प्रचलन था। वैदिक कालीन धार्मिक ग्रन्थों से भी तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वैदिककाल में ब्रह्मचार्य आश्रम में विद्यार्थी गुरु आश्रमों में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे।[2]

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य :-

असतों मा सत् गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माअमृतं गमय।।

अर्थात् विद्या ही व्यक्ति को अज्ञानरुपी अन्धकार में से ज्ञानरुपी प्रकाश में ले जाती है। विद्यापान अमृत पीने का साधन है जिसे पी कर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त करता है।

वैदिक काल में शिक्षा गुरु के सानिध्य में उनके पास रहकर प्राप्त करते थे। छात्र ब्राह्माचार्य का पालन करते हुये आश्रम के अनुशासन में बन्धे शिक्षा ग्रहण के साथ गुरु सेवा भी करते थे। गरुकुल का पाठ्यक्रम वेद, पुराण, उपनिषद्, ज्योतिष, नीतिशास्त्र एवं शास्त्रविद्या पर प्रधानत: आधारित था। वैदिक काल में शिक्षा सांस्कृतिक व नैतिक मूल्यों का ज्ञान कराने हेतु थी। वह आध्यात्मिकता और आदर्शवाद से प्रभावित थी। बौद्ध धर्म व जैन धर्म में भी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को मोक्ष प्राप्ति के साधनों से अवगत कराना था। वह सांसारिक दु:खों से मुक्ति दिलाने के मूल्यों को अपनाने पर जोर देती थी। मध्ययुगीन इस्लामी शिक्षा का स्वरूप भी धार्मिक था जहां मकतब, दरगाह, मदरसों में कुरान द्वारा बालकों को धार्मिक क्रियाओं में प्रशिक्षित किया जाता था।

आधुनिक काल में प्रचलित शिक्षा पद्धतियां :

आधुनिक काल में दो प्रकार की शिक्षा पद्धतियां प्रचलित थी। पहली पद्धति ब्रिटिश सरकार द्वारा अपने शासन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विकसित की गई सरकारी स्कूलों और विश्वविद्यालयों की पद्धति थी और दूसरी संस्कृत, व्याकरण, दर्शन आदि भारतीय वाड़मय की विभिन्न विद्याओं को प्राचीन

 ISSN 2277-5587

परम्परागत विधि से अध्ययन करने की पाठशाला पद्धति।[3], दोनों पद्धतियों में कुछ गम्भीर दोष थे। पहली पद्धति में पूर्वी ज्ञान की घोर उपेक्षा थी और वह सर्वथा अराष्ट्रीय थी। इसके प्रबल समर्थक तथा 1835 ई. में अपने सुप्रसिद्ध स्मरणपत्र द्वारा इसका प्रवर्तन कराने वाले लार्ड मैकालें (1800-1859) के मतानुसार किसी अच्छें यूरोपीय पुस्तकालय की अलमारी के एक खाने में पड़ी पुस्तकों का महत्व भारत और अरब के समूचे साहित्य के बराबर था। अत: सरकारी शिक्षा पद्धति में भारतीय वाड्मय की घोर उपेक्षा करते हुये अंग्रेजी तथा पाश्चात्य साहित्य और ज्ञान विज्ञान के अध्ययन पर बल दिया गया। इस शिक्षा पद्धति का प्रधान उद्देश्य मे काले के शब्दों में ''भारतीयों का एक ऐसा समूह पैदा करना था, जो रंग तथा रक्त की दृष्टि से तो भारतीय हों परन्तु रुचि मति और आचार-विचार की दृष्टि से अंग्रेज हों।''[4]

इसलिए यह शिक्षा पद्धति भारत के राष्ट्रीय और धार्मिक आदर्शों के प्रतिकूल थी। दूसरी शिक्षा पद्धति, पंडितमंडली में प्रचलित पाठशाला पद्धति थी। इसमें यद्यपि भारतीय वाड्मय का अध्ययन कराया जाता था, परन्तु उसमें नवीन तथा वर्तमान समय के लिए आवश्यक ज्ञान-विज्ञान की घोर उपेक्षा थी। उस समय देश की बड़ी आवश्यकता पूर्वी एवं पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का समन्वय करते हुये दोनों शिक्षा पद्धतियों के उत्कृष्ट तत्वों के सामंजस्य द्वारा एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास करना था। इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने बड़ा योगदान दिया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु के पश्चात स्वामी श्रद्धानन्द जी ने वैदिक शिक्षा व संस्कृति के प्रचार-प्रसार का कार्य किया। महात्मा मुंशीराम ही ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारत में मे कालें की प्रचलित शिक्षा पद्धति के स्थान पर महर्षि-अनुमोदित गुरुकुल प्रणाली को प्रतिष्ठित करने तथा मातृभाषा हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देने का क्रान्तिकारी स्वप्न लिया और ब्रिटिश काल में ही अपने अथक प्रयासों एंव दृढ़ संकल्प से गुरुकुल स्थापित करकें उसे विकसित रुप प्रदान किया, उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया, अनेक कठिनाईयों के बावजूद दिन-रात उसके विकास के लिए तत्पर रहे तथा अपने इस अद्भूत परीक्षण की सफलता से न केवल भारतीयों के, वरन विदेशियों के भी आदर पात्र बन गये।[5], स्वामी श्रद्धानन्द जी भारत के उन महान राष्ट्रभक्त, सन्यासियों में अग्रणी थे। जिन्होंने जीवन स्वाधीनता, स्वराज, शिक्षा तथा वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया था। वे अपने गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त और उनके उद्देश्यों के प्रति समर्पित शिष्य थे। वैदिक धर्म, वैदिक संस्कृति और आर्य जाति की रक्षा के लिए, मरणासन्न अवस्था में उसे पुन: प्राणवान, गतिवान बनाने के लिए, उसे सर्वोच्च शिखर पर पहुंचाने के लिए आर्य समाज ने सैंकड़ों बलिदान दिये हैं उसमें प्रथम पंक्ति पुरुष स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती थे।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का जन्म 22 फरवरी 1856 (फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी विक्रम संवत् 1913) को पंजाब प्रान्त के जालंधर जिले के तलवान ग्राम में हुआ था। इनके पिता लाला नानकचन्द, ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा शासित यूनाइटेड प्रोविन्स (आधुनिक उत्तर प्रदेश) में पुलिस अधिकारी थे। इनके बचपन का नाम मुंशीराम था।[6] पिता का तबादला अलग-अलग स्थानों पर होने के कारण उनकी प्रारम्भिक शिक्षा सुचारु रुप से नही हो सकी। वे एक सफल वकील बने तथा काफी यश तथा प्रसिद्धी प्राप्त की। आर्य समाज में वे बहुत सक्रिय थे। इनका विवाह शिवा देवी के साथ हुआ। सन् 1917 में इन्होंने सन्यासी जीवन धारण कर लिया कालान्तर में ये स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरुकुल प्रारम्भ करके, देश में पुन: वैदिक शिक्षा को प्रारम्भ कर महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को प्रचार-प्रसार व कार्यरुप में परिणित किया, वेद और आर्य ग्रन्थों के आधार पर जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था उन सिद्धान्तों को कार्य रुप में लाने का श्रेय स्वामी श्रद्धानन्द जी को ही है, गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना, अछूतोद्धार, शुद्धि, सधर्म प्रचार पत्रिका द्वारा धर्म प्रचार, सत्य धर्म के आधार पर साहित्य रचना, वेद पढ़ने व पढ़ाने की व्यवस्था करना, धर्म के पथ पर अडिग रहना, आर्य भाशा के प्रचार तथा उसे जीवको-पार्जन की भाषा बनाने का सफल प्रयास, आर्य जाति के उन्नति के लिए हर प्रकार के प्रयास करना आदि ऐसे कार्य है जिनके फलस्वरुप स्वामी श्रद्धानन्द अनन्त काल के लिए अमर हो गये।

स्वामीजी के लिए शुद्धि के काम की सर्वोच्च प्राथमिकता थी। स्वामी जी ने इसके लिए 1923 में शुद्धि सभा का गठन किया और शुद्धि आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसके अन्तर्गत वे सभी जो विधर्मी हो गये थे उन्हें पुन: हिन्दु धर्म में दीक्षित किया गया साथ ही अनेक मुसलमानों को उनकी इच्छा से वैदिक धर्म में प्रविष्ट किया गया। स्वामी जी द्वारा प्रारम्भ किये गये शुद्धि आन्दोलन के कारण मुसलमानों में स्वामी जी के प्रति आक्रोश और असन्तोष की भावना उठी जिसके परिणामस्वरुप 23 दिसम्बर 1926 को उनके निवास स्थान पर अब्दुल रशीद नामक एक उन्मादी ने धर्म चर्चा के बहाने उनके कक्ष में प्रवेश करके इस महान विभूति की हत्या कर दी। आर्य समाज द्वारा प्रत्येक वर्ष 23 दिसम्बर को बलिदान दिवस के रूप में मनाया जाता है।[7]

शिक्षा को समाज का मेरुदण्ड मानते हुये स्वामी जी ने इसे किसी धर्म मत से पृथक रखने का आह्वान किया। यथार्थ सनातन तत्वों को जनता के समक्ष रखा। इन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती की तरह उदान्त वैदिक मंत्रों की मेंघ गर्जना के द्वारा देश में पुन: प्राण वायु का संचार करने को महत्व दिया। स्वामी जी के काल में स्त्री शिक्षा शून्य थी उनका घर से निकलना ही मुश्किल था। मुंशीराम ने स्त्री शिक्षा की और लोगों का ध्यान खींचा तथा उन्ही के प्रयासों से जालंधर में कन्या महाविद्यालय की स्थापना हुई।[8]

महात्मा मुंशीराम भारतीय सांस्कृतिक पुर्नजागरण में असाधारण महत्व रखने वाले आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द (1824-1883) के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में प्रतिपादित शिक्षा सम्बन्धी विचारों से बड़े प्रभावित थे।[9], 19वीं शताब्दी में प्रचलित पाश्चात्य शिक्षा के परिणामस्वरूप वैदिक शिक्षा और संस्कृति का ह्रास हो रहा था जिसे पुनर्जीवित करने के लिए स्वामी जी ने 1897 में अपने पत्र सधर्म प्रचारक द्वारा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्वार का प्रबल आन्दोलन प्रारम्भ किया, व 30 अक्टूबर 1898 को उन्होंने इसकी विस्तृत योजना रखी। नवम्बर 1898 ई. में पंजाब के आर्यसमाजों के केन्द्रीय संगठन आर्य प्रतिनिधि सभा ने गुरूकुल खोलने का प्रस्ताव स्वीकार किया। महात्मा मुंशीराम के कठोर प्रयत्नों से 16 मई 1900 ई. को पंजाब के गुजरांवाला स्थान पर एक वैदिक पाठशाला के साथ गरुकुल की स्थापना की गई।[10]

किन्तु महात्मा मुंशीराम को यह स्थान उपयुक्त प्रतीत नहीं हुआ। जिससे इसे 4 मार्च 1902 को गुजरांवाला से काँगडी नजीबाबाद के धर्मनिष्ठ रईस मुंशी अमनसिंह जी द्वारा दान की गई भूमि पर स्थानान्तरित कर दिया गया। गुरूकुल काँगड़ी का आरम्भ 34 विद्यार्थियों से किया गया। पंजाब की आर्य जनता के उदार दान और सहयोग से इसका विकास तीव्र गति से होने लगा। 1907 ई. में इसका महाविद्यालय विभाग आरम्भ हुआ।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति की प्रमुख विशेषताऐं :

- विद्यार्थियों का गुरुओं के सम्पर्क में, उनके कुल या परिवार का अंग बनकर रहना।
- ब्रह्मचार्यपूर्वक सरल एवं तपस्यामय जीवन बिताना।
- चरित्र निर्माण और शारीरिक विकास पर बौद्धिक एवं मानसिक विकास की भाँति पूरा ध्यान देना।
- शिक्षा में संस्कृत को अनिवार्य बनाना, वैदिक वाङ्मय के अध्ययन पर बल देना।
- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हिन्दी को बनाना।
- संस्कृत, दर्शन, वेद आदि प्राचीन विशयों के अध्ययन के साथ आधुनिक पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और अंग्रेजी की पढ़ाई तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास।

स्वामी जी का 19 वीं एवं 20वीं शताब्दी में शिक्षा के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान रहा। इस काल में पाश्चात्य शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के बावजूद स्वामी जी ने गुरुकुल पद्धति की स्थापना कर वैदिक शिक्षा व संस्कृति को पुन: पुनर्जीवित करने का अति महत्वपूर्ण कार्य किया। जिससे देश के लोगों में राष्ट्र भावना, स्वदेश भावना, स्वाधीनता की भावना का विकास हुआ। स्वामी जी के शिक्षा के क्षेत्र में किये कार्यो से प्राचीन काल में प्रचलित पद्धति की पुन: स्थापना हुई।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 अल्टेकर, ए.एस : ऐजूकेशन इन एनशियन्ट इण्डिया, पृ. 6

2 श्रीवास्तव, के.सी : प्राचीन भारत का इतिहास, पृ. 767

3 शुक्ल, रामलखन : आधुनिक भारत का इतिहास पृ. 294

4 एजुकेशन इन इण्डिया : सी.आर.आर.आई.डी. चण्डीगढ़ 1985, पृ. 63 (1781-1985)

5 विद्यालंकार, विनोदचन्द्र : स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण व्यक्तित्व, पृ. 13

6 चतुर्वेदी, उमा : स्वामी श्रद्धानन्द पृ. 7

7 विद्यालंकार, विनोदचन्द्र : स्वामी श्रद्धानन्द एक विलक्षण व्यक्तित्व पृ. 45

8 कुमार, नरेन्द्र : अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द पृ. 8

9 प्रताप, महेन्द्र : आर्य समाज-शिक्षा दर्शन पृ. 77

10 आर्य, हरिदेव : संघर्षमूर्ति:स्वामी श्रद्धानन्द पृ. 30

'धुक्षते हा धरित्री' महाकाव्य में युग चेतना

आरती पुण्ढ़ीर
शोध छात्रा, डी.ई.आई. दयालबाग, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

डॉ. अशोक कुमार डबराल कृत 'धुक्षते हा धरित्री' महाकाव्य वर्तमान परिस्थितियों से शतधा अनुप्राणित हैं। इसमें नेता, अभिनेता स्वाधीनता, आतंकवाद एवं पर्यावरण जैसे विषयों को व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। एकादश सर्गों में निबद्ध यह महाकाव्य युगीन परिस्थितियों से पूर्णत: प्रभावित है। युगीन सन्दर्भ में कहा जाए तो इसमें प्रेम की प्रवंचना, हत्या, अपहरण, आतंकवाद, प्रदूषण, भ्रष्टाचार, स्वच्छन्दता, चारित्रिक पतन, भूख, शोषण, सामाजिक यन्त्रणा, लोकतन्त्र की विडम्बना आदि अनेक गम्भीर समस्याओं को प्रस्तुत किया गया है।

यह महाकाव्य पूर्णत: वर्तमान में घटित हो रही परिस्थितियों पर आधारित है। कवि ने आज की परिस्थिति को अपने काव्य में ज्यों का त्यों उतारा है। यह विशेषता उनकी उद्बुद्ध चेतना तथा जागरुकता का प्रबल उदाहरण है।

चेतना शब्द (स्त्री) **(चित्+युच्+टाप्)** संज्ञा, बोध। समझ, सजीवता, ज्ञान। बुद्धि, विवेक। **(संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ)** चेतना बुद्धि अथवा मानस की एक विशेषता या शक्ति है जिससे जीव या प्राणी की आन्तरिक अनुभूतियों, भावों, विचारों और बाह्य घटनाओं या तत्त्वों का अनुभव होता है। व्यापक रुप में चेतना सत्य, शाश्वत्, सनातन तथा सृष्ट और असृष्ट सम्पूर्ण जगत् की मूल क्रियात्मक शक्ति है। दर्शन में इसे '**नित्यो नित्यानाम् चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्**' इन शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है। चेतना समस्त प्राणियों की जीवनशक्ति है। ज्ञान, अनुभूति एवं क्रिया के आधार पर इसके कई रुप होते हैं।

युग चेतना से अभिप्राय तत्कालीन परिस्थितियों, समस्याओं एवं परम्पराओं के प्रति जागरुक होना तथा उनके प्रभाव का बोध होना है। साहित्यकार समाज की विशिष्ट इकाई है। वह सहृदय, प्रबुद्ध, सामाजिक, द्रष्टा, मनीषी और प्रजापति है। साहित्यकार अपने युग की प्रतिकृति होता है। प्रत्येक युग में कवि अपनी तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार काव्य के लिए विषय, भाषा, शैली, भाव आदि ग्रहण करके काव्य की रचना करता है। आधुनिक संस्कृत साहित्यकार भी प्रांसगिक घटनाओं अथवा विषयों को पहचानते हुए उन्हें अपने काव्य के माध्यम से प्रस्तुत करता है। इक्कीसवीं सदी में संचार माध्यमों के विस्तार के साथ अनेक समस्याएँ भी बढ़ी हैं। आज हमारी यह धरित्री जिस असहय पीड़ा से दु:खी है, उस पीड़ा को ही उसी धरती माता के मुख से सुनने व समझने का प्रयास ही 'धुक्षते हा धरित्री' है। जन्मभूमि भूमि के जन और जन की संस्कृति के कुशल क्षेम के बिना तो कोई भी कार्य सम्भव नहीं है। देश की मिट्टी और उसकी सुगन्ध प्रत्येक हृदय को आनन्दित करती है।

वेदों में पृथ्वी के सन्दर्भ में अनेक उक्तियाँ मिलती हैं-

"अदितिः कामदुघा पप्रथाना' (12.1.61)

- यह विस्तृत धरती हमारे लिए कामधेनु है।

'ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती' (12.1.45)

- यह धरती अचंचल गाय की भाँति धन और दूध देती है।

'पृथिवी देवी सुमनस्यमाना' (11.1.8)

- पृथ्वी देवी सद्भावना वाली है।

वेदों की इन ऋचाओं से लेकर स्वतन्त्रता- संग्राम के वीर योद्धाओं के 'वन्देमातरम्' तक सदा गीतों में गरिमा मण्डित, हृदय-स्पर्शी धमनियों में संचरित भावों की देवी जीती- जागती भूमाता आज कंकड़-पत्थर, लोहा, कोयला, तेल, पानी अन्न आदि की जड़ मूर्ति रह गई है।

धरती अपने पुत्रों के द्वारा अपने पर हुए अत्याचारों से व्यथित होकर अपने पिता (ब्रह्मा) को बताती है। धरती सोच रही है कि मैं इस माध्यम से अपनी बात अपने पिता ब्रह्माजी से कहूँ। धरती तत्काल ही मानव द्वारा धरती पर लगाए गए उपकरण फोन द्वारा अपनी पीड़ा जगत पिता तक पहुँचाती है। धरती अपने पिता ब्रह्मा जी को फोन पर सन्देश देते समय **'हल्लो ब्रह्मन्' हलो ब्रह्मन्।** कहकर सम्बोधित कर रही है। यह आधुनिक रुढ़ि भी कवि की युग चेतना को ही प्रदर्शित करती है।

संस्कृत में **'अला'** शब्द **'सखी' 'मित्र'** सूचक है। पुत्री के द्वारा ऐसा सम्बोधन सुनकर ब्रह्माजी उसे अपने साथ परिहास समझकर कहते हैं- **पुत्री! तुम कौन हो ? क्या कहा तुमने हलाहल नहीं बेटी। मैं बूढ़ा हलाहल पीने में समर्थ नही हूँ। यदि तुम पृथ्वी में हलाहल से व्याकुल हो तो तुम इसके लिए शिव से कहो।** वही हलाहल पीने में समर्थ हैं-

"यदि हालाहलेनासि, त्वं बाले व्याकुल तदा
हलाहलस्य पानाय नीलकण्ठं निमंत्रय"

धरती के द्वारा ब्रह्मन् की ध्वनि गुरुत्वाकर्षण को भेदकर आकाश मण्डल से भी ऊपर ब्रह्मलोक में ब्रह्मा जी के कानों में पड़ती है। यहाँ व्यंग्य के रुप में कहा गया है। जिस दिन हमारा विज्ञान ब्रह्मलोक तक पहुँच जाएगा उस दिन मानव के यंत्रों की घरघराहट से ब्रह्मा जी के कान अवश्य बहरे हो जाएंगे।

वर्तमान समय में **भ्रष्टाचार** ने चहुँ ओर अपने पाँव जमा रखे हैं। बिना मद्य, मांस, लूट-खसोट के बिना जीवन, जीवन नहीं है- यही चारों ओर देखने को मिलता है। **जनता के मत के द्वारा चुनी गई सरकार के द्वारा जनमत का कभी भी आदर नहीं किया जाता है। कहा जाता है 'मांगने से मान घटता है' इस बात पर तो सन्देह होने लगा है क्योंकि 'मत' मांगने वाले नेताओं का दिन-प्रतिदिन मान बढ़ता ही जाता है। इस मतदान की कृपा से नेताजी लोकनाथ हो गए हैं और वही नागरिक मतदान के कारण (भिखमंगा) हो गया है।**

आतंकवाद आज हमारे देश की बड़ी समस्या बन गया है। व्यक्ति न घर में सुरक्षित है न कार्यालय में न विद्यालय में न बाजार में चारों तरफ वह असुरक्षित ही है। राष्ट्राध्यक्षों, प्रतिनिधिगणों, नेताओं, धर्माधिकारियों, कूटनीतिज्ञों, युद्ध के विशेषज्ञों और मूर्खों की लगातार युद्ध की घोषणाओं ने सम्पूर्ण मानवता को मानो मारने के लिए चक्रव्यूह में डाल दिया है। अनेक विशेषताओं से युक्त विदेशी प्रक्षेपास्त्र, रॉकेट, हथगोले, बन्दूकों को चलाने में निपुण यह सृष्टि को नष्ट करने में लगा पड़ा है।

वर्तमान समय में **तकनीकी** का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण हो गया है जिसके एक तरफ अनेक लाभ हैं तो वहीं दूसरी ओर अनेक दुष्प्रभाव भी हैं। कवि कहते हैं अरी नासमझ लड़की, इस जंगमवाणी (मोबाइल) से क्या तुम्हें डर नहीं लगता ? इस बहरे युग में तो दीवारों के भी कान होते हैं। यहाँ कवि व्यंग्य रुप में हँसाने के लिए ही नहीं वरन् वास्तविक रुप में वर्तमान समय की यथार्थता से परिचित कराने का प्रयास कर रहे हैं।

वर्तमान समय में **गुरु एवं शिष्यों के सम्बन्धों** में भी तेजी से परिवर्तन हुआ है। छात्रों में बढ़ती अनैतिकता, तेजी से बढ़ती विलासिता और चरित्रहीनता का प्रभाव भी दिन प्रतिदिन दिखाई पड़ता है। घर भी अब घर नही रहे, यह तो मानो रैनबसेरा है यहाँ पर रात में सोने के लिए आते हैं और सुबह होते ही चले जाते है जिससे वह घर के बच्चों को भी समय नहीं दे पाते हैं जिसके कारण बालकों में अनेक बुराईयाँ उत्पन्न हो रही है।

आज **फैशन के इस दौर में नारी** ने अपने शील, मर्यादा जैसे गुणों को त्यागकर आधुनिका बनने की होड़ में लगी हुई है।

"सेयं सुमुण्डिता नारी नग्निका नाखिनी नटी।
त्वां त्यक्त्वाऽन्यत्र गच्छेच्चेत् किं धृत्वेना तु रोत्स्यसि।।"

श्रीमान् ! यह तो बताइए कि यह बोल्डकर नग्न अल्पवस्त्रों वाली बड़े-बड़े नाखूनों वाली नटी, यदि तुम्हें छोड़कर भागने लगे तो क्या इसे पकड़ कर रोक लोगे ? पगले ? यह तो आवारा लड़की पार्क में मदिरा में या क्लबों में तुम्हारे चारों ओर रहती है क्या यह तुम्हारी पतिव्रता अर्धांगिनी होने की योग्यता रखती है ? कवि की सत्यपरक वाली द्वारा विदीर्ण हृदया आधुनिकाएँ भले ही तिलमिलाएँ किन्तु कवि ने एक सत्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है।

वर्तमान में मनुष्य अपने स्वार्थ हेतु प्रकृति का अत्यधिक दोहन कर रहे हैं, जिससे जंगली-जानवर व पक्षी बेघर होते जा रहे हैं। उसी प्रकार आज घर में पुत्र-पौत्र के आने पर वृद्ध माता-पिता भी बेघर, निःसहाय हो गए हैं। वृक्षों के साथ-साथ जल की महिमा एवं जल की महिमा के साथ-साथ जीवन की गरिमा का विस्तार से वर्णन कर इस धरती की सुजला, सुफला एवं शस्य श्यामला स्वरुप के लिए प्रकृति की रक्षा की कामना की गई है।

धरती की वेदना भारतीय समाज की वेदना है। अगर यह धरती रहेगी

तभी क्रिकेट के विकेट और नेताओं के झण्डे गड़ेंगे। उद्घाटन भी होंगे शिलान्यास भी। मंच, शामियाने, जुलूस और जलसे भी होगें किन्तु यह धरती नहीं रही तो हॉकी की स्टिक कहाँ घूमेगी ? हवा में वार करने वाली मिसाइलें कहाँ खड़ी होंगी ? यह सब मनोरंजन धरती पर ही होंगे इसलिए हमें धरती माँ की समस्याओं को समझना होगा और उन्हें दूर करने का प्रयास भी करना होगा। जिस प्रकार एक माता अपने पुत्र को कष्ट में देखती है तो उसे कष्ट मुक्त करने के लिए हरसम्भव प्रयास करती है। उसी प्रकार हमें भी पुत्र रुप में धरती माँ की वेदना को दूर करना होगा क्योंकि पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं। यही कृतज्ञता प्रत्येक नागरिक के हृदय में होनी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलनम्- डॉ. रामजी उपाध्याय, आयुर्वेद संस्कृत हिन्दी पुस्तक भण्डार, जयपुर, 2003।*

2 *अर्वाचीन संस्कृत महाकाव्यानुशील- डॉ. रहस बिहारी द्विवेदी, सागरिका समिति, गौरनगरम् सागर (म.प्र.) 2004।*

3 *ऋग्वेदीय दर्शन एवं प्रमुख दार्शनिक सूक्त- डॉ. मुरली मनोहर पाठक, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2003।*

4 *गढ़वाल की संस्कृत साहित्य को देन- डॉ. प्रेमदत्त चमोली, 2005।*

5 *हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना- डॉ. लालसाहब सिंह, नमन प्रकाशन, नईदिल्ली 1998।*

6 *संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ- पण्डित तरिणीश, स्वर्गीय द्वारका प्रसाद शर्मा रामनारायण लाल प्रकाश, इलाहाबाद पुस्तक भण्डार, इलाहाबाद 1957।*

हिन्दू स्त्री और उत्तराधिकार विधि

डॉ. पंकज गौर
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

shodhshree@gmail.com

प्राचीन युग से ही स्त्री को बहुत ही उच्च स्तर प्रदान किया जा रहा है। विश्व की प्रत्येक व्यवस्था में नारी को अति सम्मान दिया है। प्राचीन हिन्दू शास्त्रीय परम्परा में नारी का स्थान सर्वोच्च है। मानव जीवन की धुरी तीन आधारों पर टिकी है ज्ञान, धन, शक्ति। ज्ञान, धन व शक्ति की स्वामिनी के रुप में स्त्री वाचक शब्द का प्रयुक्त होना उसकी उच्चता का बताता है। स्त्री को ज्ञान की देवी, धन की देवी व शक्ति रूपा माना है। नारी रुपा लक्ष्मी को ही धन की स्वामीनी बताया है जबकि कुबेर (पुलिंग शब्द) को केवल उस धन का रक्षक या कोषाध्यक्ष के रुप में वर्णित किया है। शक्ति के रुप में स्त्री वाचक देवियों का वर्णन मिलता है और उन्हें इतना शक्तिशाली बताया गया है सम्पूर्ण संसार से क्षत्रियों का अन्त करने वाले सर्वसत्रान्तक परशुराम भी पार्वती द्वारा उबटन से बनाये गये गणेश को पराजित नहीं कर पाते है, क्योंकि उस गणेश के बल का आधार पार्वती है। विद्या की देवी के रुप में सरस्वती सर्वविदित है जिसकी चरणवंदना कर ही विद्वजनों ने विधि की पुस्तकें लिखी। इसमें संदेह नहीं कि प्राचीन भारतीय विधि निर्माताओं ने सरस्वती को उच्च स्थान दिया है।

उपरोक्त बातें साहित्यिक धार्मिक दृष्टि से ही सही है जहां तक अधिकारों और विशेष रुप से साम्पतिक अधिकारों का प्रश्न है नारी उपेक्षित रही है। यह हिन्दू विधि व्यवस्था के उतरोत्तर विकास का परिणाम था कि नारी के सम्पत्ति विषयक अधिकारों को समाप्त करके उसे कमजोर बनाया गया।

सम्पत्ति विषयक अधिकारों के विभाजन के लिये दायभाग शब्द प्रयुक्त हुआ। दायभाग सामान्यत: सम्पत्ति के विभाजन से ही सम्बन्ध रखता है। दाय शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में हुआ है।

ददान्तु वीरं शतदाय मुक्थ्यम्

शतदाय शब्द को **सायण** ने प्रभूतदाय अर्थात् वसीयत के रुप में किया है।

तैतरीय संहिता में 'दाय' शब्द का प्रयोग सम्पत्ति या पैतृक सम्पत्ति के रुप में हुआ है।

नाथानेदिष्ट की गाथा में 'दाय' का अर्थ धन के रुप में प्रयुक्त हुआ है। **सूक्तों व स्मृतियों** में दाय के रुप में काम में आने वाला दूसरा शब्द रिक्थ भी ऋग्वेद में आया है।

वैदिक साहित्य में 'दायद' शब्द का अर्थ **सहअंशग्राही** अर्थात् आने अंश को पाने वाले के रुप में भी आया है। पाणिनि ने दायद का सामान्य अर्थ सम्पत्ति में हिस्सा प्रदान करने वाले व्यक्ति से लिया गया है। **नारद** ने दाय भाग का व्यवहार पद को ऐसा माना है जिसमें पुत्र अपने पिता के धन के विभाजन का प्रबन्ध करते हैं। **स्मृति चन्द्रिका** के अनुसार दाय वह धन है जो माता या पिता से किसी पुरुष को प्राप्त होता है।

ISSN 2277-5587

दायभाग, मिताक्षरा और अन्य ग्रन्थों में नारद के पित्रयस्य (पिता का) एवं पुत्रै (पुत्रों द्वारा) को केवल उदाहरण के रुप में लिया गया है। जहां कहीं भी दायभाग शब्द प्रयुक्त हुआ है उसका वास्तविक अर्थ सम्बन्धियों (पिता पितामह आदि) के धन का सम्बन्धियों (पुत्रों, पौत्रों आदि) में विभाजन होना है और उसका कारण है मृत स्वामी से उनका सम्बन्ध। **मनु** और **नारद** ने माता के धन के विभाजन को भी दायभाग में रखा है।

स्त्री और दाय अधिकार

अति प्राचीन काल से ही कन्या की स्थिति परिवार में समाज में उपेक्षित रही जिसका प्रभावस्वरुप उसके साम्पतिक अधिकार भी उपेक्षित रहे। वैदिक काल में भी सामान्यत: कन्या को पैतृक सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त नहीं होता था क्योंकि पैतृक सम्पत्ति में उत्तराधिकार का निर्धारण कार्यानुसार होता था और आधार था पिण्डदान अर्थात् जो पितृदान कर पितरों को सन्तुष्ट करे वहीं सम्पत्ति का अधिकारी होगा। चूंकि पिण्डदान का अधिकार कन्या को नहीं था इसलिये उसे सम्पत्ति अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

परिवार के मूल पुरुष से तीसरी पीढ़ी तक के पुरुष अपनी स्त्रियों और अविवाहित कन्याओं के साथ सपिण्ड और गोत्रज कहलाते है। अत: यदि भाई के अभाव में जब पुत्री अपने पुत्र द्वारा पिण्डदान करवाती थी तो वह सम्पत्ति की अधिकारीणी हो जाती थी।

अमाजु अर्थात् अविवाहित पुत्री का अधिकार भी व्याख्याकारों ने नहीं छीना था वह भी पिता की सम्पत्ति का अधिकारीणी होती थी।

अमाजूरिव पित्रो: सचा सति, समानादा सद सस्त्वामिये गभम्।
कृधि प्रकेमुप मास्था भर, दुद्धि भागं तत्वा येन यामह: ।।

अर्थात् जीवन भर पितृगृह में रहने वाली स्त्री के तुल्य, माता-पिता के साथ रहने वाली पुत्री पैतृक घर से ही धन मांगती है। विचार करके और गणना करके उसे धन दें। उसे जीवन निर्वाह के लिये उसका अंश दें जिससे वह अतिथि सत्कार आदि कर सके। अमाजु स्त्री का भरण पोषण पिता की मृत्यु के पश्चात् असंभव नहीं हो जाये यही सोचकर पैतृक सम्पत्ति में उसे अधिकार दिलाने के लिये शास्त्रकारों ने प्रबल समर्थन दिया।

स्मृतिकारों व व्याख्याकारों के विचार इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न रहे। यहां **मनु** के अनुसार पिता की सम्पत्ति के अधिकारी केवल पुत्र ही होते हैं वहीं **यास्काचार्य** ने पुत्र व पुत्री को समान अधिकार दिलाया किन्तु केवल अमातवृति कन्या को ही अधिकार मिला।

गौतम ने पहली बार पत्नी के अधिकारों का समर्थन करते हुए कहा है कि बिना पुत्र या पुत्री वाले व्यक्ति के मरने पर उसके सपिण्ड, सगोत्र और समान ऋषि वाले तथा उसकी **स्त्री सम्पत्ति की भागी हो।** **आपस्तम्ब** ने कन्या को दायाधिकार तो दिया किन्तु सपिण्ड दायाद, आचार्य व सपिण्ड के अभाव में ही उसे अंतिम अधिकारी माना।

याज्ञवल्क्य के अनुसार भाई व पुत्रों तक के उत्तराधिकारियों के अभाव में गोत्रजों को उत्तराधिकार मिलता है। मिताक्षरा के अनुसार गोत्रजों में सर्वप्रथम पिता की माता को अधिकार दिया गया उसके पश्चात् अन्य सपिण्डों व समानोदकों को। इसी प्रकार **व्यवहार मयूख** में भी पिता की माता को गोत्रजों में सर्वप्रथम स्थान दिया गया।

चौथी ईसा पूर्व में हम **कौटिल्य** को देखते हैं जिन्होंने कन्या को साम्पतिक अधिकार दिलाये। उसने सम्पत्ति को एक साथ मिलाकर भाई बहिनों में बांटने की बात कही है। यह हिस्सा भाईयों की सम्पत्ति का चौथा अंश होता था। जो यह हिस्सा नहीं देता है मनु भी उसकी भर्त्सना करता है **कात्यायन** ने उक्त स्मृतिकारों का अनुमोदन किया है।

मनु ने कन्या के लिये भाई के हिस्से में से चतुर्थ अंश का विधान तो कर दिया किन्तु कोई निश्चित रुप ने होने के कारण यह मान्यता प्राप्त नहीं कर सका और आगे चलकर कन्या का चतुर्थ भाग उसके विवाह खर्च में तिरोहित हो गया।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि स्त्री अपनी तीन अवास्थिति में दाय प्राप्त करने का अधिकार रखती रही है यह इस प्रकार है- विधवा के रूप में, पुत्री के रुप में व माता के रुप में।

विधवा के रुप में दाय भाग- प्राचीन काल में विधवा दाय भाग प्राप्त करने की दृष्टि से उपेक्षित रही। मनु और बौधायन ने पत्नी को दायदों में नही रखा। **याज्ञवल्क्य** और **विष्णु** ही ऐसे स्मृतिकार थे जिन्होंने सर्वप्रथम इन्हें दायदों में स्थान दिया।

देवल और **व्यवहार** रत्नाकर ने व्यक्ति के भाईयो, कन्याओं, पिता, सौतेले भाईयों, माता एवं पत्नी को क्रम से रिक्थाधिकारी माना।

विधवा के दायधिकार के सम्बन्ध में **बृहस्पति** ने क्रान्तिकारी मत दिया बृहस्पति ने पुत्रहीन व्यक्ति की पत्नी के प्रथम उत्तराधिकारी घोषित किया अपने मत को वेद, स्मृतियों व लोकाचार से सम्पुट करते हुए उन्होंने बताया कि पत्नी अर्द्धान्गिनी है और जब तक मृत व्यक्ति का आधा शरीर जीवित हो तब तक कोई अन्य व्यक्ति सम्पत्ति कैसे पा सकता है?

विभिन्न सूत्रकारों, लेखकों के मतों का खण्डन करते हुए **मिताक्षरा** ने यह तक किया कि यदि विधवा सदाचारिणी है तो वह अपने पुत्रहीन मृत पति की सम्पूर्ण सम्पत्ति की अधिकारीणी है। कालान्तर में अधिकांश लेखकों ने विधवा के उत्तराधिकार को मान्य ठहराया।

विधवा उत्तराधिकार के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तन 1937-38

में हिन्दू स्त्रियों के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारा कानूनों से तय हुआ। इसमें विधवा को पुत्र के अभाव में ही नहीं बल्कि उसके साथ सम्पत्ति का सह अंशधर बना दिया। इस कानून ने विधवाओं के सीमित अधिकार को पूर्ण बना दिया। लेकिन यह शर्त भी लगा दी कि यदि विधवा पुर्नविवाह कर लेती है तो फिर वह मृत पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारीणी नहीं रहेगी। किसी मृत व्यक्ति की एक से अधिक विधवाएं होने पर वे एक हिस्से के आपस में बराबर-बराबर बाटेंगी। साथ ही विधवाओं में उत्तरजीविता का सिद्धांत लागू किया गया अर्थात् जब तक कोई विधवा जीवित रहती है या पुर्नविवाह नहीं कर लेती तब तक मृत पति की सम्पत्ति में उसके अंश पर किसी अन्य का अधिकार नहीं हो सकता। सहदायिकी सम्पत्ति में वह अपने मृत पति के समान हित रखेगी। वर्ष 2005 में इस विधि में और सुधार हुआ है।

पुत्री- पिण्डदान की अधिकारीणी न होने के कारण शास्त्रों में पुत्री को दायभाग की अधिकारीणी नहीं माना। ऋग्वेद में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि औरस पुत्र अपनी बहिन को पैतृक सम्पत्ति नहीं देता।

न जामये तान्वी रिक्थमरिक,
चकार गर्भ सनितुर्निधानम्।

अर्थात् औरस पुत्र बहिन को पैतृक सम्पत्ति नहीं देता अपितु उसे पति के गर्भ का आधार बनाता है (अर्थात् पति से उसका विवाह कर देता है) इस प्रकार यदि पुत्र है तो वह ही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होगा पुत्री नहीं। पुत्र अपनी बहिन के विवाह की व्यवस्था करेगा और विवाह में जो व्यय होगा, वह करेगा। पैतृक सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार नहीं होगा। **वशिष्ठ, गौतम, बौधायन** ने उत्तराधिकारियों में पुत्री को कोई स्थान नहीं दिया है।

मनु ने पुत्र को पिता की आत्मा और पुत्री को पुत्र के समान बताकर कहा है कि पुत्री के रहते पिता की सम्पत्ति कौन ग्रहण कर सकता है। लेकिन मनुस्मृति के व्याख्याकारों **(मेघातिथि, कुल्लुक, नाराणय)** ने दुहिता शब्द को पुत्रिका के रुप में ग्रहण किया है और कहा कि पुत्रिका ही पुत्रवत होगी और रिक्थाधिकारीणी होगी अन्य कन्या नहीं। **मिताक्षरा** ने उसका खण्डन करते हुए कन्या को उत्तराधिकारीणी घोषित किया। यद्यपि मिताक्षरा ने विवाहित कन्याओं में उन कन्याओं को अधिक मान्यता दी जो अपेक्षाकृत निर्धन और अप्रतिष्ठित थी। दायभाग ने कुंवारी कन्याओं को अधिक मान्यता दी।

मनु ने कन्याओं के लिये एक व्यवस्था की उसके अनुसार अविवाहित कन्याओं के विवाहार्थ सभी भाई अपने-अपने भाग से अलग दें। जो भाई अपने अंश का चौथा भाग बहिन को नहीं देता है वह पतित होता है। याज्ञवल्क्य ने भी बाद में इसी प्रकार की व्यवस्था की।

आधुनिक विधि अर्थात् **हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम** 1956 के द्वारा पुत्री को सम्पत्ति उत्तराधिकार में विस्तृत अधिकार प्रदान किया। विधायन द्वारा उसे पुत्र की समानता में लाकर खड़ा कर दिया। अब पिता की सम्पत्ति में पुत्री पुत्र के समान अंश की उत्तराधिकारीणी है। यहां पुत्री शब्द में नैसर्गिक व दत्तक पुत्री क साथ-साथ गर्भस्थ पुत्री भी सम्मिलित हैं एक से अधिक पुत्रियां होने पर सभी पुत्रियों पुत्र के समान अंश पाती हैं। पुरानी हिन्दू विधि का विधवा कुंवारी, विवाहित, पुत्रहीन, पुत्रवान, विवाह विच्छेद युक्त आदि भेद अब मान्य नहीं हैं। सभी को समान दायअधिकार हैं।

माता- प्राचीन शास्त्रीय हिन्दू विधि में दोहिते के अभाव में माता पिता दाय के उत्तराधिकारी होते थे। माता पिता में से कौन वरीयता प्राप्त होता होगा इस पर मतैक्य नहीं है। **श्रकिर** के अनुसार दोनों साथ-साथ उत्तराधिकारी होते हैं। **याज्ञवल्क्य** ने माता को प्राथमिकता दी है तो दायभाग में व्याकरण की दृष्टि से पिता को प्रथम उत्तराधिकारी सिद्ध किया है। प्राचीनकाल में माता व पिता को प्राप्त उत्तराधिकार भी प्रवृति में भी भेद किया गया है। माता को प्राप्त उत्तराधिकार सीमित प्रकृति का जबकि पिता को प्राप्त उत्तराधिकार शाश्वत होता था।

यदि दत्तक पुत्र बिना पत्नी, पुत्री, पुत्र दोहिते छोड़े मरे तो पालक माता को उसकी सम्पत्ति पर उत्तराधिकार प्राप्त होता था। इसी प्रकार दो माताओं के दत्तक पुत्र के उपरोक्त दशाओं में करने पर दोनों माताएं सह उत्तराधिकारीणी होती थीं।

बम्बई को छोड़कर (क्योंकि यहां व्यवहार मयूख को प्रामाणिकता प्राप्त है) कहीं भी विमाता सपत्नी के पुत्र की सम्पत्ति का उत्ताराधिकार नहीं पाती। ऐसी अवस्था में मृतक की सम्पत्ति राजा की हो जाती थी और विमाता केवल भरण-पोषण की अधिकारिणी थी।

वर्तमान विधि में माता भी मृतक पुत्र की सम्पत्ति में मृतक पुत्र की अधिकारिणी है। मृतक चाहे उसका धर्मज पुत्र हो, अधर्मज पुत्र हो, दत्तक पुत्र हो, वह अपना अंश प्राप्त करती ही है। चाहे उसका पति से विवाह विच्छेद हो गया है, चाहे विवाह शून्य हो या शून्यकरणीय हो। सोतेली माता माता की श्रेणी में नहीं आती।

स्त्रीधन : स्त्रीधन का शाब्दिक अर्थ होता है- स्त्री का धन, स्त्री की सम्पत्ति अथवा वह धन जो स्त्री से सम्बन्धित है। परन्तु वास्तव में स्त्रीधन उसे ही कहा जाना चाहिये जिस पर उसे पूर्ण स्वामित्व व हस्तान्तरण की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

लेकिन **स्मृतिकारों व सूत्रकारों** ने स्त्रीधन पर भी स्त्री को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रायोगिक अधिकार नहीं दिये हैं। स्त्रीधन का संकेत वैदिक काल में मिलता है **आपस्तम्ब सूत्र** के अनुसार आभूषण और बान्धवों से प्राप्त धन स्त्रीधन है। **मनु, याज्ञवल्क्य, नारद** ने स्त्रीधन के

ISSN 2277-5587

पांच प्रकार और **विष्णु** स्मृति ने इसके 6 प्रकार बताये हैं। **कात्यायन** ने 26 श्लोकों में स्त्रीधन का विस्तृत वर्णन किया है।

मूल रूप से इसमें अध्याग्नि (विवाह संस्कार में अग्नि के समक्ष दिया गया धन), अध्यावाहनिक (पति के घर आने के समय दिया गया द्रव्य, मातृदत्त, भ्रातदत्त, पितृदत्त और प्रीतिदत्त (प्रीतिकर्म में दिया गया) धन सम्मिलित होता है।

वृहस्पति के अनुसार श्वसुर के द्वारा प्रदान की गई चल और अचल सम्पत्ति भी स्त्रीधन है।

आधुनिक हिन्दू विधि के अन्तर्गत उपहार, दान, भेंट और स्वअर्जित सम्पत्ति स्त्रीधन है। स्त्रीधन से क्रीत वस्तु व सम्पत्ति, स्त्री द्वारा भरण-पोषण के लिये प्राप्त धन से क्रीत सम्पत्ति स्त्रीधन है। स्त्रीधन का प्रयोग करने पर व्यवस्थाकारों ने कुछ परिसीमाएं लगाई। आधुनिक विधान में स्त्री धन के उपभोग विनियोग की स्त्री को पूर्ण स्वतन्त्रता है।

स्त्रीधन का उत्तराधिकार

प्रारम्भिक सूत्रकारों ने व्यवस्था की थी कि स्त्रीधन कन्या को ही मिले लेकिन शैने:शैने: इसमें पुत्रों को भी भागी बना लिया गया।

गौतम धर्म सूत्र में वर्णित है कि स्त्री की सम्पत्ति उसकी अविवाहिता पुत्रियों को और उनके अभाव में निर्धन विवाहित पुत्रियों को मिलती है। **मनु** का भी यह मत है **नारद** इसे बढाते हुए कहते हैं कि पुत्रियों के अभाव में पुत्रियों का सन्तति को यह सम्पत्ति प्राप्त हो। **विज्ञानेश्वर** भी अपने तर्क से इसी बात को पुष्ट करते है।

याज्ञवल्क्य विवाह की प्रकृति के आधार पर उत्तराधिकार निर्धारित करते हैं उनके अनुसार प्रथम अधिकार पुत्री का उसके न होने पर ब्रह्म देव, आर्य और प्रजापत्य विवाह में स्त्री के निसंतान मरने पर सम्पत्ति पति को शेष विवाह में धन पिता को मिलना चाहिये। **मनु** भी संतान के अभाव में विवाह की प्रकृति के आधार पर उत्तराधिकार बताते हैं। संतान होने पर विभाजन बताते हुए मनु कहते हैं कि माता की मृत्यु पर सभी सहोदर भ्राता और अविवाहित कन्याएं समान रुप से धन ग्रहण करेंगी।

स्त्रीधन के सम्बन्ध में वर्तमान हिन्दू विधि में दो परिवर्तन किये गये। (1) स्त्रीधन को विविध प्रकारों का अंत करके उनकी एक ही श्रेणी बना दी गई है स्त्री द्वारा किसी भी तरह से विवाह के पूर्व, विवाह के समय या पश्चात् प्राप्त स्त्री धन कहलायेगा। (2) पुत्र को भी स्त्रीधन में पुत्री के समान अंश लेने का अधिकारी बनाया गया है।

वर्तमान विधि में स्त्रीधन का उत्तराधिकार निम्न प्रकार होगा।

(1) यदि स्त्री ने सम्पत्ति सम्बन्धी वसीयत की है तो सम्पत्ति का न्यागमन वसीयत के अनुसार होगा।

(2) यदि स्त्री की मृत्यु वसीयत बिना हुई है तो ऐसी सम्पत्ति के वारिस निम्न प्रकार हैं-

(क) पुत्र, पुत्री और पति सभी समान अंश प्राप्त करेंगे। इनमें धर्मज, अधर्मज सभी पुत्र पुत्री शामिल हैं।

(ख) पति के वारिस

(ग) माता-पिता

(घ) पिता के वारिस

(ङ) माता के वारिस

उपरोक्त वर्ग में प्रथम वर्ग के कोई वारिस जीवित है तो केवल वे ही सम्पत्ति प्राप्त करेंगे अन्य नहीं इसी प्रकार प्रत्येक अगली श्रेणी क्रमश: उत्तराधिकार उत्तरोत्तर क्रम से प्राप्त करेंगे।

इस प्रकार वर्तमान विधायन द्वारा प्राचीन विधि में गुणात्मक परिवर्तन किये गये हैं। हिन्दू पुरुष की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्वअर्जित सम्पत्ति हेतु प्रथम श्रेणी में जिन 16 वारिसों को अधिकार दिया गया है उनमें से 11 उत्तराधिकारी स्त्रियां हैं और 2 पुरुष ऐसे हैं जो स्त्री से सम्बन्धित होने के कारण उत्तराधिकारी हैं। 19 सितम्बर 2005 में लागू संशोधित हिन्दू विधि में भी स्त्री उत्तराधिकार को प्राथमिकता दी गई हैं। उसके निम्न उपबन्ध स्त्री प्राथमिकता से सम्बन्धित हैं।

(1) हिन्दू उत्तराधिकार अधि. की धारा 13 को निरसित कर दिया गया है अब विवाहित पुत्री को अपने पिता के घर का विभाजन मांगने का अधिकार दिया गया है।

(2) प्रथम श्रेणी के वारिसों में 4 नये वारिस जोड़ने से इनकी संख्या 16 हो गई है इन नये जोड़े गये 4 वारिसों में से 3 स्त्रियां हैं।

(3) नये संशोधित कानून में प्रथागत सहदायिकी को जिसमें केवल पुरुष सदस्य ही होते थे समाप्त किया गया है और पुत्री और पुत्र समानता कायम करते हुए पुत्री को भी सहदायिकी का सदस्य बनाया गया है।

(4) पुत्र की तरह पुत्री को भी अपने पिता के जीवन काल में पूर्वज सम्पत्ति का विभाजन कराने का हक दिया गया है।

(5) पुत्री सहदायिकी में जो हित प्राप्त करती है वह उसका अनन्य हित है वह स्वामी की तरह उसके अंतरण का हक रखती है।

(6) पुत्री के माध्यम से रक्त सम्बन्धों की श्रृंखला को तीन पीढ़ी तक आगे ले जाया गया है।

(7) नये अधिनियम के अनुसार पुत्र की, पौत्र की प्रपोत्र की विधवा को पुर्नविवाह करने के उपरांत भी उत्तराधिकार से वंचित नहीं किया जायेगा।

इस प्रकार आधुनिक भारत ने अपने संवैधानिक और अन्य विविध प्रयासों के द्वारा स्त्रियों को समस्त संदर्भो में पुरुषों के समान स्तर प्रदान कर दिया है जो हमारा संवैधानिक आदर्श है। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि वित्तिय और साम्पत्तिक अधिकरों की इसमें प्रभावी भूमिका है और अन्तत: हमने प्राचीन भारत के उस आदर्श को प्राप्त किया है जिनमें स्त्रियों को न केवल पुरुषों के समान वरन् किसी स्तर पर उनसे वरीयता दी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 *वेदामृतम - वेदों में नारी डॉ. कपिलदेव द्विवेदी*

2 *संस्कृत साहित्य का इतिहास बलदेव उपाध्याय*

3 *यास्क प्रणीत निघण्टु तथा निरुक्त - लक्ष्मण रुपरुप*

4 *मीमांसादर्शन भास्य- पं. भयाशंकर शर्मा*

5 *न्यायादर्शन का न्यायार्थ्य भाष्य - श्री पं. आर्यमुनी जी*

6 *ऋग्वेदी भाष्य भूमिका*

7 *कात्यायन श्रोतसूत्र - पट्टाभिराम शास्त्री*

8 *ऋग्वेद स्वाध्याय मंडल पार्डी*

9 *तैतरीय ब्राहमण आनन्द आश्रम पूना*

10 *आपस्तम्ब श्रोतसूत्र - निर्णयसागर प्रेस*

11 *मनु स्मृति - निर्णय सागर यंत्रालय*

12 *याज्ञवल्क्य स्मृति -मिताक्षरा टीका सहित - डॉ. उमेश चन्द्र पांडे*

13 *कौटिल्य अर्थशास्त्र - वेंकट नाथाचार्य*

14 *दाय भाग - जीमूतवाहन - जीवानन्द विद्यासागर*

15 *स्मृति चन्द्रिका - देवेण्ण भट्ट*

16 *धर्मशास्त्र का इतिहास - पी.वी. कांणे*

17 *हिन्दू विधि एवं स्त्रोत - वेदप्रकाश उपाध्याय*

18 *हिन्दू विधवा पुर्नविवाह अधिनियम 1856*

19 *भारतीय उत्तराधिकारी अधिनियम 1956*

20 *हिन्दू उत्तराधिकार संशोधन अधिनियम 2005*

ISSN 2277-5587

संस्कारों की आवश्यकता क्यों ?

हिमा गुप्ता
व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, कोटा

shodhshree@gmail.com

भारतीय जीवन पद्धति में संस्कारों का बहुत अधिक महत्त्व रहा है। आयु के प्रत्येक भाग के विकास के लिए संस्कारों की योजना बनाई गई थी। संस्कारों द्वारा मनुश्य की आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक शुद्धि होकर समस्त जीवन के उत्थान की अद्भुत परम्परा प्रस्तुत होती है। मनु का कथन है कि द्विजों के संस्कार वैदिक कर्मों द्वारा सम्पन्न होने चाहिये। ये संस्कार इस लोक में तथा परलोक में मनुश्य को पवित्र करने वाले हैं–

वैदिकै: कर्मभि: पुण्यैर्निशेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्य: शरीरसंस्कार: पावन: प्रेत्य चेह च।।
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनै:।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।[1]

जैमिनी, याज्ञवल्क्य आदि प्राचीन मनीषियों ने संस्कार शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की है–यथा–

- संस्कार वह है, जिसके होने पर कोई पदार्थ किसी योग्य हो जाता है।[2]
- योग्यता का आधान करने वाली क्रियाएँ संस्कार कहलाती हैं।[3]
- संस्कारों द्वारा गुणों का आधान किया जाता है और दोशों को दूर किया जाता है।[4]
- संस्कारों द्वारा बीज–गर्भ से उत्पन्न दोष दूर हो जाते हैं।[5]
- वस्तु में अन्य गुण का आधान करना ही संस्कार है।[6]

प्राचीनकाल में संस्कारों द्वारा मानव जीवन के प्रत्येक अंग को गुणों से भरने एवं विकसित करने का प्रयत्न किया गया। आयु के अनुसार मानव–विकास की अनेक अवस्थाएँ होती हैं, अत: आयु के अनुरुप संस्कारों की व्यवस्था की गई। संस्कारों का प्रारम्भ शिशु के माता के गर्भ में आने के साथ ही हो जाता है। शिक्षा का प्रारम्भ तभी से होने लगता है। गर्भाधान के समय और गर्भावधि में माता–पिता की प्रकृति, स्वास्थ्य और आचार–व्यवहार का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर होता है, वह उनके स्वभाव और स्वास्थ्य को लेकर जगत् में पर्दापण करता है, अत: बालक को संस्कारित करना माता–पिता का कर्तव्य है।

व्यक्ति स्वयं के ही रुप में सन्तान उत्पन्न करता है अत: वह उसके विकास के लिए पूर्ण सचेष्ट रहता है। संस्कार द्वारा वह सन्तान के विकास की योजना बनाता है। ये संस्कार सार्वजनिक रूप से सम्पन्न किये जाते हैं। सभी इष्ट–मित्रों, सम्बन्धियों को परिवार में आमन्त्रित किया जाता है। उपस्थित जन शिशु के प्रति शुभकामनाएँ प्रकट करते हैं और उसकी उन्नति के लिए प्रभु से कामनाएँ करते है। शिशु के लिए की गई निस्वार्थ कामनाएँ अवश्य ही शिशु को प्राप्त होती हैं, यही अवधारणा संस्कारों के प्रति आस्था को बलवती करती है।

संस्कार का अधिकार -

संस्कार शब्द का अर्थ है-शुद्धता या परिश्कार। अतः धार्मिक विधान द्वारा मानव के जीवन को परिशुद्ध किये जाने की कामना को संस्कार कहा जाता है। मनु का कथन है कि जन्म से प्रत्येक मनुष्य शूद्र या असंस्कृत होता है किन्तु वह संस्कार से ही द्विज कहलाता है- **जन्मना जायते शूद्रः संस्कारादु द्विज उच्यते।**[7]

कालान्तर में संस्कारों के धार्मिक आधार के कारण संस्कार क्रिया में यज्ञ, हवन एवं कर्मकाण्ड की प्रबलता व्याप्त हो गई और इन्हीं के माध्यम से अभीष्ट की प्राप्ति एवं प्रयोजन की सिद्धि मानी गई।

यद्यपि संस्कार वैदिक युग में भी किये जाते थे किन्तु संस्कारों का व्यवस्थित रुप स्मृतियों की देन है। संस्कारों के व्यवस्थित विकास के इस युग में स्त्रियों और शूद्रों की सामाजिकहीनता प्रारम्भ हो गई थी। शूद्रों के लिए या तो संस्कारों की आवश्यकता नहीं समझी गई अथवा उनको मन्त्रों से रहित अनुष्ठानों की सुविधा दी गई-**न शूद्रे पातकं किञ्चिन्न च संस्कारमर्हति।**

नास्याधिकारो धर्मेस्ति न धर्मात् प्रतिशेधनम्।
मन्त्रवर्ज्यं न दुश्यन्ति प्रशंसां प्राप्नुवन्ति च।।[8]

आर्य सभ्यता के प्रारम्भिक युग में ऐसा नहीं था। वर्णो (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र) के विभाजन का आधार गुण-कर्म को निर्धारित किया गया था-

एकवर्णमिदं सर्व विश्वमासीद् युधिष्ठिर।
कर्मक्रिया विशेषेण चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम्।।[9]

योग्यता और क्षमता के आधार पर व्यक्ति को वर्ण मिलता था। उपनिशद्, सूत्र, रामायण, महाभारत, पुराण आदि में स्थान-स्थान पर गुण-कर्म को वर्ण का आधार कहा गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने भी वर्ण विभाजन का आधार गुण-कर्म को ही माना है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।[10]

परन्तु आर्यों की यह वर्ण व्यवस्था कालान्तर में विकृत हो गई। समय के परिवर्तन के साथ ही गुण-कर्म के स्थान पर जन्म ने प्रमुखता ले ली। इसका मुख्य आधार सम्भवतः यह रहा होगा कि समाज के मूर्धन्य तथा नेता ब्राह्मण थे। उन्होंने शास्त्रों की रचना की और सामाजिक व्यवस्थाओं का संचालन किया। अपनी सन्तति की श्रेश्ठता को बनाये रखने के लिए उन्होंने जन्म को प्रमुखता देना प्रारम्भ किया। अब गुण-कर्म का स्थान गौण हो गया। पिता के वर्ण के अनुसार पुत्र का वर्ण माना जाने लगा। 'महाभारत' के युग में यह सिद्धान्त जनसाधारण में क्रियात्मक रुप ले रहा था। यद्यपि महाभारतकार ने प्रयत्न किया था कि वर्ण का आधार गुण-कर्म ही होने चाहिये परन्तु वे अपने प्रयासों में सफल नहीं हो सके। महाभारत के अनन्तर तो वर्णो के निर्धारण में गुण-कर्म का आधार सर्वथा विलुप्त हो गया और जन्म ही इसका निर्णायक रहा।

शूद्र - सजातीय परम्परागत व्यवसाय, अन्तर्विवाह एवं रक्त सम्बन्धों की जटिलता के कारण भारत में जाति प्रथा का विकास हुआ और अन्ततः समाज की वर्ण-व्यवस्था नष्ट हो गई तथा उसका स्थान जाति-व्यवस्था ने ले लिया। इस व्यवस्था में भी वर्ण व्यवस्था के सभी दोश विद्यमान थे। सेवाकार्य में व्यापृत शूद्र को हेय एवं निरादर का पात्र समझा जाता था यहाँ तक कि वर्णों में परस्पर सम्बन्धों पर प्रतिबन्ध लगने लगे थे। सबसे बड़ा प्रतिबन्ध भोजन पर लगाया गया कि ब्राह्मण शूद्र का अन्न न खावें।[11] इस युग में शूद्र वर्ण को बहुत अधिक निरादर का पात्र बनना पड़ा। उनके सभी सामाजिक अधिकार छीन लिये गये। समाज में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं रही। उनको न तो संस्कारों का अधिकार रहा, न विद्या ग्रहण करने, न सम्पत्ति का और न ही द्विजों के साथ उठने-बैठने का। दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त के अनुसार शूद्र समाज के चरण थे। जिस प्रकार शरीर का सारा भार पैरों पर होता है, उसी प्रकार इस वर्ण पर समाज की सेवा का पूरा-पूरा भार था। मनु के अनुसार तीनों वर्णों की सेवा करना यही एक कर्म शूद्रों के निमित्त है-

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेशामेव वर्णानां शुश्रुषामनसूयया।।[12]

यह वर्ण समाज के हीन कर्म करता था। उसका अपना कोई धन नहीं होता था। उसके सारे धन पर स्वामी का ही अधिकार होता था। वह पूर्ण रुप से द्विजों की दया पर निर्भर था तथा अन्य तीनों वर्णों द्वारा परित्यक्त वस्तुओं का उपयोग करता था।

स्त्री - वैदिक युग में आर्य परिवारों में नारी का स्थान बहुत ऊँचा था। पति और पत्नी के समान अधिकार थे। पति पत्नी का सखा था-भार्या श्रेश्ठतमः सखा।[13] पति-पत्नी के सम्बन्ध पारस्परिक स्नेह और सद्भाव के थे। परस्पर वरण करने में वे स्वतन्त्र होते थे, विवाह के अनन्तर पत्नी पति के जीवन में पूर्णता लाती थी और अर्धांगिनी होती थी। वे संयुक्त रूप से दम्पती थे। दम=घर और पति=स्वामी। अतः वे दोनों संयुक्त रूप से घर के स्वामी थे। वैदिक युग के अनन्तर पत्नी की पारिवारिक और सामाजिक स्थिति, पति की अपेक्षा हीन हो गई। पति, जो पहले पत्नी का सखा था, अब गुरु बना और उसके बाद देवता हो गया। चाहे वह सदाचार से हीन, कामी और गुणों से रहित ही क्यों न हो।[14]

पति के अधिकारों में वृद्धि कुछ तो स्वाभाविक सामाजिक परिस्थितियों ने की और कुछ शास्त्रीय वचनों ने। पिता का घर छोड़कर पति के घर आने वाली नारी, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पति पर ही निर्भर थी। उसका शरीर भी पति की अपेक्षा निर्बल था और उसके अन्दर समर्पण की भावना अधिक थी। अतः पत्नी पर पति की प्रभुता स्थापित हो गई। यद्यपि पत्नी को भारतीय संस्कृति में गृहस्थ का मूल माना गया है और उसकी महिमा का विशद वर्णन

किया गया है। अधिकारों से वंचित करके भी शास्त्रकारों ने पत्नी को बहुत अधिक सम्मान दिया है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया:।।
शोचन्ति जामयो यत्र विनशत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता: वर्धते तद्धि सर्वदा।।[15]

पति के लिए व्यवस्था दी है कि वह अलंकारों, वस्त्रों और भोजन आदि से पत्नी का सत्कार करें।[16] यह सत्य है कि नारी को जितना अधिक सम्मान भारतवर्ष में मिला, संसार की अन्य किसी सभ्यता में वह गौरव स्त्री को प्राप्त नहीं हुआ तथापि वैदिक युग की अति सम्मानीय नारी के अधिकार क्रमश: सीमित होने लगे। अन्तत: संस्कारों के व्यवस्थित विकास के युग (स्मृतिकाल) में उन्हें न केवल यज्ञाधिकार से वंचित किया गया अपितु शूद्रों के ही समान वेदाध्ययन आदि अन्य सामाजिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

भारतवर्ष में नारी की सामाजिक हीनता के कारण सार्वभौम है। मासिक धर्म, शारीरिक निर्बलता, आर्थिक परावलम्बन, सतीत्व का बन्धन, पितृकुल को छोड़कर पतिकुल में आगमन आदि कारणों ने नारी को सामाजिक अधिकारों से वंचित किया। आध्यात्मिक और साहित्यिक साधनाओं में रत पुरुषों ने नारी को अत्यधिक हीन प्रतिपादित करने में सहयोग दिया और नारी के सम्बन्ध में हीन धारणाएँ प्रस्तुत की। पंचतंत्र का वचन है कि-

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभिता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा: स्वभावत:।।[17]

सामाजिक अधिकारों से वंचित नारी को कालान्तर में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता से भी वंचित कर दिया गया। व्यास, गौतम, मनु, याज्ञवल्क्य प्रभृति शास्त्रकारों ने इसी प्रकार की व्यवस्था दी। मनुस्मृति के अनुसार स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के, यौवन में पति के और पति की मृत्यु के उपरान्त पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिये, उसे स्वतन्त्र रहने का अधिकार नहीं हैं-

बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत् पाणिग्रहास्य यौवने।
पुत्राणां भर्तरि प्रेते न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।[18]

इस प्रकार पति को पत्नी पर पूरा अधिकार एवं अभिभावकत्व प्राप्त हुआ। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि वह पत्नी को चाहे ग्रहण करे या उसका परित्याग कर दे। उदाहरणस्वरुप अभिज्ञानशाकुन्तलम् के शकुन्तलाप्रत्याख्यान प्रसंग (पंचम अंक) में शारद्वत दुष्यन्त से कहता है-

तदेशा भवत: पत्नी त्यज वैनां गृहाण वा।
उपपन्ना हि दारेषु प्रभुता सर्वतोमुखी।।

अधिकारहीनता – दुष्परिणाम –

इस प्रकार भारतीय समाज के तीन चौथाई भाग शूद्र तथा स्त्री वर्ग को मौलिक अधिकारों से वंचित किये जाने के कारण समाज को उसके अनेक दुष्परिणाम भुगतने पड़े हैं-

1) **अस्पृष्यता –** शूद्रों की स्थिति अतिहीन तथा दयनीय हो जाने से अस्पृश्यता ने जन्म लिया। समाज में उनका स्पर्श करना अपवित्र माना जाने लगा। यहाँ तक कि विशिष्ट स्थितियों में मुख का दर्शन भी अशुभ समझा गया। अस्पृश्यता (अछूत) के इस दोष ने न केवल मनुष्य को मनुष्य से घृणा करना सिखा दिया अपितु विश्व के समक्ष भारत को शोचनीय स्थिति में ला खड़ा किया।

2) **बंधकभृत्यता अथवा दासता –** शूद्र प्राय: भृत्य थे, वे निश्चित वेतन (भृति) लेकर कार्य करते थे। आर्येतर जनदास थे, वे मूल्य देकर खरीदे जाते थे। प्रारम्भ में भृत्य स्वतन्त्र थे, इच्छा के अनुसार कार्य करते और वेतन पाते थे। कालान्तर में शूद्रों की स्थिति दासों के समान हो गई और वे बंधक भृत्यता (बंधुआ मजदूरी) करने लगे। उच्चवर्णों ने ऐसे शूद्रों पर अकथनीय अत्याचार किये। उनके साथ सभी प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों का बहिष्कार कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि पद-दलित शूद्र वर्ग में आत्महीनता के भाव भर गये।

3) **शारीरिक श्रम के प्रति हेयभाव –** बौद्धिक कार्य करने वाले ब्राह्मणों ने शारीरिक श्रम को हेय भाव से देखा और शारीरिक श्रम से जीविकोपार्जन करने वालों को शूद्र की कोटि में रखा। परिणाम यह हुआ कि शारीरिक श्रम करने वाले क्षत्रिय एवं वैश्य भी उन्हें हेय दृष्टि से देखने लगे। उच्च जाति से बहिष्कृत और सामाजिक सम्मान से वंचित इस वर्ग को देखकर शारीरिक श्रम की महत्ता कम हो गई तथा यहाँ के लोग श्रम से जी चुराने लगे जिससे भारत की स्वोपार्जित सुदृढ़ अर्थव्यवस्था नष्ट हो गई। भारत के पराधीन होने में यह भी एक कारण रहा है।

4) **धर्म परिवर्तन –** आत्मसम्मान की भावना से रहित शूद्रों में अपनी योग्यता, क्षमता, जाति, धर्म और देश के प्रति गौरव और प्रेम के भाव नष्ट हो गये। इस अवस्था में अपने सनातन धर्म का परित्याग करके अन्य धर्मों को स्वीकार करने में उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। धर्मान्तरण की यह प्रक्रिया वर्तमान में भी जारी है।

5) **शिक्षा और विज्ञान की प्रगति में अवरोध –** शिक्षा देने का कार्य ब्राह्मण वर्ग का था। ब्राह्मण वर्ग ने शूद्र तत्पश्चात् स्त्रियों को विद्याध्ययन के अधिकार से वंचित किया। कालान्तर में वेद आदि शास्त्रों के अध्ययन का अधिकार स्वयं के पास सीमित कर लिया। जब ब्राह्मण वर्ग को अपने जन्म के कारण ही समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था तो अध्ययन के प्रति उसकी रुचि क्यों होती? इस कारण शिक्षा ज्ञान-विज्ञान, आदि की प्रगति में अवरोध उत्पन्न हुआ और समाज का तीन-चौथाई से अधिक भाग शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान से वंचित हो गया।

6) **पराधीनता –** विदेशियों को ब्राह्मणों ने म्लेच्छ कहा और सम्पर्क को दोषयुक्त माना। इस दोष से बचने के लिए विदेशी–सम्पर्क, यात्रा, व्यापार आदि विशेष रुप से युद्ध–विज्ञान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। भारत की पराधीनता में महत्त्वपूर्ण कारण युद्धविज्ञान के नवीन आविष्कारों से अनभिज्ञता रही। वर्ण व जाति व्यवस्था की कठोरता के कारण क्षत्रिय ही सैनिक शिक्षा प्राप्त कर सकते थे और युद्धों में भाग ले सकते थे। सम्पूर्ण समाज की तुलना में थोड़े से क्षत्रिय देश की रक्षा करने में असमर्थ रहे इसका दुष्परिणाम भारतीयों को हजारों वर्षों की पराधीनता के रुप में भोगना पड़ा।

7) **वर्णसंकरता –** असवर्ण माता–पिता से उत्पन्न संतान को वर्णसंकर कहा गया है। सवर्ण विवाह की मान्यता होने तथा असवर्ण विवाह को हेय समझने के कारण वर्णसंकरता उत्पन्न हो गई। कालान्तर में यह रुढ़ि इतनी अधिक बढ़ गई कि प्रत्येक समुदाय स्वयं को दूसरे से श्रेष्ठ समझने लगा और उनमें विवाह एवं खान–पान आदि व्यवहारों के साथ अन्य सामाजिक सम्बन्धों का भी लोप हो गया।

8) **बहुविवाह –** भारतीय मनीषियों ने एक पुरुष के लिए सामान्यत: एक ही विवाह करने का विधान किया था। पुरुष के लिए एकपत्नीव्रत का पालन वांछनीय था। किन्हीं विशेष अवस्थाओं को छोड़कर दूसरा विवाह करने की अनुमति नहीं थी, परन्तु सामाजिक आदर्श तथा शास्त्रीय अनुशासनों के होते हुए भी एक पुरुष के अनेक विवाह हो जाते थे। स्त्री को किसी भी अवस्था में बहुविवाह का अधिकार नहीं था। पति चाहे सदाचार से हीन, कामी और गुणों से रहित भी हो तो भी वह स्त्री के लिए देवता के समान सेव्य था, वह उसका त्याग नहीं कर सकती थी, न ही अन्य विवाह कर सकती थी जैसा कि मनु का वचन है–

विषील: कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जित:।
उपचर्य: स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पति:।।[19]

9) **सती प्रथा –** प्राचीन भारतीय संस्कृति में पतिव्रत्य को बहुत महत्त्व दिया गया था। मन, वचन और कर्म से पति की अनुगामिनी रहना, पति के प्रति एकनिष्ठ प्रेम रखना और स्वप्न में भी परपुरुष का विचार न करना पत्नी का कर्त्तव्य माना गया। इस व्रत का पालन करने वाली पत्नी परम पतिव्रता और सती कहलाई। पतिव्रत धर्म के चरम रुप ने सती प्रथा को जन्म दिया। पति की मृत्यु होने पर स्त्री को पुन: विवाह का अधिकार नहीं दिया गया अत: पत्नी अपने जीवन को निरर्थक समझकर पति के शव के साथ जलने लगी–

कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलै: शुभै:।
न तु नाम स्त्री गृह्णीयात् पत्यै प्रेते परस्य तु।।[20]

पति के शव के साथ स्वयं को आहुत कर देना पत्नी के लिए पतिव्रत्य का परम आदर्श समझा जाने लगा। सती प्रथा प्रारम्भ होने के अनेक सामाजिक और आर्थिक कारण थे विधवा की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अधिकारहीनता के कारण ही वे वैधव्य के भय से स्वयं को जला देती थी।

10) **कन्या वध –** भारतीय परिवारों में विवाह का मुख्य उद्देश्य पुत्र–प्राप्ति रही है। पुत्र का महत्त्व न केवल पारिवारिक और सामाजिक ही है, अपितु धार्मिक भी है। पुत्रहीन व्यक्ति की उत्तम गति नहीं होती, वह नरक में जाता है। उस पुम् नामक नरक से रक्षा केवल पुत्र ही कर सकता है–

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्माद् त्रायते पितरं सुत:।
तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तं स्वयमेव स्वयम्भुवा।।[21]

तीन ऋणों में से पितृऋण से मुक्ति पुत्र ही दिला सकता है। पितृलोक व श्राद्धपरम्परा ने भी पुत्र को महत्त्व प्रदान किया है। पुत्र ही वंश परम्परा को चलाता है और पिता का उत्तराधिकारी होता है। इन मान्यताओं के कारण भारतीय परिवारों में पुत्र प्राप्ति की आकांक्षाएँ अति प्रबल हैं। इन सामाजिक परिस्थितियों ने परिवार में कन्या को अत्यधिक उपेक्षणीय बना दिया। माता–पिता पर उसके पालन–पोषण का भार तो था, दहेज की प्रथा ने उनके आर्थिक दायित्व में और वृद्धि कर दी। कन्या पक्ष की अपेक्षा वर–पक्ष को उच्च समझा जाने लगा। इन कारणों से कन्या के पिता चिन्ता, दु:ख और अपमान से ग्रस्त रहने लगे–

पुत्रीति जाता महतीति चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क:।
दत्ता सुखं प्राप्स्यति वा न वेति कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्।।[22]

इन परिस्थितियों ने कन्या वध की कुप्रथा को जन्म दिया जो आज वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण कन्या भ्रूण हत्या में परिवर्तित हो गई है। स्त्री–पुरुष के लिंगानुपात में विसंगति, स्त्री को भोग्यामात्र समझना, उनका शारीरिक व मानसिक उत्पीड़न आदि अनेक विसंगतियाँ इन्हीं कुप्रथाओं के दुष्परिणाम हैं।

संस्कार : किसके लिए?

सृष्टि के आदिकाल से ही प्रत्येक समाज में विसंगतियाँ रही है। प्रत्येक समाज उनमें से कुछ को अपना लेता है तो कुछ का परिष्कार करने का प्रयत्न करता है। भारतीय संस्कृति विश्व की आदिम संस्कृति है और समाज के परिष्कार व संस्कार के जितने अधिक व ठोस प्रयत्न भारतीय समाज में हुए हैं उतने कहीं और नहीं हुए। यहाँ तक कि यहाँ की भाषा भी परिष्कृत और संस्कार युक्त होने के कारण 'संस्कृत' कही गई है। सीता–परित्याग, अहिल्या–उद्धार, शकुन्तला प्रत्याख्यान आदि अनेक उदाहरण हैं जो पुरुष प्रधान समाज की विकृत मानसिकता को उजागर करते हैं। इस विकृत मानसिकता वाले समाज के परिष्कार व संस्कार की आवश्यकता क्यों हैं? श्रेष्ठता के आधार पर समाज के तीन–चौथाई भाग को मानवाधिकारों से वंचित

कर उन पर निरंकुश अत्याचार करने वालों का संस्कार क्यों किया जाना चाहिये? क्या मानवीयता के गुणों से रहित लोगों का संस्कार किया जाना चाहिये? इन प्रश्नों के उत्तर से पूर्व एक कथा पर ध्यान देना आवश्यक है। अत्यन्त प्रसिद्ध-सत्यकाम जाबाल की कथा।

जब गुरु सत्यकाम से उसके पिता का नाम पूछते हैं तो वह बताता है कि उसकी माता ने उसे बताया कि वह अनेक घरों में सेवा का कार्य करती रही है अत: उसे सत्यकाम के पिता का नाम नहीं पता किन्तु उसकी माता का नाम जबाला है अत: वह सत्यकाम जाबाल है। कथा का अन्त सुखद है। सत्यकाम की सत्यप्रियता से गरु प्रसन्न होकर उसे अपना शिष्य बना लेते हैं।

इस लघुकथा में अनेक तथ्यों की ओर ध्यान जाता है-

प्रथम - उस काल में भी समाज में विशृंखलता या उच्छृंखलता व्याप्त थी। सत्यकाम की माता शूद्रवत् सेवाकार्य के द्वारा आजीविका कमाती थी। जिससे वह स्वयं का तथा सत्यकाम का भरण-पोषण करती थी। यह एक हीनकार्य समझा जाता था।

द्वितीय - इस कार्य को करते हुए वह समाज में प्रतिष्ठित अनेक पुरुषों के सम्पर्क में आई थी निश्चत ही समाज के दृष्टिकोण में जबाला का यह कर्म निन्दनीय था।

तृतीय - उन प्रतिष्ठित पुरुषों के लिए एक निम्नकोटि की स्त्री से सम्पर्क को गुप्त रखना संभव था। साथ ही जब जबाला के अनेक पुरुषों के साथ संबंध थे तो निश्चित ही उन पुरुषों के भी जबाला जैसी अनेक स्त्रियों से सम्पर्क रहे होगें।

चतुर्थ - गुप्त रुप से ही सही अनेक स्त्रियों से संबंध रखना उनके लिए गौरव का विषय रहा होगा। निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि स्त्री-पुरुष संबंधों की जो विसंगतियाँ और उच्छृंखलताएँ आज पाई जाती है वे शाश्वत रुप से समाज में बनी हुई हैं। किन्तु प्रश्न उठता है कि अनुभवों से परिपक्व, विचारों से दृढ़, सर्वथा एकाकिनी, पुरुषरुपी वृक्षों के मध्य रहती हुई पुत्र को प्रकृति का नियम समझाती हुई जबाला, उत्कृष्ट जीवन की चाह में आशा और आकांक्षा को पुत्र में तलाशती जबाला क्या संस्कार युक्त थी? उसके कितने संस्कार हुए होगें और उसके पुत्र के? तथ्य यह भी है कि यही समाज स्त्री व शूद्र के उन सभी संस्कारों का निषेध करता है जिन्हें 'समाज के लिए श्रेष्ठ' पुरुष के लिए वह अनिवार्य घोषित करता है।

यह वही समाज है जो एक ओर तो स्त्री को पुरुष की सहधर्मिणी घोषित कर गृहस्थ रुपी गाड़ी के दो पहियों के रुप में उनका चित्रण करता है तो वहीं दूसरी ओर स्त्री के लिए पुरुष के लिए नियत संस्कारों की अपेक्षा मात्र उन्हीं संस्कारों का विधान करता है जो पुरुष की दृष्टि में आवश्यक हैं। यथा-विवाह, जो स्त्री के साथ-साथ पुरुष के लिए आवश्यक है। यही नहीं वह शूद्रवर्ग एवं स्त्री के वैयक्तिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार भी छीन लेता है और उन्हें सर्वथा निर्बल, सम्मानहीन एवं आत्महीनता के बोध से ग्रस्त जीवन जीने पर विवश करता है। प्रश्न यह भी उठता है कि आधे से ज्यादा समाज जहाँ दीन-हीन हो, उसकी उन्नति कैसे हो सकती है? वस्तुत: पराधीनता के मूल में उपर्युक्त सामाजिक विसंगतियाँ रही है और वर्तमान में नए प्रकार की विसंगतियों के साथ अधिक उभर कर सामने आ रही है जबकि स्त्रियाँ स्वतन्त्र भारत में सम्मानीय स्थान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही हैं।

गुरु का स्वरुप - सबसे सुखद पहले यह रहा कि गुरु ने सत्यकाम से कहा कि तुम ही श्रेष्ठ ब्राह्मण हो और ज्ञान के सर्वथा योग्य हो। क्या वैसे गुरु आज हैं? मैं कहूँगी-हाँ है। यह धरा इसीलिए गति कर रही है कि ऐसे सत्यप्रिय, योग्यता के पारखी गुरु कहीं-कहीं आज भी है, जिनके कारण जबाला जैसे लोग समाज की भट्ठी में तपने के बाद कुंदन हो जाते हैं तो सत्यकाम जैसे सत्य पर अडिग श्रेष्ठ मनुष्य समाज को मिल पाते हैं। तो हमें किन्हें संस्कार कहना चाहिए व किन्हें संस्कारित करना चाहिये? सत्यकाम जाबाल और गाँधी के समान सत्य का प्रयोग करने वाले युगदृष्टा के विचारों और कर्मों को? अन्य लोगों के जीवन को उत्कृष्ट बनाने के लिए क्रान्ति का सूत्रपात कर अपना जीवन सर्वस्व दान करने वाले युगधर्माओं के चरित्र बल को? अथवा क्या कुछ धार्मिक क्रियाकलापों को?

निष्कर्ष रुप में धर्मशास्त्र उचित ही कहते हैं कि संस्कारों की आवश्यकता न स्त्री को है न ही शूद्र पुरुष को, वे उसके योग्य नहीं क्योंकि उसके योग्य तो वे नराधम है जो अपने आपको समाज का सर्वेसर्वा समझते हैं तथापि अपने कर्मों से उसी समाज को कलुषित करते हैं, विसंगतियों से भर देते हैं तथा संस्कारों से संपृक्त होकर भी सुसंस्कृत नहीं हो पाते।

मेरा स्पष्ट एवं दृढ़ मत है कि जिस समाज में सभी वर्गों से समानता का व्यवहार न हो, आधे से ज्यादा समाज अधिकारों से हीन दयनीय जीवन जीने के लिए विवश हो, जो समाज स्वामी-सेवक सम्बन्धों से ही पोषित होता हो उस समाज में धार्मिक क्रियायें केवल आडम्बर, पाखंड, अंधविश्वास और अन्तत: क्रूरता को ही अभिव्यक्त करती हैं भले ही उन धार्मिक कार्यों का मूल स्वरुप वैज्ञानिक रहा हो किन्तु अन्तत: वे धार्मिक कार्य उस समाज के पतन का कारण बन जाते हैं, अत: संस्कार आदि के लिए प्रचलित धार्मिक कार्यों की महत्ता स्थापित करने अथवा भारतीय संस्कृति को संस्कार व्यवस्था से गौरवान्तिव अनुभव कराने से पहले नितान्त आवश्यक है कि एक-एक भारतीय बालक शिक्षित हो, उसे उसके मूल अधिकारों से वंचित न किया जाये तथा स्त्रियों के प्रति सम्मानजनक दृष्टिकोण विकसित किया जाये, यही हमारे संस्कारों का संस्कृतत्व होगा, यही हमारी संस्कृति का संस्कृतत्व होगा और वही हमारे लिए गौरव का विषय होगा तब ही हम सिर उठाकर कह सकेंगे- '**कृण्वन्तो विश्वमार्यम्**'।

वस्तुत: मानव के वैयक्तिक एवं आध्यात्मिक कल्याण हेतु संस्कार आवश्यक है किन्तु उन्हें किसी एक वर्ग के लिए आवश्यक तथा दूसरे के लिए अनावश्यक मान लेना कदापि उचित नहीं है। मानवीय गुण

प्रमुख संस्कार होते हैं उनके बिना संस्कार मात्र कर्मकाण्ड बनकर रह जाते हैं। मानवीय गुणों से युक्त व्यक्ति के संस्कार ही समाज के साथ संपूर्ण मानवता के लिए आवश्यक एवं उपयोगी हो सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मनुस्मृति 2.26-27।।*
2. *संस्कारो स भवति, यस्मिज् जाते पदार्थो भवति योग्य: कस्यचिदर्थस्य। जैमिनीय सूत्र 3.1.13 पर शाबर भाश्य*
3. *योग्यतां चादधाना: क्रिया: संस्कारा इत्युच्यन्ते।-तन्त्रवार्तिक पृ.-1078*
4. *संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोशापनयनेन वा। वेदान्तसूत्र पर शांकर भाश्य 1.14*
5. *एवमेन: शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्। याज्ञवल्क्य स्मृति 1.13*
6. *गुणान्तराधानं संस्कार:।*

7 *मनुस्मृति*

8 *मनुस्मृति 10.126-127*

9 *महाभारत, शान्तिपर्व*

10. *भगवद्गीता, 18वाँ अध्याय*

11 *नाद्याच्छूद्रय पकान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विज:।। मनुस्मृति 4.223*

12 *मनु.1.91*

13 *महाभारत 174.40*

14 *विशील: कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जित:।*
उपचर्य: स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पति:।। मनुस्मृति 5.154 ।।

15 *मनुस्मृति 3.56-57*

16 *तस्मादेता: सदा पूज्या: भूषणाच्छादनाशनै:।*
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेशूत्सवेशु च।। मनुस्मृति 3.59।।

17 *पंचतंत्र, मित्रभेद, 206 ।।*

18 *मनुस्मृति 5.148 ।।*

19 *मनुस्मृति 5.154*

20 *मनु. 5.157*

21 *मनु. 9.138*

22 *पंचतंत्र, मित्रभेद*

जल संसाधनों का प्रबंधन
'ग्वालियर जिले के विशेष संदर्भ में'

डॉ. (श्रीमती) वसुधा अग्रवाल
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

भारत देश में जल की उपलब्धता और उसके स्वरुप के अनुसार जल प्रबंधन न होने के कारण ही वर्षा का जल नदी - नालों, तालाबों से बहकर तेजी से समुद्र में चला जाता है। जिससे वर्षा के बाद लगभग नौ महीने पानी की कमी रहती है, यह ही मूल कारण है, जो जलीय अभाव को पैदा करता है जिसे हम उचित प्रबंधन के द्वारा ही नियंत्रित कर सकते हैं। जल प्रचुर मात्रा में होने के बावजूद उपयुक्त संचयन व्यवस्था एवं रखरखाव के अभाव में ही स्थिति दिन प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही है, फिर भी लोग बिना सोचे समझे अंधाधुंध जल के उपयोग में लगे हैं। जल के बढ़ते अभाव का सर्वाधिक प्रभाव बच्चों और महिलाओं पर पड़ता है क्योंकि दैनिक उपयोग के लिये इन्हे ही दूर से ढोकर पानी लाना पड़ता है।

मध्यप्रदेश में जल संसाधन का उचित प्रबंधन न होने के कारण जल संकट दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। अत: राष्ट्रीय जल नीति के अनुसार ग्रामीण एवं औद्योगिक क्षेत्रों में सिंचाई के वैकल्पिक स्त्रोतों को तलाशना होगा। उनके संरक्षण पर भी विशेष ध्यान देना होगा। उद्योगों कारखानों से निकलने वाले स्त्राव का निस्तारण एक बड़ी भयंकर समस्या है। औद्योगिक अपशिष्ट जल में आयरन, क्लोराइड, कॉपर एवं नाइट्रेट भारी मात्रा में घुले रहते है, जो कृषि भूमि, नदियों या जल स्त्रोतों को प्रदूषित कर देते हैं। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न उद्योगों, कारखानों एवं रसायन उर्वरकों की फैक्ट्रियों से निकलने वाले अपशिष्ट जल तथा घरेलू मल जल के कारण जल स्त्रोतों एवं पर्यावरण को गंभीर खतरा पैदा होता जा रहा है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होती जा रही है लेकिन जल की उपलब्धता में कमी होती जा रही है। यदि इसी प्रकार जल की उपलब्धता घटती गई तो अनुमानित वर्ष 2025 तक यह मात्रा 70 प्रतिशत होने की संभावना है।

शोध पद्धति :-

प्रस्तुत अध्ययन ऐतिहासिक पद्धति अंतर्गत पुस्तकालय अनुसंधान पद्धति से किया गया है। वर्तमान परिदृश्य में आर्थिक अपराधों की प्रासंगिकता एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन हेतु विधि की उपलब्ध पुस्तकों, भारतीय दंड संहिता, भारत का संविधान, अपराध शास्त्र एवं अपराधिक प्रशासन, विधि शास्त्र के अलावा पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्रों व प्राथमिक एवं द्वितीयक समंकों को अध्ययन का केन्द्र बिन्दु बनाया गया है। वर्तमान परिदृश्यों में समाज में बढ़ते जघन्य अपराधों, आर्थिक अपराधों, अपराध बढ़ने के कारण एवं अपराध पर नियंत्रण हेतु दण्डादेश की व्यवस्था के अंतर्गत दंड की प्रासंगिकता का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है।

शोध क्षेत्र ग्वालियर जिले के ग्रामीण क्षेत्र में जल संसाधनों के विशेष प्रबंधन पर ध्यान देने की आवश्यकता है। शोध क्षेत्र में प्राय: शुष्क, अर्द्धशुष्क एवं असिंचित औद्योगिक क्षेत्र में पानी की कमी के कारण, फसलों की सिंचाई के लिये अपशिष्ट जल का उपयोग अधिक मात्रा में हो रहा है। इससे लगातार सिंचाई करने से मृदा एवं फसलों पर भी कई प्रकार के दुष्प्रभाव पड़ते हैं। यदि अपशिष्ट जल का समुचित शोधन करके परीक्षण के बाद ही सिंचाई जल के रुप में प्रयोग किया जाये तो यह जल पोषक तत्वों में अतिरिक्त स्त्रोत के रुप में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

जल की उपलब्ता

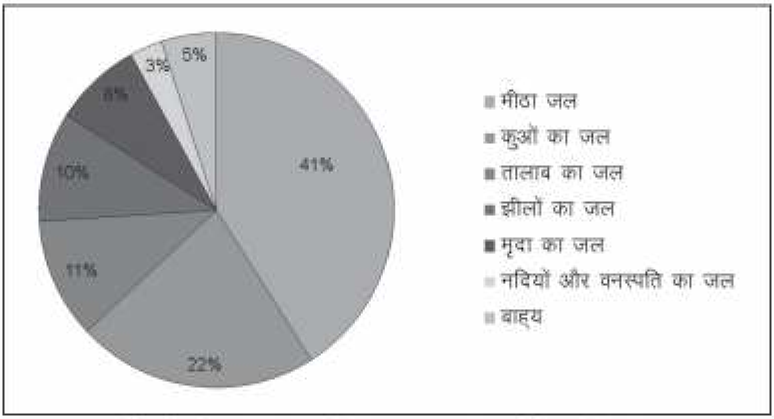

वर्तमान समय में जल की उपलब्धता को देखते हुये ग्वालियर जिले में जल संसाधनों के नियोजन विकास और उपयोग की दृष्टि से कुल प्राप्त जल की प्राथमिकता के क्रम का निम्न प्रकार दर्शाया गया है :-

प्रथम प्राथमिकता वाला क्षेत्र – पेयजल पूर्ति

द्वितीय प्राथमिकता वाला क्षेत्र – सिंचाई

तृतीय प्राथमिकता वाला क्षेत्र – जलविद्युत

चतुर्थ प्राथमिकता वाला क्षेत्र – औद्योगिक विकास

पंचम प्राथमिकता वाला क्षेत्र – नौकायान एवं अन्य प्रयोग के लिये

वर्तमान एवं भविष्य में जल संसाधन : जल हमारे जीवन में आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य प्राकृतिक तत्व है। जल बिना जीवन की कल्पना करना कठिन है। विगत कुछ वर्षो में घटते हुये जल स्त्रोत तथा प्रदूषण से समस्त विष्व के साथ – साथ हमारे देश एवं अध्ययन क्षेत्र की भी समस्या बनती जा रही है। सतही तथा भूमिगत जल का अनियंत्रित विदोहन हो रहा है जिससे जल की गुणवत्ता एवं मात्रा कुप्रभावित हुई है। इसके परिणामस्वरुप पर्यावरण संतुलन बिगड़ता जा रहा है। भू – जल स्तर में गिरावट के कारण नलकूप, हैण्डपम्प सूखते जा रहे हैं जो पेयजल सिंचाई आदि कार्यो के लिये हानिकारक सिद्ध हुआ है।

वैश्विक स्तर पर जल का सर्वाधिक उपयोग कृषि में किया जाता है। वर्तमान में विश्व के कुल जल का 60 प्रतिशत कृषि में, 32 प्रतिशत उद्योगों में, शेष 8 प्रतिशत घरेलू कार्यो हेतु प्रतिवर्ष 2000 से 2555 घन किलोमीटर जल का उपयोग किया जाता है। यदि समय रहते हमने जल संसाधनों का समुचित प्रबंधन और प्रदूषण नियंत्रण नहीं किया तो भविष्य में उपलब्ध जल और विषैला होकर जीवन देने के बजाय जीवन लेने की प्रक्रिया में जुट जायेगा।

अध्ययन क्षेत्र के ग्वालियर जिले में जल का उपयोग लगातार बढ़ता जा रहा है वर्तमान स्थितियों को देखते हुये भविष्य की स्थिति क्या होगी तालिका से स्पष्ट है :-

तालिका क्रमांक - 1

ग्वालियर जिले के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली जल की खपत

क्षेत्र	वर्ष 2000		वर्ष 2010		अनुमानित वर्ष 2025	
	घन किलोमीटर	कुल खपत का प्रतिशत	घन किलोमीटर	कुल खपत का प्रतिशत	घन किलोमीटर	कुल खपत का प्रतिशत
कृषि	460	83.3	630	84	770	73.3
घरेलू	25	4.5	33	4.4	52	4.95
उद्योग	15	2.7	30	4.0	120	11.4
ऊर्जा	19	3.4	27	3.6	71	6.76
अन्य	33	-	30	-	37	-
कुल	**552**		**750**		**1050**	

स्त्रोत :- जल संसाधन विभाग, ग्वालियर (म.प्र.)

ISSN 2277-5587

उपरोक्त तालिका से स्पट है कि विभिन्न क्षेत्रों की वर्षवार जल की खपत बढ़ती गयी है जिससे पेयजल की समस्या गुणवत्ता एवं मात्रा में कमी होती गयी। यदि इस प्रकार जल का दोहन होता गया तो भविष्य में जल की मांग बढ़ती जायेगी जो आर्थिक विकास के लिये हानिकारक सिद्ध हो सकती है।

अध्ययन क्षेत्र के ग्वालियर जिले में सतही एवं भू जल की खपत को निम्न तालिका द्वारा दर्शाया गया है :-

तालिका क्रमांक - 2

ग्वालियर जिले में सतही एवं भू जल की खपत (घन कि.मी.)

क्षेत्र	सतही जल की खपत (घन कि.मी.)	भूजल की खपत (घन कि.मी)	कुल खपत (घन कि.मी.)
कृषि	363	267	630
घरेलू	23	10	33
उद्योग	18	12	30
ऊर्जा	17	10	27
अन्य	30	-	30
योग	**451**	**299**	**750**

स्त्रोत :- जल संसाधन विभाग, ग्वालियर (म.प्र.)

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि सबसे अधिक जल की खपत वाला क्षेत्र कृषि है यदि हमने समय के साथ वर्षा के जल का उचित प्रबंधन किया तो सतही एवं भूजल स्तर को कुछ प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है।

ग्वालियर जिले में शोध करते समय ज्ञात हुआ कि जिले में मुरार, घाटीगाँव, और लश्कर में जल का दोहन अधिक होने के कारण भूजल का स्तर अधिक नीचे गिर गया है। भूजल सर्वेक्षण विभाग के अनुसार जल का उपयोग सबसे अधिक सिंचाई में ही हुआ है। जिले के कुल भूजल दोहन को निम्न तालिकानुसार दर्शाया गया है:-

तालिका क्रमांक - 3

शोध क्षेत्र में भू जल दोहन का प्रतिशत

जिला/विकासखण्ड/तहसील	कुल जल दोहन का प्रतिशत
मुरार	75 प्रतिशत
घाटीगाँव	65 प्रतिशत
डबरा	46 प्रतिशत
भितरवार	52 प्रतिशत

स्त्रोत :- भूजल सर्वेक्षण विभाग, ग्वालियर (म.प्र.)

उपयुक्त तालिका से स्पष्ट है कि मुरार घाटीगाँव का प्रतिशत सबसे अधिक है यह स्थिति चिंताजनक है। पानी अनमोल है इसका कोई मोल नहीं है अगर हम इसे बर्बाद करते रहे तो वो दिन दूर नहीं है कि जब हमें एक बूंद स्वच्छ पानी के लिये तरसना पड़ेगा।

तालिका क्रमांक - 4

जिले में ग्रामीण जल संकट की स्थिति

वर्ष	कुल आबाद ग्राम	पेयजल समस्या मूलक ग्राम	समस्या मूलक ग्रामों का प्रतिशत
2005 - 2006	766	612	79 प्रतिशत
2006 - 2007	766	612	79 प्रतिशत
2007 - 2008	766	612	79 प्रतिशत
2008 - 2009	560	509	90 प्रतिशत
2009 - 2010	560	509	90 प्रतिशत

स्त्रोत :- जिला सांख्यिकीय कार्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

उपयुक्त तालिका से स्पष्ट है कि जिले में जल संसाधनों का उचित जल प्रबंधन न होने के कारण जल संकट बढ़ता ही जा रहा है। वर्तमान में इस समस्या पर ध्यान नहीं दिया गया तो भविश्य के लिये यह स्थिति भयावह हो जायेगी।

जिले में सांक, पार्वती, आसन और बेसली नदियों के कछार आते हैं। जमीन का ढाल अधिक होने के कारण वर्षा का पानी नालों के माध्यम से नदियों में मिल जाता है। जो वर्षा के पानी की मात्रा भू क्षेत्र को मिलना चाहिये वह नहीं मिल पाती है। जिससे भू जल का स्तर कम रह जाता है। जिले में वर्षा का स्तर दिन पर दिन कम होता जा रहा है। जिससे ग्रामीणवासियों को साल भर परेशानी का सामना करना पड़ता है। यदि समय रहते हुये जल संसाधनों का प्रबंधन नहीं हो पाया तो जल संकट निरंतर बढ़ता ही जायेगा।

शोध क्षेत्र में सिंचाई एंव पेयजल के लिये समस्या दिन प्रतिदिन और जटिल होती जा रही है। तेजी से बढ़ रहे तापमान के चलते लोगों की जल संबंधी जरुरतें बढ़ती जा रही हैं। जनसंख्या वृद्धि एंव जल संसाधनों का उचित प्रबंधन ना होने के कारण सन् 1987 में पड़े भयंकर सूखे के कारण नदियों, तालाबों, झीलों में तथा भूमिगत जल स्तर में जल का अभाव इतना हो गया था कि बिना सिंचाई के फसलें नष्ट हो गई तथा पेयजल के बिना दुधारु पशु मर गये। मानव जाति को भी पेयजल के लिये काफी संघर्ष करना पड़ा। भविष्य में ऐसी स्थिति दुबारा न बने इसलिये जल संसाधनों का उचित प्रबंधन करना होगा एवं कुछ सुझाव निम्न प्रकार दर्शाये गये हैं :-

- नदी के जल को सिंचाई तथा जल निकास के लिये मिले जुले प्रबंधन होना चाहिये।
- वर्षा के जल को सिंचित करने तथा उचित उपयोग एवं उपयोग क्षमता बढ़ाने की विधियों का अनुसंधान होना चाहिये।
- जलाशयों की मरम्मत समय – समय पर करते रहना चाहिये जिससे कम से कम पानी रिसे।
- भूमिगत जल के टिकाऊ उपयोग के लिये जल प्रबंधन विशेष कर ड्रिप तथा फव्वारा सिंचाई आदि में जल को पैसे की तरह खर्च किया जाये। इस तथ्य को साकार कर जल का सही उपयोग किया जाये।
- पानी के उपयोग का मापदण्ड बनाना चाहिये।
- पानी की बचत के लिये बचत उपकरण प्रतिस्थापित करना चाहिये।
- पानी के पुन: उपयोग के लिये नयी प्रणाली को क्रियान्वित करना।
- जल संकेत पद्धति का निर्माण करना इससे भविष्य में जल आपूर्ति को सुचारु रुप से नियोजित किया जा सकता है।
- जल आवश्यकता को उचित मूल्य से बांधना होगा।
- स्प्रिंकलर और ड्रिप सिंचाई को बढ़ावा देना होगा।
- बाढ़ नियंत्रण पर विशेष कार्य करना होगा।
- विकसित फसल पद्धति को अपनाना होगा।

जल एक बिलासिता की वस्तु है, जल संसाधनों का उचित प्रबंधन एवं नियोजन करना अति आवश्यक है, जिससे केवल ग्वालियर जिला ही नहीं बल्कि देश के आर्थिक विकास को समृद्धि मिले जो हर क्षेत्र में अपनी संपूर्ण प्राथमिकता को बनाये।

निष्कर्ष : पृथ्वी पर मनुश्य और अन्य जीवों का जीवन चक्र केवल जल पर ही निर्भर है। जल हमारी खाद्य व्यवस्था की अत्यंत महत्वपूर्ण इकाई है। जल हमारे चारों ओर महासागरों, झीलों, नदियों और प्रवाहों में प्रचुर मात्रा में चारों ओर मौजूद रहा है। लेकिन इस संपदा का सद्उपयोग कम दुरुउपयोग ज्यादा किया जा रहा है। इस कारण अन्य प्राकृतिक संसाधनों की तरह हम आज शुद्ध पेयजल के लिये तरसने लगे हैं। यदि इसी प्रकार जल का दुरुपयोग किया गया तो हमें जल की एक – एक बूंद के लिये तरसना होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *जल संसाधनों का विकास जिला – ग्वालियर, म.प्र. शासन, जल संसाधन विभाग, पृष्ठ – 04–05.*
2. *जल धन का निर्धारण, पृष्ठ – 20*
3. *सतही जल की उपलब्धता पृष्ठ – 21*
4. *भूजल विकासखण्ड की स्थिति, पृष्ठ – 23*
5. *भारतीय अर्थव्यवस्था, वार्षिक पुस्तक पृष्ठ – 23*
6. *जल की रोचक बातें – डॉ. जे.पी. मिश्रा*
7. *जल संसाधन विभाग से प्राप्त जानकारी*
8. *भू जल सर्वेक्षण विभाग से प्राप्त जानकारी*
9. *जिला सांख्यिकीय कार्यालय से प्राप्त जानकारी*

ISSN 2277-5587

सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन क्षमता व शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. मीरा गुप्ता
प्राचार्य, मुरार, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक या व्यक्ति का सर्वांगीण विकास किया जाता है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति अपना विकास नहीं कर सकता है। एक सम्पूर्ण एवं सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा एक अनिवार्य शर्त है। व्यक्ति ने जब से इस धरती पर प्रादुर्भाव या पर्दापण किया है तभी से उसे प्रकृति या अपने वातावरण के साथ द्वन्द्व या संघर्ष करना पड़ा है। व्यक्ति को अपने इस द्वन्द्व को कम करने के लिए अपने वातावरण से समझौता करता है। या तो वह अपने वातावरण में कोई परिवर्तन करने का प्रयास करता है और इन दोनों में किसी एक में भी परिवर्तन कर लेता है वह अपना जीवन सुखपूर्वक जी सकता है। अगर वह इन दोनों में से किसी में भी परिवर्तन नहीं कर पाता है तो उसका जीवन तनावपूर्ण हो जाता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज में रहकर ही वह अपना व्यक्तित्व एवं जीविका प्राप्त कर लेता है। विद्यालय समाज का लघु रुप है जिस प्रकार समाज में रहने के लिये समाज के नियमों एवं उत्तरदायित्वों का पालन करना होता है उसी प्रकार विद्यालय में भी छात्रों को विद्यालय के नियमों एवं विद्यालय तथा अपने मित्रों व अध्यापकों के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करना होता है। विद्यालय को भावी समाज का निर्माता कहा जाता है।

समस्या का प्रारुप

अध्ययन की समस्या माध्यमिक स्तर के छात्रों एवं छात्राओं के समायोजन क्षमता एवं शैक्षिक आकांक्षा स्तर से सम्बन्धित है माध्यमिक स्तर में विद्यार्थी किशोरावस्था से गुजर रहे हैं। अत: उनके सामने समायोजन की सबसे बड़ी समस्या आती है।

अध्ययन के उद्देश्य

- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की संवेगात्मक समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक समायोजन क्षमता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ

- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की संवेगात्मक समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक समायोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक समयोजन क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है।
- सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक आकांक्षा स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

अध्ययन की परिसीमाएँ

- प्रस्तुत अध्ययन में यू.पी.बोर्ड. के सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों तक सीमित किया गया है।
- इस अध्ययन में केवल कला वर्ग तथा विज्ञान के विद्यार्थियों को सम्मिलित किया गया है।

शोध विधि

शोधकर्ता ने अपने शोध प्रकरण की प्रकृति के आधार पर सामान्य सर्वेक्षण विधि का चयन किया है।

न्यादर्श – शोध कार्य में ग्याहरवीं के छात्र-छात्राएँ लिये गये हैं एवं माध्यमिक स्तर के कला वर्ग तथा विज्ञान वर्ग के सभी प्रकार के छात्र-छात्राएँ लिये गये हैं इन चारों विद्यालयों में 80 छात्र और 80 छात्राओं का चुनाव कर लिया गया। इस प्रकार शोधकार्य में कुल 160 विद्यार्थी लिये गये हैं।

उपकरण –

1. एडजेस्ट इनवेन्टरी फॉर स्कूल स्टूडेन्ट ए.के.पी. सिन्हा तथा आर.पी.सिंह का प्रयोग किया गया है।
2. शैक्षिक आकांक्षा के लिए (Educational Aspiration Scale (EAS)) मापनी डॉ. बी.पी. शर्मा एवं डॉ. अनुराधा गुप्ता द्वारा निर्मित उपकरण प्रयोग में लाया गया है।

परिकल्पना का सत्यापन

लघु शोध की प्रथम परिकल्पना, शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है सरकारी तथा स्ववित्तपोषित माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की समायोजन में सार्थक अन्तर है अत: सरकारी विद्यालयों के छात्रों की अपेक्षा स्ववित्तपोषित विद्यालयों के विद्यार्थियों में समायोजन क्षमता अधिक होती है।

द्वितीय-परिकल्पना में सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा स्ववित्तपोषित विद्यालयों के विद्यार्थियों में संवेगात्मक समायोजन क्षमता अधिक होती है।

तृतीय परिकल्पना के परीक्षण से विदित हुआ कि इन दोनों के मध्य सार्थक अन्तर है सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा स्ववित्तपोषित विद्यालयों के विद्यार्थियों में शैक्षिक समायोजन क्षमता अधिक होती है।

चौथी परिकल्पना के परीक्षण से पता चलता है कि दोनों समूहों के मध्य सार्थक अन्तर है। अत: सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा स्ववित्तपोषित विद्यालयों के विद्यार्थियों में सामाजिक समायोजन क्षमता अधिक होती है।

पंचम परिकल्पना में सरकारी विद्यालयों की अपेक्षा स्ववित्तपोषित विद्यालयों के विद्यार्थियों में उच्च शैक्षिक आकांक्षा स्तर पाया जाता है।

सुझाव

- इस शोध को एक बड़े न्यादर्श पर किया जा सकता है।
- समायोजन क्षमता तथा शैक्षिक आकांक्षा स्तर का ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
- इसी शोध को शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर किया जा सकता है।
- प्रस्तुत शोध का अध्ययन विषय वर्ग तथा लिंग के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. एच.के. कपिल, अनुसंधान विधियां - व्यवहारपरक विज्ञानों में*
2. *अस्थाना विपिन, शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन*
3. *हेनरी द् गैरिट, शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग, पब्लिशर्स, लुधियाना, पंजाब 1967*
4. *जॉन डब्ल्यू वेस्ट, रिर्सच इन एजूकेशन प्रिटिंग्स हॉल ऑफ इण्डिया प्रा. लि, न्यू देहली 1982*

सम्बन्ध सुधरते नहीं, भारत-पाक के बीच सिर्फ बात ही बात

अनिल कुमार शर्मा
शोधार्थी, महात्मा ज्योतिराव फूले विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

भारत व पाकिस्तान कहने को एक जिस्म और दो जान लेकिन वर्ष 1947 में जिस दिन विभाजन हुआ, उसी दिन से टकराव की राह पर। जनता में भले खूब आपसी रिश्तेदारियाँ, लेकिन सरकारों में टकराव ही टकराव। नतीजा दोनों देशों के अन्दर अब तक चार युद्ध हो चुके हैं। आये दिन सीमा पर गोलीबारी तो ऐसे होती है जैसे मानों सुबह का नाश्ता और दो वक्त का भोजन और ये सारी घटनायें जब होती हैं जब भारत पाकिस्तान से रिश्ते अच्छे करने के लिये अपना हाथ आगे बढ़ाता है और हमारा विदेश विभाग, हमारे अधिकारी पाक अफसरों से खूब बातें करते हैं व खूब समझौते करते हैं। शायद पाक हुकुमरान इस निष्कर्ष पर एकमत है कि हमें बात और समझौते करने तो हैं पर सिर्फ तोड़ने के लिये क्योंकि समझौते तोड़ेंगे नहीं तो फिर वार्ता की टेबल पर कैसे बैठेंगे? और वार्ता की जरुरत नहीं रही तो उन्हें कौन पूछेगा। पाक का मूलमंत्र ''चलेते रहो चलते रहो की तरह बतियाते रहो बतियाते रहो हैं भारत और पाकिस्तान के बीच किसी भी समस्या का समाधान बातचीत से ही निकलेगा। लेकिन सबसे बड़ा सवाल यही है कि क्या पाकिस्तान अपनी हरकतों को छोड़ पायेगा। ये सब हम इसलिये कह पा रहे हैं कि पाकिस्तान आजादी के बाद से पाकिस्तान में सेना का दबदबा रहा है। लोकतांत्रिक तरीके से चुनी गई सरकारों को वहाँ पर सेना, आई.एस.आई. व आतंकवादी गुटों की मदद से ही चलना पड़ता है।

यदि कोई सरकार इनकी अनदेखी करती है तो वो ज्यादा दिन तक नहीं टिकती। आजादी के बाद से ही दोनों देशों के मध्य तनाव और वार्ता साथ-साथ चलती आ रही है। प्रथम युद्ध और कराची समझौता अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान की ओर से जनजातीय समूहों का सहस्त्र हमला और युद्ध। यूएन के प्रयासों से शान्ति स्थापित हुई और 18 जुलाई 1949 में दोनों देशों के बीच कराची समझौता हुआ। वर्श 1954 में जम्मू-कश्मीर की संविधान सभा ने भारत में विलय पर मुहर लगा दी। पाकिस्तान आये दिन कश्मीर का मुद्दा उठाकर भारत की शान्ति की पहल को हमेशा ही ठुकराता आया है। द्वितीय युद्ध 1965 और ताशकंद घोषणा कच्छ के रण से आरम्भ हुई मुठभेड़ अगस्त तक एक पूर्ण युद्ध में बदल गई।

सितम्बर में भारतीय सेना का लाहौर में प्रवेश हो गया। यूएन के प्रयासों से युद्ध विराम लागू हुआ। जनवरी 1966 में ताशकंद में समझौता दोनों देशों ने विवादों को शांतिपूर्ण तरीके से सुलझाने पर प्रतिबद्धता जताई। तृतीय युद्ध 1971 तथा शिमला समझौता बांग्लादेश की आजादी के संघर्ष के दौरान करोड़ों शरणार्थियों के मद्देनजर भारत भी युद्ध में कूदा। शांति प्रयासों के तहत भारत-पाक में शिमला समझौता हुआ। दोनों देशों ने आपसी विवाद द्विपक्षीय वार्ता के माध्यम से सुलझाने पर सहमति जताई। ''सीजफायर लाइन बनी'' लाइन ऑफ कंट्रोल।

नाभिकीय सुविधाओं की सुरक्षा 1988 दोनों देशों ने एक-दूसरे की नाभिकीय सुविधाओं पर आक्रमण नहीं करने और नाभिकीय उपक्रमों की मौजूदगी की जानकारी साझा करने का समझौता किया। दोनों देश प्रत्येक एक जनवरी को यह जानकारी बांटते हैं। 1992 में रसायनिक हथियारों का प्रयोग न करने का भी समझौता

किया लेकिन पाक आये दिन किसी न किसी अपने व्यक्ति के माध्यम से परमाणु बम फेंकने की धमकी देता रहता है।

भारत ने पाकिस्तान के शांति स्थापित करने के लिये फरवरी 1999 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लाहौर में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के साथ लाहौर घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर किये। दोनों ने शिमला समझौते में किये गये संकल्पों देशों के बीच बस और ट्रेन चलाने पर सहमति जताई गई। लेकिन इसी बीच भारत के द्वारा किये गये शांति प्रयासों के बीच करगिल युद्ध 1999 लड़ा गया। नियंत्रण रेखा के अन्दर करगिल की पहाड़ियों पर पाकिस्तानी सैनिकों का कई रणनीतिक चौकियों पर कब्जा कर लिया। इन्हें हटाने के लिये भारत के द्वारा थल और हवाई मार्ग से कारवाई की गयी जिसमें भारत का पुन: उन चौकियों पर आधिपत्य स्थापत किया और पाकिस्तान में अक्टूबर 1999 में नवाज शरीफ का तख्ता पलट कर परवेज मुशर्रफ खुद राष्ट्राध्यक्ष बन गये।

वर्तमान में भी पाकिस्तान में यही हो रहा है। नवाज षरीफ की सरकार चौतरफा घिर गई है। बलूचिस्तान, पंजाब, सिंध व कराची में कहीं पर भी शांति नहीं है। लगता ही नहीं है कि उस देश में कोई सरकार भी है। इस बार पाक में स्थिति अजीब-ओ-गरीब हो गई है। सरकार को घेरने में इमरान खान को एक गैर राजनीतिक दल के साथ सेना व आतंकवादी गुटों का समर्थन मिल रहा है। ऐसे में वहाँ पर हालात काफी चिंताजनक हो गये हैं।

भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने अपनी तरफ से एक अच्छी पहल करते हुये सार्क के सभी देशों के राजप्रमुखों को अपने शपथ ग्रहण समारोह में बुलाया जिसमें पाकिस्तान से अच्छे रिश्तों की शुरुआत करते हुये नवाज शरीफ को बुलाकर शांति की नई पहल की। लेकिन शायद पाकिस्तान शांति नहीं चाहता इसलिये पाकिस्तान ने हुर्रियत नेताओं से बातचीत कि कौशिश करके ये अच्छा मौका भी गवां दिया। पाकिस्तान को समझना चाहिये था कि ये हुर्रियत वाले जम्मू कश्मीर ने कोई नेता नहीं है ना ही काश्मीरियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये आंतकियों की शह पर चलते हैं। ये हुर्रियत नेता कभी भी कश्मीर में शांति नहीं चाहते हैं। यदि पाकिस्तान हुर्रियत नेताओं से बातचीत की नापाक हरकत नहीं करता तो भारत के साथ बातचीत का रस्ता जल्दी ही खुल जाता क्योंकि पाकिस्तानी सेना अपने रुतबे में कभी भी कमी नहीं आने देना चाहती और वह मौजूदा स्थिति बरकरार रखना चाहती है। इस रुतबे पैसा संस्थागत कार्यो जुड़े हुये हैं। यही वजह है कि पाकिस्तीनी सेना का भारत विरोधी राग जारी रहता है। पाकिस्तान में उसने भारत से डर की बात बिठा दी है। कश्मीर पर वह अपना क्षेत्राधिकार समझती है और कश्मीर पर कोई भी समझौता नहीं करने की बात पाकिस्तानी सेना कहती रहती है। लश्करे तैयबा जैसे आतंककारी संगठन का भारत के खिलाफ प्रॉक्सी वॉर के लिये इस्तेमाल करती रही है। इसी लश्करे तैयबा के आतंकवादी सरगना हाफिज सईद व लखवी ने मुम्बई पर 26/11 का आतंकी हमला करवाया था और पाकिस्तान लखवी की भारत के विरोध के बावजूद लखवी की पैरवी करता रहा और पाकिस्तान की अदालत ने उसे भारत के द्वारा दिये गये सबूतों को दरकिनार करते हुये लखवी को रिहा कर दिया। पाकिस्तानी सेना नहीं चाहती है कि भविष्य में भारत पाकिस्तान के सम्बन्ध सुधरें। पाकिस्तान जम्मू कश्मीर से लगी नियंत्रण रेखा पर आये दिन युद्धविराम का उल्लंघन कर गोलीबारी शुरु कर देता है। पाकिस्तान के सैनिकों ने ऐसा घोर कृत्य किया कि सभ्य बिरादरी को शर्मसार करते हुये भारतीय सेना के दो जवानों का सिर काट कर अपने साथ ले गये। इसके बावजूद भारत ने अनेकों ऐसे प्रयास किये ताकि दोनों देशों के सम्बन्ध मधुर हो सके। इसके लिये भारत ने ऐसे अनेक प्रयास किये हैं। चाहे वह फिर क्रिकेट डिप्लोमेसी ही क्यों न हो। इसके तहत जब प्रधानमंत्री राजीव गांधी के दौर में भारत ने 1986 में ऑपरेशन ब्रासटैक के तहत राजस्थान में एक सैनिक अभ्यास किया था और काफी संख्या में यहाँ पर सैनिकों का जमावड़ा हो गया था। पाकिस्तान ने भी इसी दौरान अपनी सेना को सीमा पर रवाना कर दिया था। सारी दुनिया में यह संदेश जा रहा था कि भारत और पाकिस्तान में युद्ध होने को है। इसी दौरान जिया उन हक एक क्रिकेट मैच देखने जयपुर आये थे और सारा माहौल शांत हो गया था। इसी तरह 26/11 के बाद के माहौल में पाक प्रधानमंत्री युसुफ गिलानी भी 2011 में मैच देखने भारत आये थे। इसी कदम को आगे बढ़ाते हुये प्रधानमंत्री मोदी ने भारत में क्रिकेट विश्वकप के आयोजन के अन्दर 13 फरवरी 2015 में मोदी ने नवाज शरीफ सहित क्रिकेट विश्वकप में भाग लेने वाले अन्य दक्षेस देशों को फोन कर शुभकामनायें दी। उन्होंने जानकारी दी कि विदेश सचिव एस. जयशंकर सम्बन्धों को मजबूती देने के लिये जल्द ही सार्क देशों की यात्रा करेंगे। इससे भारत ये संदेश देना चाहते थे ताकि दोनों देशों में शांति स्थापित हो सके। भारत ने अपनी विदेश नीति को पीछे छोड़ते हुये अनेक ऐसे शांति प्रयास किये हैं कि दोनों देशों के बीच अमन-चेन स्थापित हो सके। विदेश राज्यमंत्री वीके सिंह ने पाक दिवस समारोह में भाग लिया जिसकी चर्चा भारत में शायद ही पहले कभी हुई हो।

एक बार फिर से भारत शांति वार्ता को आगे बढ़ाते हुये रुस के उफा शहर में सचिव-स्तर की वार्ता के लिये सहमति प्रदान की। पाक ने भी इस दोनों देशों की सचिव स्तर की वार्ता को स्वीकार कर पाकिस्तान ने लखवी समेत अनेक आतंकवादी की आवाज के नमूने भारत को देने में सहमती दी और भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज शरीफ के पाकिस्तान आने का निमंत्रण भी स्वीकार कर लिया। लेकिन ये शांति के प्रयास पाकिस्तानी सेना को स्वीकार नही है इसलिये पाकिस्तानी सरकार ने आतंकियों के आवाज के नमूने देने से इनकार कर दिया। शायद पाकिस्तान दोनों देशों के बीच अमन-चैन चाहता ही नहीं है। 2015 में उधमपुर में आतंकी हमला कराकर शांति वार्ता को विफल करना चाहता है। इसलिये कसाब के बाद जिन्दा आतंकी नावेद उर्फ याकूब

ISSN 2277-5587

2015 में कश्मीर में पकड़ा गया और उसके अपने आप को पाकिस्तान का बताया है। उसने कहा है कि वह आतंकी हाफिज सईद के बेटे तहला से आतंकी ट्रैनिंग ली है।लेकिन पाकिस्तान भारत के इस दावे को भी झूठा करार दे रहा है। अब पाकिस्तान गतिविधियाँ बम धमाके, सीमा व गोलीबारी ये शांति की वार्ता को विफल कर सकता है। हुआ भी कुछ ऐसा कि पाकिस्तान के एन.एस.ए. प्रमुख सरताज अजीज ने भारतीय एन.एस.ए. प्रमुख अजित डोभाल से बातचीत इसलिये रद्द कर दी कि भारत पाकिस्तान से सिर्फ आतंकवाद के मुद्दे पर ही बात करेगा। क्योकि उफा में दोनों देशों के प्रधानमंत्रियों में यह तय हुआ था कि बातचीत का आधार आतंकवाद रहेगा। इसलिये पाकिस्तान ने शांति वार्ता को विफल करने के लिये कश्मीर का मुद्दा व हुर्रियत नेताओं को बातचीत का न्योता देकर शांति बहाली को फिर से रोका। भारत शिमला समझौते को मानते हुये तीसरे पक्ष को वार्ता में नहीं शामिल करना चाहता था। भारत ने पाकिस्तान को दो टूक शब्दों में कह दिया कि पाकिस्तान हुर्रियत नेताओं से बातचीत ना करे। वह सिर्फ आतंकवाद के मुद्दे पर ही बात करे। पाकिस्तान ने अपनी प्रेस वार्ता में कहा कि वह भारत को पाकिस्तान में ''रॉ'' (RAW) की गतिविधियों का डोजियर भारत को देगा। तब भारत की विदेष मंत्री सुषमा स्वराज ने कहा कि हम डोजियर के साथ-साथ पाकिस्तान को जिन्दा पाकिस्तानी आतंकवादी दे देंगे और पाकिस्तान ने भारत पर यह आरोप लगाते हुये बातचीत रद्द कर दी कि भारत अपनी शर्तो पर बातचीत करना चाहता है और इस बात का बहाना बनाकर पाकिस्तान ने एन.एस. स्तर की बातचीत को रद्द कर दिया। इसलिये कह सकते हैं कि सम्बन्ध सुधरते नहीं, भारत-पाक के बीच सिर्फ बात ही बात।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Indian's Foreign policy पृष्ठ सं. 32-33 सुमित गांगुली*
2. *Challenge & Strategy राजीव सीकरी*
3. *India-2015 पृष्ठ सं. 15-20 - Publication Division*
4. *History of Morden India बिपिन चन्द्र*
5. *Social Problems in India पृष्ठ सं. 45-50 राम आहुजा*
6. *राजस्थान पत्रिका पृष्ठ 1 26-03-2015*
7. *राजस्थान पत्रिका पृष्ठ 1-2 05-07-2015*
8. *दैनिक भास्कर पृष्ठ 1 15-08-2014*
9. *राजस्थान पत्रिका पृष्ठ 1-2 14-09-2015*
10. *Indian National Security पृष्ठ 56-58 कान्ति पी वाजपेयी*
11. *Indian's Security एस. सी. दुबे*

भिण्ड जिले का पुरातात्विक वैभव

डॉ. शुक्ला ओझा
प्राध्यापक, डॉ. भगवत सहाय शासकीय महाविद्यालय, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

भिण्ड जिला चम्बल संभाग का ऐतिहासिक स्थलों की दृष्टि से महत्वपूर्ण जिला है। इस जिले के गोहद, अटेर, मखौरी, उटीला, बेहट इत्यादि स्थलों के साथ-साथ स्वयं भिण्ड भी विशाल ऐतिहासिक धरोहर अपने अन्दर संजोये हुये है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा भिण्ड जिले के पुरातात्विक सर्वेक्षण हेतु विशेष कार्य किये हैं जिससे क्षेत्र की अनेक नवीन सूचनाएं प्राप्त हो सकी हैं। इसका क्रम् सन् 1958-59 से प्रारंभ हुआ। जिससे भिण्ड जिले के अकोड़ा, बाराकलाँ, रुर नामक स्थानों पर पाषाण युगीन तथा ताम्रयुगीन अवशेष प्राप्त हुये। ये स्थल पुरातात्विक अभिरुचि वाले जनों के लिये विशेष महत्व रखते हैं। इनके साथ-साथ भिण्ड जिले में स्थित विविध ऐतिहासिक स्थल निम्नानुसार हैं:-

भिण्ड जिले के ऐतिहासिक स्थल

- भिण्ड नगर के प्रमुख स्थल
- जैन मंदिर
- हिन्दू मंदिर
- आलमपुर की मल्हारराव होल्कर की छतरी
- अटेर दुर्ग
- गोहद दुर्ग
- अन्य स्थल

1. **भिण्ड के प्रमुख स्थल:-** भिण्ड का नामकरण प्रमुख हिन्दू सन्त विभण्डक ऋषि के नाम पर हुआ जिन्हें आम बोलचाल की भाषा में भिण्डी ऋषि के नाम से जाना जाता था। उनका प्राचीन स्थल भिण्ड में स्थित है जो पर्यटकों एवं स्थानीय निवासियों की आस्था का केन्द्र है। भिण्ड का और आकर्षण भवानी गौरी सरोवर है जिसका निर्माण पृथ्वी राज चौहान ने करवाया था। राजपूत काल के उत्तरार्द्ध में भिण्ड के चन्देल शासकों को परास्त कर चौहान वंश ने यहां शासन स्थापित किया था। यही कारण है कि प्रसिद्ध चौहान शासक पृथ्वीराज चौहान ने गौरी सरोवर के साथ-साथ यहां गौरी घाट पर गणेश मंदिर का भी निर्माण करवाया जो आज भी यहां का प्रसिद्ध मंदिर है। पृथ्वीराज द्वारा भिण्ड के प्रसिद्ध वनखण्डेश्वर मंदिर का भी निर्माण सन् 1175 ई में करवाया गया था। जिसके बारे में यह मान्यता है कि उसी समय से इस मंदिर में ज्योति अखण्ड रुप से अनवरत जल रही है। इसी कारण यह मंदिर विशेष आस्था एवं आकर्षण का केन्द्र है। भिण्ड तहसील में पाण्डरी ग्राम भी ऐतिहासिक महत्व रखता है। मान्यता है कि यहा पाण्डवों ने उनके अज्ञातवास में निवास किया था। भिण्ड के दुर्ग का निर्माण भदौरिया शासकों द्वारा सन् 1654-1684 के मध्य करवाया गया था। सिंधिया शासन के समय इसमें दरबार हॉल का निर्माण किया गया। भिण्ड दुर्ग एवं दरबार हॉल की नष्टप्राय स्थिति को देखते हुये इसे सरकार द्वारा संरक्षित घोषित कर दिया गया है तथा वर्तमान समय में दरबार हॉल में जिला पुरातत्व विभाग, भिण्ड द्वारा इसमें एक संग्रहालय संचालित है।

ISSN 2277-5587

2. **जैन मंदिर:-** भिण्ड जिला जैन आस्था का केन्द्र रहा है। इसमें अनेक प्रसिद्ध एवं बड़े जैन मंदिर स्थित हैं। इसकी मेहगाँव तहसील का महावीर स्वामी का मंदिर अन्यन्त प्रसिद्ध है। ऐसी मान्यता है कि स्वयं महावीर स्वामी कैवल्य प्राप्त करने के उपरान्त की गयी यात्रा में यहां आये थे तथा यहां उनके चमत्कारों की भी कथाएं प्रचलित हैं। यह मंदिर जैन अतिशय क्षेत्र के अन्तर्गत स्थित है। भिण्ड नगर से इसकी दूरी लगभग 14 किलोमीटर है। जैन आस्था का एक और केन्द्र भिण्ड के निकट पवई में स्थित स्वामी नेमीनाथ का मंदिर तथा भिण्ड से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर चम्बल नदी के तट पर बरही ग्राम में स्थित स्वामी पार्श्वनाथ का मंदिर है जो यहां जैन बहुलता का संकेत देता है। इसके साथ ही भिण्ड तथा निकटवर्ती क्षेत्र में छोटे व बड़े मंदिरों को मिलाकर लगभग 60 जैन मंदिर हैं जो जैन श्रद्धालुओं एवं पर्यटकों की आस्था का केन्द्र हैं। यहां दो नवीन जैन मंदिर हैं जिनमें पहले मंदिर का केवल बुर्ज ही प्राचीन है इसके परिसर में सर्वतोभद्र प्रस्तर प्रतिमा एवं अन्य प्राचीन जैन प्रतिमाएं संग्रहीत हैं। ये प्रतिमाएं श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों की हैं इनमें कुछ प्रतिमाओं पर अभिलेख भी प्राप्त हुये हैं जिससे इनके निर्माण की तिथि क्रमश: 1150 ई. तथा 1293 ई. ज्ञात होती है जो इनकी प्राचीनता को प्रस्तुत करती है।

3. **भिण्ड जिले के प्रसिद्ध हिन्दू मंदिर:-** भिण्ड नगर के गणेश मंदिर एवं वनखण्डेश्वर मंदिर के अतिरिक्त भिण्ड जिले में अनेक प्राचीन ऐतिहासिक मंदिर अवस्थित हैं जो पर्यटन के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर भिण्ड जिले की मिहोना तहसील में बालाजी में स्थित प्रसिद्ध सूर्य मंदिर है जो बालजी मंदिर के नाम से विख्यात है। यह भिण्ड से लगभग 42 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। साथ ही भिण्ड जिले की गोहद तहसील के जमादा ग्राम जो ग्वालियर से 45 कि.मी. की दूरी पर स्थित है, वहां परशुराम जी द्वारा निर्मित माता रेणुका के मंदिर का विशेष पौराणिक महत्व है। एक अन्य पौराणिक स्थल लहार मण्डौरी मार्ग पर काली सिन्ध नदी के तट पर माण्डौरी ग्राम से एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित नारद देव का मंदिर है। यह लहार तहसील के अन्तर्गत आता है। इसके बारे में मान्यता है कि यहां महर्षि नारद ने तपस्या की थी। इस क्षेत्रके प्रसिद्ध हनुमान मंदिरों में सर्वाधिक ख्याति दंदरौआ के प्राचीन हनुमान मंदिर की है जो धार्मिक आस्था के साथ-साथ चमत्कारिक उपचार के लिये भी जाना जाता है। अन्य हनुमान मंदिर लहार से 10 किलोमीटर की दूरी पर हीरापुर का पंचमुखी हनुमान मंदिर एवं जमुना वाले हनुमान जी का मंदिर भी विशिष्ट हैं, जो इस क्षेत्र में प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के साथ धार्मिक पर्यटन के लिये भी विख्यात हैं। मंदिर के अतिरिक्त आश्रम एवं उपासना स्थल, समाधियां भी यहां प्रमुख हैं। इनमें मिहोना तहसील के मछंद ग्राम में मछेन्द्रनाथ (गोरखनाथ जी के गुरु) की स्थली तथा भिण्ड तहसील की बिजपुरी ग्राम की सेज ग्वालियर ऋषि की समाधि, चम्बल नदी के तट पर अवस्थित श्रृंगी ऋषि का आश्रम भी विशेष रुप से आस्था का केन्द्र है। जनश्रुतियों के अनुसार राजा दशरथ का पुत्रेष्टि यज्ञ इन्हीं श्रृंगी ऋषि ने सम्पन्न करवाया था।

4. **आलमपुर की मल्हार राव होल्कर की छतरी:-** मरणोपरान्त बनाये जाने वाले स्मारकों में हिन्दू परम्परा में छतरी बनाने की परम्परा राजपूत एवं मराठा परिवारों में विशेष रुप में प्रचलित रही है। भिण्ड से कुछ दूरी पर आलमपुर में होल्कर वंश के प्रतापी शासक मल्हार राव होल्कर की छतरी का अहिल्या बाई ने सन् 1466 ई. में निर्माण करवाया था। मराठा शैली का यह स्मारक अपनी फूलपत्ती की डिजायन वाली पच्चीकारी, घुमावदार शिखर, आर्च एवं कलश, चित्रकारी से सुसज्जित खम्भों के लिये विशेष रुप से जाना जाता है।

5. **अटेर का दुर्ग:-** भिण्ड से लगभग 35 किलोमीटर पश्चिम में तथा पोरसा से 40 किलोमीटर की दूरी पर अटेर का दुर्ग स्थित है जिसे सन् 1664-1668 ई. में बदन सिंह, महासिंह एवं बखत सिंह नामक भदौरिया शासकों ने बनवाया था। इसके बाद इस क्षेत्र का नाम ही भदवार हो गया था। यह दुर्ग चम्बल नदी के तट पर बना हुआ है। आज इस दुर्ग की स्थिति भी नष्टप्राय है। इस दुर्ग के प्रमुख आकर्षण खूनी दरवाजा, बदन सिंह का महल, हथियापौर, राजा का बंगला, रानी का बंगला, बारह खम्भा महल इत्यादि हैं। राजपूत शैली का यह महत्वपूर्ण नमूना है।

6. **गोहद का किला:-** गोहद भिण्ड जिले का प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर है। प्रसिद्ध इतिहासकार कनिंघम एवं विलियम क्रुक के अनुसार जाट लोग आगरा के निकटवर्ती बमरोली से आकर सन् 1505 ई. में गोहद में रहने लगे तथा जाट राजा सिंहनदेव ने 16 वीं शताब्दी में गोहद दुर्ग की नींव रखी। आज दुर्ग की स्थिति तो शोचनीय है किन्तु इसके महल अभी भी अपनी सुन्दर पच्चीकारी एवं ईरानी कला के लिये जाने जाते हैं। इस दुर्ग के प्रमुख आकर्षण इसके सात द्वार थे। जिनके नाम इटायली दरवाजा, बरथरा दरवाजा, गोहदी दरवाजा, बिरखड़ी दरवाजा, कठवां दरवाजा, अरौआ दरवाजा, सरस्वती दरवाजा आदि थे। इनमें से इटायली द्वार आज भी दर्शनीय है तथा शेष द्वार नष्ट हो गये हैं। जाट शासकों द्वारा इसमें सात भंवर, शीश महल, दीवाने आम जैसी संरचना, शिव मंदिर आदि का निर्माण करवाया गया था। पत्थर को तराशकर बनायी गयी जालियां तथा पत्थर पर नक्काशी का कार्य एवं बेलबूटे की आकृतियां इसकी स्थापत्य कला का प्रमुख हिस्सा

रही है। महलों की दीवारों, मंदिरों की छतों आदि पर रंगीन चित्रकारी भी प्राप्त होती है। यह दुर्ग भिण्ड जिले का प्रमुख आकर्षण है।

7. **अन्य ऐतिहासिक स्थल:-**भिण्ड जिले के अन्य ऐतिहासिक स्थलों में भिण्ड के निकटवर्ती क्षेत्रों में प्राप्त गढ़ियाँ, मंदिर, महल इत्यादि आते हैं। जिनमें बेहट का छतरपुर महल, करवास का किला, गोहद शासक महाराज छतर सिंह का बनवाया गुहीसर का छोटा किला (गढ़ी), उटीला की राजाओं की गढ़ी, बिल्हेटी की राणा रंजीत सिंह की गढ़ी, मखौरी ग्राम की राणाओं की गढ़ी, बन्धोली की जाट राजाओं की गढ़ी तथा उनमें बने शिव मंदिर इस क्षेत्र के ऐतिहासिक वैभव को प्रस्तुत करते हैं। भिण्ड से उत्तर में खैराट का ईटों का प्राचीन मंदिर स्थापत्य का उत्तम नमूना है। ईटों से निर्मित इस मंदिर पर चढ़ा उत्तम प्लास्टर और इसका विचित्र शिखर इसे अद्भुत स्वरुप प्रदान करता है। भिण्ड जिले के ऐतिहासिक स्थलों में लहार की गढ़ी का भी महत्वपूर्ण स्थान है। लहार भिण्ड जिले की तहसील के रुप में भिण्ड से लगभग 55 किलोमीटर की दूर पर स्थित है। यह 250-250 उत्तरी अक्षांष से 260-290 उत्तरी अक्षांश के मध्य तथा 780-44 पूर्वी देशान्तर से 790-03 देशान्तर के मध्य स्थित है। इस तहसील में बारहट, जमुहा, दबोह, सिरसा इत्यादि पुरातात्विक महत्व के स्थल हैं। जहां से उत्तरीय काली पॉलिश वाले काली, लाल मिट्टी के पाषाण युगीन बर्तन प्राप्त हुये हैं। लहार गढ़ी का इतिहास 2500 वर्ष पुराना माना गया है। महाभारत कालीन लाक्षागृह, जिसमें पाण्डवों का जलाकर मारने का प्रयास किया गया था, वही आज का लहार है। लहार गढ़ी (लाक्षागृह) से 3 किलो मीटर की दूरी पर निकलने वाली सुरंग यहां से पाण्डवों के कुंती सहित बाहर निकलने की पुष्टि करती है। गढ़ी के आसपास आज भी लाख के अनेक टुकड़ों की प्राप्ति भी इसके लाक्षागृह होने की पुष्टि करती है। इस क्षेत्र में आज भी तीखी गंध के लिये '' लहार'' शब्द का प्रयोग होता है। पुरातात्विक खोजों में प्राप्त ईटों का आकार चार-पाँच हजार वर्ष पूर्व की सभ्यताओं से मिलता जुलता है। लहार के किले, जिसे गढ़ी भी कहते है, का निर्माण कुशवाह शासकों द्वारा 15 वीं शताब्दी के मध्य करवाया गया था। यह ईंट और चूने से निर्मित दो मंजिला दुर्ग है जिसके प्रमुख आकर्षण विशाल कक्ष, शस्त्रागार, रामजानकी मंदिर इत्यादि हैं। इस प्रकार भिण्ड जिला अनेक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सम्पदा से परिपूर्ण जिला है।

अतीत का अध्ययन ही इतिहास कहलाता है। इतिहास स्वयं को ऐतिहासिक स्मारकों, साहित्य एवं परम्पराओं में अभिव्यक्त करता है। ऐतिहासिक स्मारकों के रुप में यह अभिव्यक्ति मनुष्य को उसकी जड़ों से जोड़ते हुये उसे काल्पनिक अभिव्यक्ति के माध्यम से उस युग में पहुंचा देती है, जिस युग का वह स्मारक है। वर्तमान समय में बढ़ा हुआ ऐतिहासिक पर्यटन इन ऐतिहासिक स्थलों का महत्व और भी अधिक बढ़ा रहा है। भिण्ड जिले की यह असीमित अद्भुत ऐतिहासिक विरासत इन संभागों को पर्यटन के क्षितिज पर आकर्षण केन्द्र के रुप में स्थापित करती है। भिण्ड जिले के सभी स्थल इस दृष्टिकोण से समृद्ध हैं। इस विरासत को संजोकर रखना आज प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *बाजपेयी, कृष्णदत्त - मध्यप्रदेश में नये पुरातत्वीय अन्वेषण- पृष्ठ 6*
2. *दुबे, दीनानाथ- भारत के दुर्ग- पृष्ठ 124*
3. *कुरैशी, नईम- ग्वालियर के आसपास- पृष्ठ 37*
4. *माहेश्वरी, हरिवल्लभ- ग्वालियर इतिहास, संस्कृति एवं पर्यटन-पृष्ठ 78*
5. *म.प्र. राज्य पर्यटन विकास निगम- मध्यप्रदेश- ए टु जेड टूरिस्ट गाइड- पृष्ठ 55*
6. *शर्मा, द्वारिका प्रसाद- आसन के अंचल में प्रागैतिहासिक मानव की कला साधना- ग्वालियर दर्शन-पृष्ठ 277*
7. *मिश्रा,आर,एन- ग्वालियर संभाग की प्राचीन बस्तियाँ-मानविकी पत्रिका- पृष्ठ 39*
8. *अग्निहोत्री, अजय- जाटों का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास- पृष्ठ 85*
9. *कुमार, संजय- मध्यप्रदेश- पृष्ठ 40*

महिला सशक्तीकरण : बहुआयामी परिप्रेक्ष्य

डॉ. शालिनी चतुर्वेदी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, कानोडिया पी.जी. महिला महाविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

सशक्तीकरण एक बहुआयामी अवधारणा है जिसका अर्थ मात्र राजनीतिक सशक्तीकरण से नहीं है वरन सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सशक्तीकरण से भी है। भारत के सन्दर्भ में सशक्तीकरण से तात्पर्य कमजोर वर्ग के रुपान्तरण से है। फर्ल (1985) के अनुसार सशक्तीकरण एक ऐसा शब्द है जो व्यापक रुप में प्रयुक्त तो किया जाता है परन्तु इसे परिभाषित करने का प्रयास नहीं हुआ है। सेन एण्ड जॉन की पुस्तक ''डेवलपमेन्ट क्राइसीस एण्ड अल्टरनेटीव विजिन 'थर्ड वर्ल्ड वुमैन पर्सपेक्टिव' (1985) के प्रकाशित होने के बाद सशक्तीकरण शब्द का अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोग होने लगा। इस पुस्तक के भाग ''स्वयं को सशक्त करना'' में स्पष्ट रुप से कहा गया है कि लिंगात्मक असमानता एंव लिंग धारणाओं में रुपान्तरण करने के लिए संगठनों को बनाना होगा। लिंगात्मक विषयों पर सशक्तीकरण की चर्चा ने महिलाओं को राजनीति के निजी व सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में सक्रिय कर दिया है, यद्यपि इस शब्द के प्रचलन में आने से पूर्व भी महिलाऐं घर, समाज, देश, अन्तर्राष्ट्रीय, विकासशील नीतियों के सन्दर्भ में विचार व्यक्त करती थीं परन्तु सशक्तीकरण एक सक्रिय प्रक्रिया है जो महिलाओं को स्वयं की पहचान देती है तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में उनकी शक्ति को अनुभूत कराती है। वस्तुत: किसी भी राष्ट्र की परम्परा व संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है महिलाऐं समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। राष्ट्र के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है। महात्मा गाँधी ने कहा था स्त्री पुरुष की संगिनी है जिसकी बौद्धिक समताऐं पुरुष की बौद्धिक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं है। महिला सशक्तीकरण दुनिया का बेहद विचारणीय विषय है इसके अन्तर्गत महिलाओं से जुड़े सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व कानूनी मुद्दों पर संवेदनशीलता और सरोकार व्यक्त किया जाता है। यह महिलाओं की स्वतन्त्रता, समानता, स्वावलम्बन और सहअस्तित्व की पैरवी करता है। सशक्तीकरण की प्रक्रिया में समाज को पारम्परिक पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागरुक किया जाता है, जिसने महिलाओं की स्थिति को सदैव कमतर माना है। भारत में महिला सशक्तीकरण से आशय महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक दशा सुधारने मात्र से समझा गया है जबकि इसका अर्थ बहुत व्यापक है महिला सशक्तीकरण भौतिक या आध्यात्मिक, शारीरिक या मानसिक सभी स्तर पर महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा कर उन्हें सशक्त बनाने की प्रक्रिया है। वर्तमान में महिलाओं की भूमिका केवल परम्परागत, पारिवारिक जिम्मेदारियों को वहन करना ही नहीं है अपितु आज की शिक्षित महिलाऐं नौकरी तथा अन्य व्यवसाय व उद्योगों में लगातार एक आर्थिक सहायक की भूमिका का निर्वाह कर रही हैं। वर्तमान में महिला उद्यमिता विकास का जो रुप दिखाई देता है वह केन्द्र व राज्य स्तर पर किए गए प्रयासों व विभिन्न गैर सरकारी संगठनों के प्रयत्नों का परिणाम है। वैश्विक स्तर पर भी नारीवादी आन्दोलनों और यू एन डी पी आदि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं ने महिलाओं के सामाजिक समता स्वतन्त्रता और न्याय के राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने में अहम् भूमिका निभायी है। महिला सशक्तीकरण अवधारणा को व्यापक रुप में समझने हेतु इसके विविध पहलुओं पर विचार करना अति आवश्यक है।

महिला सशक्तीकरण : राजनीतिक आयाम – राजनीतिक सशक्तीकरण से तात्पर्य सत्ता में महिलाओं की भागीदारी से है, मात्र वोट डालना सत्ता में भागीदारी नहीं है अपितु राजनीतिक दल व सरकार के सभी स्तरों पर निर्णय लेने, नीति निर्धारण करने में महिलाओं की अहम व सक्रिय भूमिका होनी चाहिए। 1993 में 73वें व 74वें संविधान संशोधन द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं एवं स्थानीय निकायों में प्रत्येक स्तर पर महिला सदस्यों और अध्यापकों के लिए एक-तिहाई सीटें आरक्षित कर दी गई हैं। इस व्यवस्था के परिणामस्वरुप सभी प्रान्तों में ग्रामीण व शहरी पंचायतों के सभी स्तरों पर महिला जनप्रतिनिधियों के रुप में कई लाख महिलाएँ अपनी अहम भूमिका का निर्वाह कर रहीं हैं। श्रीमती प्रतिभा पाटिल, मीरा नायर, सोनिया गाँधी, मायावती, उमा देवी, मारग्रेट एल्वा, बसुन्धरा राजे, जया बच्चन, रेखा, हेमामालिनी, जयाप्रदा, जयललिता, सुषमा स्वराज, शीला दीक्षित, ममता बनर्जी ऐसे अनेक बहुचर्चित महिलाओं के नाम हैं, जो राजनीति से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से जुड़ी रहीं हैं व सक्रिय भागीदारी निभाई है। महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण उनकी सामाजिक, आर्थिक व कानूनी स्थिति को भी सुदृढ़ बनाता है।

महिला सशक्तीकरण : सामाजिक व शैक्षणिक आयाम – भारतीय समाज प्रारम्भ से ही पुरुष प्रधान समाज रहा है। महिलाओं के सामाजिक व शैक्षणिक स्तर पर सशक्तीकरण से तात्पर्य समानता, न्याय, स्वतन्त्रता, तर्क व व्यक्तिवादिता के सन्दर्भ में महिलाओं की सशक्त व प्रभावकारी स्थिति से है। सामाजिक व शैक्षणिक स्तर पर महिलाओं को अधिक से अधिक निर्णय लेने में भागीदारी के अवसर प्राप्त हों, जीवनसाथी के चयन में महिलाओं के अधिकार, विवाह की उम्र के निर्णय के अधिकार, विधवा-पुर्नविवाह, दहेज के सन्दर्भ में निर्णय लेने का, तलाक लेने, बच्चों की संख्या परिवार नियोजन, शिक्षा प्राप्त करने, भविष्य के लिए पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय चयन का अधिकार इत्यादि प्राप्त हों। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का महत्त्वपूर्ण माध्यम है, शिक्षा को महिला सशक्तीकरण के साथ विशेष रुप से सम्बन्धित इस अर्थ में माना गया है कि इसके आधार पर ज्ञान, कुशलता व व्यवसायों को अर्जित करके महिलाऐं विश्व के समक्ष महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ प्रस्तुत कर सकती हैं। शिक्षा के आधार पर महिलाओं में आत्मबल का विकास होता है। सरकार महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति में सुधार लाने हेतु अनेक योजनाऐं चला रही है जैसे – महिला समाख्या योजना, कस्तूरबा गाँधी योजना, दूरस्थ प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम, दोपहर का भोजन योजना, शिक्षाकर्मी योजना, राष्ट्रीय बाल कार्य योजना, आपकी बेटी योजना, महिला मण्डल योजना, राष्ट्रीय शिक्षा नीति इत्यादि। वर्तमान में महिला शिक्षा के लिए चलाई जा रही इन योजनाओं व महिला विकास कार्यक्रमों से महिलाओं का सामाजिक व शैक्षणिक सशक्तिकरण हो रहा है।

महिला सशक्तीकरण : उद्यमिता व आत्मनिर्भरता के सन्दर्भ में – महिला सशक्तीकरण का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है महिला उद्यमिता का विकास क्योंकि स्वावलम्बी होने से महिला का स्वाभिमान भी बढ़ता है और आत्मविश्वास भी। वह प्रतिकूल निषेधों व प्रतिबन्धों को नकारने की क्षमता हासिल कर लेती है। महिला को कमजोर बनाने में उसके परजीवी होने के साथ-साथ समाज की आचार संहिताऐं भी जिम्मेदार हैं स्वावलम्बन उसे उन बेड़ियों से मुक्त करने का एक मजबूत आधार देता है। हमारे भारतीय समाज में लड़कियों को दूसरे घर की अमानत या पराई अमानत माना जाता है अभिभावक लड़की के बड़े होने तक उन्हें सीमित शिक्षा के साथ-साथ अनिवार्य रुप से पारिवारिक जिम्मेदारियों को संभालने का भी संस्कार देते हैं। अगर हर परिवार लड़की को शिक्षा देने के साथ-साथ उनके मन में स्वावलम्बी होने की भावना अनिवार्य रुप से भरे तो समाज में हर लड़की व महिला आत्मविश्वास से भरी होगी व आत्मनिर्भर होगी उसे परजीवी के समान जीवन नहीं बिताना पड़ेगा।

स्वावलम्बन महिला में स्वाभिमान पैदा करता है व स्वाभिमान उन्हें चेतना से सम्पन्न करता है और चेतना उनकी सामर्थ्य का निर्माण करती है। इसलिए महिला सशक्तीकरण के लिए जरुरी है स्वावलम्बन व आत्मनिर्भरता। भारतीय समाज में अनेक ऐसी महिलाऐं हैं जो फैशन, हस्तकला, फोटोग्राफी, रेडीमेड गारमेन्ट्स, बेकरी, सौन्दर्य, सॉफ्टवेयर, आभूषण, डिजायन, फिल्मी डायरेक्शन हर एक क्षेत्र में नाम कमा रही है। अन्तरिक्ष में जाने वाली महिला कल्पना चावला, मल्लिका बी. निवासन जो स्वयं की ट्रैक्टर कम्पनी चला रही हैं, दयनिता सिंह जो वृत्तचित्र व न्यूज फोटोग्राफी में जोखिम उठा रही हैं, एकता कपूर, फरहा खान जो टेलीविजन व कोरियोग्राफी में अपना कैरियर बना रही हैं। फोर्ब्स मैगज़ीन ने पेप्सिको की सीईओ भारतीय महिला इंदिरा नूयी को विश्व की पाँचवी पावरफुल महिला करार दिया। मोटवानी कायनेटिक मोटर्स की मैनेजिंग डॉयरेक्टर सुलज्जा फिरोदिया ने भी बिजनेस में अपनी दक्षता दिखाई। वहीं किरण देसाई ने अपनी किताब के लिए बुकर पुरस्कार जीता। आईसीआईसीआई बैंक की चन्दा कोचर फॉर्च्यून मैगजीन की अरबपति महिलाओं की लिस्ट में ऊपर आ गई। इना डे, रीटा धूत, किरण मजूमदार, सानिया मिर्जा, अंजली भागवत, मिताली राज, झूलन गोस्वामी, अंजू बॉबी जॉर्ज, ममता खरब, रेणु खाटोर इत्यादि बहुचर्चित नाम हैं जिन्होंने बैंकिंग, खेल, शिक्षा स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनाई है। नि:सन्देह महिला सशक्तीकरण की अवधारणा महिला उद्यमिता विकास की अवधारणा के रूप में चरितार्थ होती दिखाई दे रही है।

महिला सशक्तीकरण : स्वास्थ्य व गुणात्मक जीवन – शाब्दिक रुप में महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य महिलाओं का शक्ति सम्पन्न व साधन सम्पन्न होना है। शक्ति व साधन दोनों का ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन की कुशलता व गुणात्मकता से है। महिलाओं के जीवन की गुणात्मकता का सम्बन्ध उनके स्वास्थ्य से है। शारीरिक, मानसिक,

ISSN 2277-5587

सामाजिक व आध्यात्मिक रुप से पूर्ण स्वस्थता व कुशलता ही श्रेष्ठ स्वास्थ्य का प्रतीक है अर्थात् शारीरिक बीमारियों का अभाव, स्वस्थ शरीर क्रिया प्रणाली, गहरी नींद, अनावश्यक थकान व आलस्य का न होना, स्वयं को तनाव से दूर रखना, अपनी योग्यता व बुद्धिमता का पूर्ण उपयोग, नैतिक व चारित्रिक दृढ़ता, विस्तृत सोच, त्याग, बलिदान, दूसरों की भलाई, स्वयं की शान्ति व सन्तोष इत्यादि। महिला सशक्तीकरण की अवधारणा को यदि इस समग्र दृष्टिकोण से देखा जाए तो ज्ञात होता है कि महिलाओं को अपनी शारीरिक व मानसिक वस्तुस्थिति का स्पष्ट ज्ञान तक नहीं है। सरकारी व गैर सरकारी स्तरों पर कितनी ही परिवार कल्याण व परिवार नियोजन की योजनाऐं सक्रिय हैं परन्तु उनका लाभ गिनी-चुनी महिलाओं को ही मिलता है। महिलाओं का वह वर्ग जो साधन विहिन है, अनपढ़ व लक्ष्यहीन है, अपने अस्तित्व का भी जिन्हें बोध नहीं है, वे उदासीन हैं, अपने जीवन स्तर व संघर्ष को अपना भाग्य समझकर चुप हैं। महिलाओं का वह वर्ग जो जागरुक है उनमें से कुछ महिलाऐं परिवार की सुख शान्ति के लिए, अनेक चुनौतियों का सामना करने से बचने के लिए अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं को दमित कर देती हैं। आर्थिक रुप से आत्मनिर्भर बनने का प्रयास नहीं करती हैं। वे महिलाऐं जो शिक्षित हैं, जागरुक हैं, आर्थिक रुप से शक्ति व साधन सम्पन्न हैं, वे भी पुरुषों की तुलना में अपने शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य व जीवन कुशलता के सम्बन्ध में पीछे है। बदलते दौर में महिला व पुरुष के मध्य अहं के टकराव, सत्ता व शक्ति के नए मायनों ने महिलाओं के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला है। घरेलू हिंसा, पूर्व वैवाहिक, अतिरिक्त वैवाहिक व समलैंगिक सम्बन्धों ने महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डाला है। पारिवारिक व सामाजिक परिदृश्य में मनुष्य की शान्ति व सुख का स्थान गम्भीर समस्याओं ने ले लिया है। सफलता व सुख के नए मापदण्ड खोजे जा रहे हैं। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व आध्यात्मिक रुप से स्वस्थ रहना सभी के लिए एक चुनौती है। अत: इस सन्दर्भ में महिला सशक्तीकरण की अवधारणा को एक नए रुप में देखना होगा।

महिला सशक्तीकरण व मीडिया – महिला सशक्तीकरण की दिशा में मीडिया एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इसका अधिक से अधिक उपयोग किया जाना चाहिए। मीडिया के माध्यम से इस दिशा में सशक्त जनमानस तैयार किया जा सकता है। महिलाओं में अपने अधिकारों तथा उपलब्ध सुविधाओं, कानूनों व कार्यक्रमों के प्रति जागरुकता व रुचि पैदा की जा सकती है। पिछले दो दशकों में समाचार पत्रों और महिला समूहों के बीच एक रिश्ता बन गया है। समाचार पत्रों में आई खबरों के आधार पर महिलाओं द्वारा आन्दोलन चलाए जाते हैं तथा अनेक बार संवाददाता भी महिला संगठनों से नवीन जानकारी प्राप्त करके पहल करते हैं। कभी आन्दोलनों को सक्रिय बनाने में पत्रकारों का विशेष योगदान होता है तो कभी परस्पर संवाद से दोनों ही पक्षों को लाभ प्राप्त होता है। अस्सी के दशक के आरम्भ से ही महिलाओं से जुड़ी घटनाओं जैसे दहेज मृत्यु, बलात्कार, यौन शोषण इत्यादि घटनाओं को लेकर समाचारपत्रों में अनेक खबरें प्रकाशित हुई। परिणामस्वरूप जनमत बना, महिलाऐं सक्रिय व जागरुक हुई। वस्तुत: जो भी समूह समाज के हाशिए पर है जैसे – दलित और महिलाऐं। उनके विचारों, नज़रिए और प्रयासों को समाचार पत्रों में पर्याप्त स्थान दिया जाना आवश्यक है तभी समाज का नज़रिया बदलता है और उनका सशक्तीकरण हो पाता है। यह विचार करना भी आवश्यक है कि अखबारों में महिलाओं की सशक्त छवि कैसे प्रस्तुत की जाए? उसमें महिला संगठनों, आन्दोलनों, सरकार व आम जनता की क्या भूमिका हो? समाचार पत्र महिलाओं से जुड़ी घटनाओं को चटपटी, मसालेदार घटना के रूप में प्रस्तुत करने की बजाय संवेदनशीलता से प्रस्तुत करें। एक आम नागरिक व इंसान की तरह उनकी खबरों को प्रस्तुत किया जाए। सामान्यतया यह देखा जाता है कि महिलाओं की स्थिति को दर्शाने वाली महत्त्वपूर्ण खबरों को मुख्य अखबार में स्थान न देकर परिशिष्टों में छापा जाता है। पूर्वाग्रहपूर्ण अभिव्यक्ति, छिछले मज़ाक और अश्लील विज्ञापनों का समावेश बहुतायत से किया जाता है। महिलाओं से सम्बन्धित कुछ सशक्त विषयों के चयन मात्र से ही महिलाओं के सशक्तीकरण का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता है। इस बात का भी सचेत प्रयास करना पड़ेगा कि वह किस लहजे में लिखा गया है, किस दृष्टिकोण व विचार को समाज में स्थापित करता है। सही दृष्टि के अभाव में गम्भीर महिलावादी विषय को भी यथास्थितिवादी ढाँचें में डालकर लिखा जा सकता है। मीडिया व संचार साधनों को महिला सशक्तीकरण की दिशा में सकारात्मक व व्यावहारिक कदम उठाना चाहिए।

महिला सशक्तीकरण : गैर सरकारी संगठनों और महिला आन्दोलनों की भूमिका – महिला सशक्तीकरण के लिए विभिन्न स्वंयसेवी संगठनों की अहम भूमिका रही है। निष्ठावान गैर सरकारी संगठन इसमें प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। इन संगठनों के द्वारा महिला आन्दोलनों को सहयोग दिया जाता है ये महिला मुद्दों को संवेदनशील तरीके से उठाते हैं, मीडिया व अन्य जन सम्पर्क के माध्यमों द्वारा जनता के समक्ष लाते हैं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक महिला सशक्तीकरण में इनकी अहम भूमिका होती है। भारतीय सन्दर्भ में महिला आन्दोलन का लक्ष्य एक ओर वैधानिक व संवैधानिक प्रावधानों तथा सामाजिक व आर्थिक यथार्थ के बीच के अन्तराल को पाटना है तथा दूसरी ओर शिक्षा के प्रसार के साथ मध्यमवर्गीय महिलाओं में बढ़ती चेतना व महत्त्वाकांक्षाओं के साथ सामाजिक व राजनीतिक संरचनाओं में समुचित परिवर्तन लाना है ताकि महिलाओं को परिवार व समाज में व्यक्ति के रूप में स्थापित किया जा सके तथा उसके अधिकारों व न्याय-अन्याय की बात की जा सके। यह लक्ष्य स्वयं में अत्यधिक व्यापक तथा रचनात्मक है जिसकी प्राप्ति के लिए सभी महिला संगठनों को अपनी राजनीतिक,

धार्मिक व सामुदायिक निष्ठाओं से ऊपर उठ कर सक्रिय प्रयास करना चाहिए। विभिन्न अवसरों पर महिला आन्दोलन का यह समग्र स्वरूप परिलक्षित होता है। जब तक सामाजिक, आर्थिक सन्दर्भ में महिलाओं को दमन अन्याय व असमानता का सामना करना पड़ रहा है तक तक भारत में महिला आन्दोलन को व्यापक व संगठित बनाना अनिवार्य आवश्यकता है।

महिला सशक्तीकरण : संवैधानिक प्रावधान । महिलाओं को राजनीतिक क्षेत्र में उचित भागीदारी देने के उद्देश्य से भारतीय संविधान में विविध प्रावधान किए गए हैं। इन पर अमल करने के उद्देश्य से ही 73वें संशोधन द्वारा पंचायतों में उन्हें आरक्षण दिया गया। इतिहास में पहला समय था जब स्थानीय स्वशासित संस्थाओं में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किए गए। संविधान संशोधन के पश्चात् भारत के पारम्परिक पुरूष प्रधान समाज में अब निर्णय की प्रक्रिया में महिलाओं की भी भागीदारी होने लगी है लेकिन समाज की मानसिकता के सन्दर्भ में अभी भी इस रास्ते में महिलाओं के सामने अनेकानेक कठिनाइयाँ हैं। हमारा सामाजिक ढाँचा और हमारे समाज की मानसिकता समूचे देश में एक समान नहीं है परन्तु महिलाओं के प्रति सोच व पितृसत्तात्मक सोच लगभग सभी जगह समान है। इसलिए महिलाओं को यह अवसर तो दिया गया है परन्तु इसका प्रभावी उपयोग तभी हो सकता है जबकि वे निर्णय प्रक्रिया में सही रूप से भागीदार बने, संविधान की व्यवस्था या कानून बनाने से ही परिवर्तन नहीं हो सकता है। वस्तुत: संविधान संशोधन का उद्देश्य महिलाओं को घर से बाहर सार्वजनिक जीवन में लाना था और आरक्षण के बिना यह सम्भव नहीं था, शिक्षा व प्रशिक्षण के द्वारा ही इसे सम्भव बनाया जा सकता है, क्योंकि राजनैतिक अनुभव तो समय के साथ ही आयेगा। आरक्षण से वे घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर अपनी शक्ति को सामाजिक विकास के कार्यों में लगा सकेंगीं तथा भभ्राजनैतिक कार्यकलापों में सहयोग कर सकेंगीं। यह स्पष्ट है कि सार्वजनिक क्षेत्रों को स्त्री बहुल बनाने का आशय केवल उनकी संख्यात्मक उपस्थिति से ही नहीं है बल्कि किसी सीमा तक महिलाओं को समाविष्ट कर उनमें दृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना भी आवश्यक है। महिलाओं का तथाकथित सशक्तीकरण राज्य द्वारा ऊपर से नहीं थोपा जा सकता है। पंचायत की महिला प्रतिनिधियों को अपनी सुरक्षा से सम्बद्ध, समान नागरिकता, पारदर्शिता और जवाबदेही के योग्य बनाने के लिए प्रशिक्षण की जरूरत है। वस्तुत: सरकार द्वारा भी जो कार्यक्रम सम्पन्न किए जाते हैं वे प्रधानतया औपचारिक रूप में होते हैं तथा सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय, अधिकारविहिन लोगों के प्रजातान्त्रिक गठबन्धन की दृष्टि से पूर्णतया अपूर्ण होते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं को शक्तिमयी बनाने के लिए वास्तविक अधिकार एवं आर्थिक साधन उपलब्ध कराने होंगे।

अनेक कमियों के बावजूद पंचायतों व नगरीय संस्थाओं में आरक्षण से प्रेरित होकर महिला संगठनों ने संसद एवं विधानसभाओं में आरक्षण को प्रमुख राजनीतिक मुद्दा बनाने में सफलता हासिल की है। लम्बित पंचायती राज स्तर पर महिलाओं का बढ़ा हुआ प्रतिनिधित्व सिर्फ उन्हें समान नागरिक के तौर पर स्वीकार करने के लिए ही नहीं, बल्कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में स्त्रीपरक दृष्टिकोण को सम्मिलित करने हेतु किया गया है। राजनीतिक नेतृत्व महिलाओं के विकास से सीधे रुप से जुड़ा हुआ है। इसलिए आवश्यकता है कि राजनीतिक व्यवस्था महिलाओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील और जवाबदेही हो। महिला नेतृत्व के प्रोत्साहन से न केवल लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को तीव्रता प्राप्त होगी बल्कि लैंगिक समानता और लैंगिक न्याय के प्रति प्रतिबद्ध समाज का निर्माण भी होगा। ऐसे समतावादी समाज में महिला सशक्तीकरण का लक्ष्य पूर्ण होगा।

महिला सशक्तीकरण : सरकारी योजनाऐं व कार्यक्रम - महिलाओं में सामाजिक चेतना व जागरुकता लाने हेतु सरकार द्वारा अनेक विधिक प्रावधान, योजनाऐं व कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

संसद के द्वारा समय-समय पर नीति निर्देशक सिद्धान्तों 38, 39, 42, 43 इत्यादि के व्यावहारिक क्रियान्वयन हेतु अनेक विधियाँ, नियम व कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं जैसे :-

- मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 के माध्यम से महिलाओं को सवैतनिक मातृत्व अवकाश व भत्तों की व्यवस्था की गई है।
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1968 व कारखाना अधिनियम 1968 कार्यस्थल पर महिलाओं को संरक्षण प्रदान करता है।
- समान वेतन अधिनियम 1976 में महिला व पुरुष कर्मियों को समान वेतन देने, लिंग के आधार पर किसी प्रकार का भेदभाव न करने का प्रावधान किया गया था। 1987 में कानून में संशोधन के द्वारा कानून का उल्लंघन करने पर दोषी के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई है।
- 1982-83 में प्रारम्भ ड्वाकरा योजना का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना है। इस योजना के तहत चयनित महिलाओं के प्रशिक्षण के दौरान 200/- से 500/- रुपये प्रतिमाह की छात्रवृत्ति तथा व्यवसाय प्रारम्भ करने हेतु प्रत्येक महिला समूह को 25000/- रुपये बैंक से ऋण दिलाया जाता है। इस योजना में अनुसूचित जाति व जनजाति की महिलाओं के लिए 60 प्रतिशत स्थान आरक्षित है।
- महिला विकास निगम स्थापित करने की योजना 1986-87 में बनी, जिसका उद्देश्य महिला उद्यमियों का पता लगाने, तकनीकी परामर्श सेवाऐं उपलब्ध कराने में सहायता प्रदान करने, उत्पादों के विपणन की सुविधाऐं बढ़ाने, महिला सहकारी समितियों की शुरूआत करने और इन्हें सुदृढ़ करने, तकनीकी सुविधाऐं जुटाने जैसे कार्यों में तेजी लाने की है। राष्ट्रीय विकास परिषद के निर्णय के अनुसार 1992-93 में यह

ISSN 2277-5587

योजना राज्य क्षेत्र को हस्तान्तरित कर दी गई है।

- महिलाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देने के लिए साढ़े चार सौ से अधिक प्रशिक्षण संस्थान है जिसमें 30,000 से अधिक महिलाऐं प्रशिक्षण ले सकती हैं।

- 1987 से शुरु किए गए इस कार्यक्रम का उद्देश्य गरीब व सम्पत्ति विहिन महिलाओं में कौशल का विकास करना, उन्हे संगठित कर विवेकशील बनाना और कृषि डेयरी, मछली पालन, रेशम हाथ करघा हस्तशिल्प आदि क्षेत्र में रोजगार उपलब्ध कराना है। प्रशिक्षण एवं रोजगार सहायता के अतिरिक्त इसके तीन और अवयव लिंग, संवेदनशीलता, विकासात्मक निवेश में महिलाओं और सहायक सेवाओं का प्रावधान है।

- कमजोर तबके की महिलाओं को रोजगार मूलक प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से नोराग प्रशिक्षण योजना का प्रारम्भ 1989 में किया गया। इसके अन्तर्गत परियोजना संचालन के लिए संस्थाओं को सीधे अनुदान स्वीकृत किए जाते हैं। योजनानुसार संस्था को 8,000 प्रति हितग्रामी के मान से 50 महिलाओं हेतु अधिकतम 4 लाख रुपये का अनुदान दिया जाता है।

- महिला स्वयं सिद्ध योजना महिलाओं के स्वयं समूहों के गठन के माध्यम से संचालित की जाने वाली योजना है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य स्वरोजगार के माध्यम से स्वावलम्बन प्रदान कर महिलाओं का सामाजिक आर्थिक सशक्तीकरण करना है।

- 1993 में राष्ट्रीय महिला कोष की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य महिलाओं को ऋण प्रदान करना है। कोई महिला जिसके परिवार की वार्षिक आमदनी 71,000 प्रतिवर्ष ग्रामीण क्षेत्र में तथा 11,800 प्रतिवर्ष शहरी क्षेत्र में है, आठ प्रतिशत वार्षिक ब्याज दर पर अपनी आर्थिक गतिविधियाँ जारी रखने हेतु ऋण ले सकती है।

- वर्ष 2001 में प्रारम्भ योजना के अन्तर्गत निराश्रित परित्यक्ता विधवा तथा प्रवासी महिलाओं को वरीयता दिए जाने की बात कही गई है। यह योजना केन्द्र व राज्य सरकारों के सम्मिलित संसाधनों से त्रिस्तरीय पंचायतों के माध्यम से चलाई जा रही है।

- चिन्हित किशोरियों को पोषाहार देने के साथ-साथ स्वास्थ्य शिक्षा तथा व्यावसायिक कुशलता हेतु प्रशिक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से किशोरी शक्ति योजना चलाई जा रही है। यह योजना दो भागों 'गर्ल टू गर्ल एप्रोच' तथा 'बालिका मण्डल योजना' में बाँटकर चलाई जा रही है। पहली योजना 11-15 आयुवर्ग की किशोरियों तथा दूसरी योजना 15-18 आयुवर्ग की किशोरियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने से सम्बन्धित है।

- 15 अगस्त 2001 को महिला उद्यमियों हेतु प्रधानमंत्री द्वारा घोषित ऋण योजना का उद्देश्य महिला उद्यमियों को 2004 तक सार्वजनिक बैंकों द्वारा कुल ऋण राशि का 5 प्रतिशत भाग ऋण के रुप में उपलब्ध कराना था।

अत: स्पष्ट है कि सरकार के द्वारा संचालित विविध कार्यक्रमों व योजनाओं के माध्यम से समाज में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक, संवैधानिक व स्वास्थ्य सम्बन्धी स्थिति में सुधार हेतु अनेक प्रयास किए जा रहे हैं जिनसे निश्चित ही महिला सशक्तीकरण की अवधारणा बलवती होगी। बहुआयामी परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की स्थिति में किए गए सुधार निश्चित रुप से सराहनीय है परन्तु यह एक सतत् प्रक्रिया है वस्तुत: महिला संगठनों, सरकारी व गैर सरकारी संगठनों, आर्थिक संगठनों, मीडिया व विविध संस्थाओं द्वारा इस दिशा में निरन्तर प्रयास अपेक्षित है तभी लोकतान्त्रिक व समतावादी समाज में महिला सशक्तीकरण का लक्ष्य पूर्ण होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 शैलेन्द्र मौर्य : महिला राजनीतिक नेतृत्व एवं महिला विकास पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2011 पृ.1

2 शालिनी चतुर्वेदी : मानवाधिकार व महिला उत्पीड़न (संपा. धर्मवीर चन्देल), मानवाधिकार संघर्ष व चुनौतियाँ, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर 2013 पृ.100

3 शीला मिश्रा : महिलाओं की राजनीतिक क्रियाशीलता एवं विविध राजनीतिक दल, उप्पल पब्लिशिंग हाउस, न्यू देहली, पृ. 267

4 शालिनी चतुर्वेदी : भारत में सामाजिक विधायन (संपा जनक सिंह मीना) भारत में सामाजिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी 2014, पृ. 38-78

5 सुरेश ओझा : महिला कानून, सर्जना बीकानेर, 2012 पृ. 72

6 आशा कौशिक : महिला सशक्तिकरण, विमर्श व यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर, 2004 पृ. 21

7 शालिनी चतुर्वेदी : भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति व मूल्यांकन (संपा. धर्मवीर चन्देल), मानवाधिकार और महिला विमर्श, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर 2014 पृ.22

8 सुधारानी श्रीवास्तव : भारत में महिलाओं की वैधानिक स्थिति पृ. 18-19

9 इनाक्षी चतुर्वेदी एवं : महिला नेतृत्व एवं राजनीतिक सहभागिता, सीमा अग्रवाल जयपुर 2004 पृ. 21

10 डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव : नई सहस्त्राब्दी का महिला सशक्तिकरण अवधारणा चिन्तन व सरोकार (3 भागों में), ओमेगा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, दिल्ली पृ. 121-

पूर्वी राजस्थान की कृषि व्यवस्था के सन्दर्भ में 18-19वीं शताब्दी के साहित्यिक स्रोतों का अध्ययन

डॉ. कैलाश चन्द गुर्जर
पोस्ट डॉक्टरल फैलो
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

पूर्वी राजस्थान की अर्थव्यवस्था एवं कृषि व्यवस्था का अध्ययन कुछ इतिहासकारों द्वारा किया गया है जिनके मौलिक साक्ष्य राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर एवं जयपुर शाखा में सुरक्षित हैं। ये दस्तावेज बड़ी संख्या में 18-19वीं शताब्दी की कृषि संरचना, कर-व्यवस्था, व्यापार-वाणिज्य आदि को उजागर करने में भी सहायक है।

इस शोध पत्र में उक्त साक्ष्यों और दस्तावेजों में उपलब्ध साक्ष्यों की व्याख्या एवं तत्कालीन व्यवस्था के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने का एक प्रयास किया गया है।

पूर्वी राजस्थान में भूमि बन्दोबस्त से पूर्व उपलब्ध साक्ष्यों में दस्तूर उल अमल वा अमल दस्तूर, अड़सट्टा मुजमिल, अड़सट्टा भूमि, जमाबन्दी, याददाश्ती, मुआजना, खसरा, तकसीम, तखमिना, निखर बाजार, अरजदाश्त, आम्बेर रिकार्ड्स, चिट्ठियाँ आदि उल्लेखनीय है। बन्दोबस्त के पश्चात् विभिन्न राज्यों एवं तहसीलों की वार्षिक बन्दोबस्त रिपोर्टस्, असेसमेण्ट रिपोर्टस् व प्रशासनिक रिपोर्टस् प्रमुख है।

दस्तूर उल अमल को 'दस्तूर' भी कहा जाता था। दस्तूर उल अमल करों की एक सूची थी। अमल दस्तूर में स्थानीय व्यापार एवं वाणिज्य के लिए वसूल किए गये विभिन्न करों एवं उपकरों के नियम-कायदे उपलब्ध होते हैं। ये राज्य द्वारा समय-समय पर तैयार कराये जाते थे। पुराने दस्तूर उल अमल में स्थानीय व्यापार वाणिज्य के समस्त नियम-कायदे नहीं होते थे। अत: दोनों को मिलाकर दस्तूर-उल-अमल वर अमल दस्तूर कहा जाने लगा।

वास्तव में दस्तूर-उल-अमल वा अमल दस्तूर में सारे कानून-कायदे एक साथ सम्मिलित होते थे जो राजस्व दरों की सूची उपलब्ध कराते हैं। ये स्थानीय अधिकारियों द्वारा तैयार किये जाते थे। इन्हें मुगल दरबार अमान्य भी कर सकता था। उदाहरण के लिए जब मेड़ता परगना के किसानों ने करों की अधिकता के खिलाफ मुगल दरबार में प्रार्थना की तो जोधपुर महाराजा को करों में कटौती करनी पड़ी।[1]

माल (भू-राजस्व) तथा जिहात (अन्य फुटकर) की विभिन्न दरों की सूची अड़सट्टों में दिए गए पैटर्न के अनुसार जब्ती एवं जिंसी के अन्तर्गत दी गई है।[2]

विभिन्न दस्तूर उल-अमल के अनुसार जब्ती पद्धति के अन्तर्गत फसलों का प्रति बीघा नकद में निर्धारण कई वर्षो के लिए होता था। बटाई जिंसी में राज्य का हिस्सा व रैय्यत का हिस्सा उल्लेखित होता था तथा ब्राह्मण, महाजन आदि कृषकों के रियायती दर से निर्धारित हिस्सा भी उल्लेख किया जाता था। अमल दस्तूर दस्तावेजों में व्यापार व वाणिज्य से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री संग्रहित थी।[3] अमल दस्तूर राहदारी एवं अमल दस्तूर चबूतरा कोतवाली दस्तावेजों के अध्ययन से जानकारी मिलती है कि अधिकांश कृषक खुले बाजार में पहुँचने की स्थिति में नहीं थे और अपना माल स्थानीय व्यापारी को ही बेचते थे। मार्ग व बाजार में कृषक को कई प्रकार के खुदरा कर वस्तुओं पर चुकाने पड़ते थे।

 ISSN 2277-5587

स्थानीय व्यापारियों पर अनेक कर लगाये जाते थे। ऐसे व्यक्ति माल को जहाँ से खरीदते थे वहीं या पड़ोसी गांव में बेच देते थे। आस-पास के गांवों से माल खरीदकर बेचने वाले छोटे व्यापारियों (बिछायती)[4] पर भी कर लगाये जाते थे। तम्बाकू व्यापार करने वाले स्थानीय व्यापारियों के मूल्य के हिसाब से प्रति रुपया एक टका की दर से राहदारी देनी होती थी तथा बिछायती को प्रति रुपया दो टका देना पड़ता था।

इन दस्तावेजों में दलालों का जिक्र नहीं किया गया है। महाजन, बोहरा व साहूकार सूद पर धन उपलब्ध कराते थे। इनका स्थानीय व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान था। अमल दस्तूर भोमि में भोम भूमि पर लगाये जाने वाले करों का विस्तृत ब्यौरा मिलता है।[5] इनमें संकलित सूचनाएं अड़सट्टों में उपलब्ध आंकड़ो के समान ही थी जिनका अध्ययन एक पृथक शोध पत्र में मिलता है।[6]

अड़सट्टा दस्तावेजों में विभिन्न परगनों के आय-व्यय की जानकारी मिलती है। अड़सट्टा मुजमिल दस्तावेज में विभिन्न परगनों के भू-राजस्व की प्रकृति एवं भार तथा ग्रामीण क्षेत्रों के विभिन्न करों की सूचनाएं संग्रहित हैं। दीवान के कार्यालय से राजस्व संबंधी सूचनाएँ अड़सट्टों के माध्यम से ही प्राप्त होती है।

अड़सट्टा परगनों के हिसाब से बनाये जाते थे जिनमें विभिन्न करों की प्राप्ति एवं करों के बही खाते होते थे। इनके अलावा खालसा के अन्तर्गत घोषित भूमि की जानकारी, ग्रामानुदान, विविध कर एवं उनकी दरों के बारे में सूचनाएँ मिलती हैं। जागीर व पुण्योदिक गाँवों के संबंध में केवल ग्राम के तान का (सम्भावित आय) उससे संबंधित धारक के नाम के सामने उल्लेख मिलता है। इजारा में स्वीकृत गाँवों के संबंध में केवल संविदा राशि का उल्लेख मिलता है।

अड़सट्टा दस्तावेजों में परगने की मुकर्रर जमा (निश्चिम राजस्व मांग) को हलसाल (चालू वर्ष में निश्चित निर्धारित राजस्व) और बकाया (पूर्व के वर्षो का बकाया लगान) में विभाजित किया गया था।[7] हलसाल को भी दो भागों में हसबुल मुफासल और हसबुल वसुल में बाँटा गया है।[8] हसबुल मुफासल को भी मुवाफिक जमाबंदी एवं सिवाई जमाबंदी में विभक्त किया गया।[9]

अड़सट्टा भोमि में विभिन्न मुखियाओं के अधीन जमींदारी क्षेत्र के करों की सूची दी गई है। दुर्भाग्य से सभी परगनों के तिथिवार क्रम से अड़सट्टे उपलब्ध नहीं हैं फिर भी ये राजस्व के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण सामग्री के रुप में उपलब्ध है तथा प्रयोग में लिये जाते हैं।

जमाबंदी कागजात चौधरी व कानूनगो की सहायता से तैयार किये जाते थे। विभिन्न परगनों के प्रत्येक गाँव से माल पर कितना कर लिया जाता था अर्थात् बटाई के अन्तर्गत कितना भू-राजस्व वसूल किया जाता था ? जिहात करों का विस्तृत विवरण आदि की जानकारी उक्त दस्तावेजों से होती है।

जमाबंदी कागजातों में विभिन्न करों का उल्लेख सिवाई जमाबंदी तथा मुवाफिक जमाबंदी के रुप में अलग-अलग होता था। मुवाफिक जमाबंदी में अध्ययन काल के भू-राजस्व की जानकारी प्राप्त होती है जो भिन्न-भिन्न दरों पर निर्धारित होती थी तथ भू राजस्व के अलावा अन्य उपकरों के बारे में सिवाई जमाबंदी जानकारी प्रदान करती थी। सिवाई जमाबंदी में नियमित करों के साथ-साथ अन्य उपकरों का भी उल्लेख मिलता है। अनेक पुरस्कार एवं सामान्य अकृषि करों का विवरण भी मिलता है। जमाबंदी में रबी व खरीफ फसलों का उल्लेख मिलता है। इसमें कुल उत्पादन, राज्य व कृषक के हिस्से तथा भू-राजस्व का भुगतान (नकद या जिंस में) आदि का विवरण मिलता है।

तकसीम माल गुजारी एव पैमाइश का एक ऐसा दस्तावेज है जो हमें मुवाफिक जमाबंदी में शामिल रबी व खरीफ की फसलों से प्राप्त भू-राजस्व (हासिल) एवं सिवाई जमाबंदी श्रेणी में लागू उपकरों की जानकारी प्रदान करता है।[10]

इन दस्तावेजों में परगने की उसमें सम्मिलित समस्त गांवों सहित भू राजस्व की संक्षिप्त जानकारी, विभिन्न दिशाओं एवं दूरी (कोस में) को दर्शाते हुए गांव की बसावट एवं स्थिति, स्वरूप (असल या दाखिली), क्षेत्रफल , अकृषि योग्य क्षेत्रफल, पहाड़, नाला-तालाब, कुएं, नदियां, बाग-बगीचे, पेड़-पौधे, जंगल आदि का विवरण प्राप्त होता है।[11]

नैणसी की परगना की विगत में संकलित पश्चिमी राजस्थान की तकसीमें जो सूचनाएं प्रस्तुत करती है वे ही पूर्वी राजस्थान में प्रयुक्त होती थी।[12] तकसीम कागजातों में 10 वर्ष तथा 15 वर्ष के लिए सूचनाएं संकलित होती थी। अत: ये तकसीम दहसाला और तकसीम पन्द्रह साला के नाम से भी जानी जाती थी।

मुवाजना दहसाला नामक दस्तावेजों में भी तकसीम के समान ही सूचनाएं प्राप्त होती हैं परन्तु कुल मुवाजना दहसाला दस्तावेजों में हमें जागीर के धारकों का निर्धारण दामों (जमा) में मिलता है। मुवाजना अन्य साक्ष्यों जैसे अड़सट्टा, अवरिजाह, जमाबंदी, खसरा, दस्तूर उल अमल, चिट्ठियों से प्राप्त जानकारी का संग्रह है, जो 19 वीं सदी के आरंभिक समय की सूचना प्रदान करता है।

बहुत से मुवाजना दहसाला दस्तावेजों में संख्याएं रुपयों में अंकित हैं अर्थात इन्द्राज रुपयों में किया गया है। वे वास्तविक जमा (हासिल) को दर्शाते हैं, जमा को नहीं। इनमें हासिल शब्द का प्रयोग भी किया गया है। यह पद्धति पारसी दस्तावेजों से भी प्रकट होती है।[13] इन दस्तावेजों में जमाबंदी आंकड़ों का उल्लेख भी मिलता है।

तखमीना कागजात में एक परगने के गाँवों के भू-राजस्व का फसलों के उत्पादन के विस्तृत विवरण के साथ उल्लेख मिलता है। इसमें प्रति बीघा भू-राजस्व जिंस के रुप में होती थी तथा फसलों के उत्पादन की मात्रा की जानकारी भी मिलती है। खसरा कागजात के गांव के पटवारी व पटेल द्वारा तैयार किये जाते थे। इनमें आसामी के नाम, प्रत्येक फसल का कुल उत्पादन, उत्पादन में राज्य का हिस्सा आदि

का विवरण दिया हुआ होता है।[14] प्रत्येक फसल पर राज्य का हिस्सा नकद व जिंस में से किसी भी रुप में लिया जा सकता था। वर्तमान में भी पटवारी इन दस्तावेजों का रख-रखाव रखता है तथा अपने हल्के की समस्त भूमि के उत्पादन आदि का उनमें इन्द्राज करता है।

याददाश्ती गाँव के पैतृक अधिकारी पटेल व पटवारी तथा राज्य के अधिकारियों द्वारा तैयार की जाती थी। किसी परगना या गाँव विशेष में किस वर्ष कृषि की क्या स्थिति होती थी, किसान के पास कितने हल और बैल होते थे, इनकी जानकारी याददाश्ती के माध्यम से प्राप्त होती थी। जमा वासिल याददाश्ती परगना के बकाया की जानकारी देती थी। कभी-कभी राजा द्वारा जागीरदार को जागीर अनुदान करते समय याददाश्ती एक पट्टा के समान प्रयोग में ली जाती थी। इसमें अनुदानित जागीर तथा जागीरदार के घोड़ों की संख्या आदि का उल्लेख होता था।

चिट्ठियाँ (पत्र) जयपुर राज्य के दीवार द्वारा परगने के पदाधिकारियों आमिल, अमीन व फौजदार को लिखी जाती थी। जागीरदारी और जमींदारी व्यवस्था के लिए प्राथमिक साक्ष्यों के लिए महत्वपूर्ण है। इनमें परगना के प्रशासन, ग्राम प्रशासन व ग्रामीण समाज की संरचना तथा कार्य प्रणाली, ग्राम व परगना स्तर पर कृषि व्यवस्था, ग्रामीण वाद-विवाद, पंचायतों द्वारा विवादों को सुलझाना व्यापार-वाणिज्य का संगठन एवं कार्य विधि, व्यापारी वर्ग की भूमिका तथा ग्राम व शहर के पारस्परिक सम्पर्क आदि उपयोगी सूचनाएं चिट्ठियों द्वारा प्राप्त की जाती है। अधिकांश चिट्ठियाँ 1730 से 1800 ई. के बीच की मिलती है।

आम्बेर रिकॉर्ड्स में विभिन्न पत्रों का संकलन (संग्रह) होता था जैसे जयपुर राज्य में परगने जो उच्च अधिकारियों से अधीनस्थ को लिखे जाते थे। इन रिकॉर्ड्स से तत्कालीन समय की प्रशासनिक व्यवस्था की जानकारी भी मिलती थी।

अरजदाश्त कागजात जयपुर राज्य के आमिल, अमीन व फौजदार द्वारा तैयार किये जाते थे निरख बाजार कस्बा के व्यापार संघ के जुड़े पंच महाजनों द्वारा लिखे जाते थे। इनमें कस्बा के रोज के बाजार भावों का उल्लेख मिलता है। इसमें नित्य प्रयोग एवं समस्त उपयोगी सामग्री की दरों की प्रविष्टि होती थी। समस्त कृषि तथा अकृषि सभी प्रकार के उत्पादों के भावों का लेखा-जोखा होता था।

विभिन्न ठिकानों के रिकॉर्ड्स भी मिलते हैं जिनमें जमींदारी और इजारेदारी व्यवस्था के विकास एवं कार्य प्रणाली की महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। इनके माध्यम से ठिकानों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का पता चलता है। अधिकांश ठिकानों का लेखा जोखा शोध के लिए उपलब्ध नहीं हो सका लेकिन कुछ ठिकानों जैसे डिग्गी, बरवाड़ा व धूला ठिकानों के रिकॉर्ड अध्ययन किये गये हैं।

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अंग्रेजों द्वारा तैयार कराई गई विभिन्न रिपोर्ट्स भी भू-राजस्व व्यवस्था के अध्ययन में मूल सामग्री के रुप में निम्नांकित रिपोर्ट्स प्रयोग में ली गई हैं :

- फाइनल रिपोर्ट ऑन दी भरतपुर स्टेट सेटलमेण्ट (1900-1901 ई.)। यह रिपोर्ट्स एम.एफ. ओ डॉयर द्वारा तैयार की गई जिसमें भूमि बन्दोबस्त, कृषि व्यवस्था तथा कृषक जातियों आदि का वर्णन किया गया था।
- असेसमेंट रिपोर्ट ऑफ दी भरतपुर तहसील, भरतपुर सर्किल, भरतपुर स्टेट- यह बी.एल. बन्ना द्वारा तैयार की गई थी। इसमें संबंधित क्षेत्र की फसलों, सिंचाई, भूमि का स्वरुप, जनसंख्या आदि की जानकारी दी गई थी।
- अनेक वर्षो के एडमिनिस्ट्रेटिव रिपोर्ट् ऑफ भरतपुर स्टेट, अलवर स्टेट।
- फाइनल रिपोर्ट ऑन दी अलवर स्टेट सेटलमेंट। यह एम.एफ.ओ. डॉयर द्वारा तैयार की गई।
- असेसमेण्ट रिपोर्ट फोर तहसील अलवर, बानसुर एण्ड थानागाजी (1899-1900 ई.) स्टेट अलवर। यह भी एम.ओ. डॉयर द्वारा तैयार की गई जो सेटलमेण्ट कमिश्नर था।
- असेसमेण्ट रिपोर्ट ऑफ तहसील किशनगढ़, रामगढ़, गोविन्दगढ़ एवं लक्ष्मणगढ़ (1899-98 ई.) अलवर स्टेट, एम.ओ. डॉयर ने तैयार की।
- रिपोर्ट ऑन दी ऑपरेशन ऑफ सेनसस (17 फरवरी 1881) इन जयपुर टेरिटरी, मुंशी सहाय के द्वारा तैयार की गई। इसमें जयपुर राज्य की जनसंख्या, ग्रामों व तहसील, परगनों का वर्णन, क्षेत्रफल तथा महिला व पुरुषों की अलग-अलग संख्या का वर्णन दिया हुआ था। इनके अलावा अन्य कई दस्तावेजों से भू-राजस्व की जानकारी मिलती है।
- राजस्थान राज्य अभिलेखागार जयपुर में सुरक्षित जयपुर रिकॉर्ड्स में भी भू-राजस्व व्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है। यहाँ विभिन्न फाइलें भू-राजस्व के आँकड़े उपलब्ध कराती है।

उक्त रिपोर्ट्स में उस समय किये गये बन्दोबस्त, निर्धारित राशि, उसकी वसूली तथा बकाया राशि का उल्लेख मिलता है। किन अधिकारियों द्वारा कब कहाँ बन्दोबस्त किया गया? उनकी क्या प्रशासनिक व्यवस्थाएं थी? तथा राजा एवं कृषकों के सम्बन्ध किस प्रकार के थे? कृषकों का जीवन-स्तर कैसा था? अधिकारियों द्वारा कृषकों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाता था? इन दस्तावेजों के अध्ययन से स्पष्ट होता है।

यद्यपि प्रत्येक साक्ष्य की अपनी-अपनी सीमा है। एक ही साक्ष्य के माध्यम से पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाती है। राजस्व की कई बार क्रमानुसार जानकारी भिन्न-भिन्न साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन से तैयार की जाती है। फिर भी इनमें महत्वपूर्ण अइसट्टे,

चिट्ठियाँ और सेटलमेंट रिपोर्ट्स हैं जिनके आधार पर पूर्ववर्ती इतिहासकारों ने करों, फसलों आदि के आँकड़े तैयार किए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 मुहणोत नैणसी, मारवाड़ रा परगना री विगत, सम्पादक- बद्री प्रसाद साकरिया, भाग-द्वितीय, पृ. 93

2 ख्यात, क्षेत्रीय इतिहास, कला एवं संस्कृति की शोध पत्रिका, संपादक- भंवर भादानी, पृ. 49

3 अमल दस्तूर कोतवाली चौतरा, कस्बा फागी, वि.स. 1710

4 विल्सन ने 'बिछायती' को एक छोटे व्यापारी के रूप में परिभाषित किया है कि जिनकी अपनी कोई दुकान नहीं होती थी, वे अपना माल मेले या बाजार में जमीन पर चटाई या कपड़ा बिछाकर बेचते थे। वर्तमान में भी ग्रामीण इलाकों में अधिकतर माल मेलों में बिछायतियों द्वारा ही बेचा जाता है।

5 अमल दस्तूर भोमि, कस्बा फागी, वि.स. 1741

6 उपरोक्त, परगना मलारणा व नरायणा में कुल राजस्व संग्रह में 'भोमि' का क्रमश: 1.25 से 4.25 तथा 1 से 3 प्रतिशत हिस्सा था।

7 मुकर्रर जमा कुल संभावित भू-राजस्व, हलसाल, चालू वर्ष में निश्चित संग्रहित भू-राजस्व तथा बकाया पूर्व के वर्षो का बिना चुकाया लगान होता था।

8 हसबुल मुफासल रबी व खरीफ की फसलों के अनुसार वसूल किया गया भू-राजस्व होता था तथा हसबुल वसूल चालू वर्ष में पिछला बकाया वसूली होती थी।

9 मुवाफिक जमाबंदी के तहत वास्तविक रूप से निर्धारित भू-राजस्व वसूल किया जाता था तथा सिवाई जमाबंदी मद के तहत माल-ओ जिहात व सायर जिहात के अलावा कई अन्य कर वसूल किये जाते थे।

10 एस.पी. गुप्ता एवं एच.एस.खान, मुगल डाक्यूमेन्ट्स -तकसीम, पृ. 1

11 वहीं, पृ. 2

12 मुहणोत नैणसी, मारवाड़ रा परगना री विगत, सम्पादक-बद्री प्रसाद साकरिया, भाग-द्वितीय, जोधपुर, पृ. 89-96

13 एस.पी. गुप्ता एवं एच.एस. खान, मुगल डॉक्यूमेन्टस- तकसीम, पृ. 20

14 एस.पी. गुप्ता, अग्रेरियन सिस्टम ऑफ ईस्टर्न राजस्थान (1650-1750 ई.), पृ. 127

उत्तर प्रदेश की लोककला (लोकचित्र व लोकगीत)

अपर्णा श्रीवास्तव
शोधार्थी, डी.ई.आई., दयालबाग, आगरा (उत्तर प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

प्राचीन काल से ही लोककला भारतीय जीवन का अभिन्न अंग रही है। भारतीय लोककलाओं में लोकचित्रों व लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। लोककला की कहानी मानव जीवन की सचित्र कहानी है, जो जन्म से मृत्यु तथा सुबह से शाम तक किये जाने वाले मनुश्य के प्रत्येक कार्य, प्रत्येक उत्सव से सम्बन्धित हैं। लोककला का क्षेत्र बड़ा व्यापक है, उसके अर्न्तगत लोकचित्रकला, लोकमूर्तिकला, लोकगीत आदि सम्मिलित है। लोकचित्रकला को लोकगीत गाते समय अधिकतर स्त्रियों द्वारा ही निर्मित किया जाता हैं। लोकगीतों का जन्म भावनाओं तथा परम्पराओं पर आधारित है, क्योंकि यह जनसामान्य की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। लोकचित्र व लोकगीत कला को जीवित रखने तथा आगे बढ़ाने का श्रेय भारतीय स्त्रियों को जाता है, जो प्राचीन काल से आजतक भारतीय संस्कारों और परम्पराओं को जीवित रखकर अपनी आन्तरिक भावनाओं से सींचती तथा संवारती चली आ रही हैं तथा लोकचित्र व लोकगीत की प्राचीन परम्परा को पोषण एंव संरक्षण प्रदान करती चली आ रही हैं।

लोक कला का विकास लोकगीतों से हुआ है जिससे लोकगीतों के सहारे लोककलाओं को समझने का बहुत प्रयत्न किया जाता है, क्योंकि लोकगीतों में लोक के विश्वास, रीति रिवाज एंव परम्पराओं के बहुत स्पष्ट विवरण प्राप्त होते हैं। लोकजीवन में अगणित अवसरों पर कलाकृतियों एंव गीतों का साथ-साथ प्रयोग होता है। ऐसी अवस्था में दोनों एक दूसरे की पूरक बन जाती हैं। ऐसे बहुत ही कम उदाहरण होते हैं, जिनके साथ लोकगीत न जुड़ा हो। लोक का गीत जीवन का अपना गीत होता है। लोकगीतों में जीवन स्वंय गाता है।

उत्तर प्रदेश की लोकचित्रकला की परम्परा लोकगीतों में सुरक्षित है। भारतीय संस्कृति में प्राय: सभी अंलकरणों एंव लोकचित्रों को बनाने में कोई न कोई गीत अवश्य गाया जाता है। इन लोकगीतों में लोकचित्रों की ऐतिहासिक व शास्त्रीय पृश्ठभूमि सम्मिलित होती है। ये गीत छोटे-छोटे होते हैं। इस कोटि में संस्कार गीत, ऋतु, श्रम तथा देवी-देवताओं के गीत आते हैं। दूसरे वे गीत हैं जिनमें गेयता तो अवश्य है, परन्तु उनमें कथा का विस्तार के साथ वर्णन मिलता है। प्रथम प्रकार के गीतों को लोकगीत तथा दूसरे प्रकार के गीतों को लोकगाथा कहा जाता है। भारतीय लोकजीवन में प्राचीन काल से ही धरती के प्रति पूजा का अथाह भाव रहा है। भारत में लाकगीतों की परम्परा मौलिक होने से निरन्तर प्रगतिशील है, किन्तु आज लोककला की परम्परा भौतिक साधनों पर निर्भर रहने के कारण भिन्न माध्यम में परिवर्तित हो चुकी है। किन्तु भारत में लोकगीत-लोकचित्रकला में धर्म के दर्शन प्राप्त होते हैं। लोकगीत व्यक्ति के अन्तर्मन के विचारों से निकलकर संगीत के रुप में प्रकट होती है।

भारत की प्राचीन सभ्यता के क्रमिक विकास में आदि काल से ही मानव समाज में प्रत्येक उत्सव व पर्व पर निश्चित मुहूर्त और दिन पर, उत्सव मनाने का आयोजन किया जाता हैं। तात्पर्य यह है कि सामूहिक रुप से प्रत्येक नर-नारी एकत्र होकर एक दूसरे को आनन्दित कर उदार व उन्नत बनाने का प्रयास करते हैं। भारतीय लोककलाओं की यह विशेषता हमें धार्मिक भित्ति चित्रों में परिलक्षित होती है। लोककला की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं-

- आनुष्ठानिक प्रवृत्ति
- अलंकारिक प्रवृत्ति
- गृहउपयोगी प्रवृत्ति

लोककला में इन तीन प्रवृत्तियों का प्रभाव इतना मिला जुला होता है कि उनको सीमा रेखा द्वारा विभाजित करके नहीं देखा जा सकता है। मनुष्य ने सदैव अवसर मिलते ही रंगों, अलंकरणों के साथ उत्सवों को लोकगीतों के साथ मनाया है। उत्तर प्रदेश में किसी उत्सव, पर्व तथा मांगलिक कार्य के अवसर पर महिलाओं के गायन के द्वारा उत्सव का आरम्भ किया जाता है। अहोई अष्टमी, करवाचौथ, गणेश चतुर्थी, अक्षय तीज आदि अनेक अवसर हैं जब घर की स्त्रियाँ व्यक्तिगत एंव सर्व कल्याण की भावनाओं के लिए आरती करती हैं, चौक पूरती हैं एंव उत्सव से सम्बन्धित गायन करती हैं। लोक कला से हमारा स्वाभाविक अपनत्व है। लोकचित्रकला का निर्माण आसानी से प्राप्त सामग्रियों के आधार पर किया जाता है। इस प्राचीन परम्परा का ज्ञान उन्हें उनकी सांस्कृतिक धरोहर के रुप में प्राप्त है। इन लोक चित्रों में आँगन में चित्रित किये जाने वाले चित्र को चौक, गोवर्धन, कोहबर या रंगोली तथा दीवारों पर अंकित किये जाने वाले चित्र को नाग पंचमी, थापा या ठापा कहा जाता है जिनमें अलग-अलग त्यौहारों तथा उत्सवों के लिए भिन्न-भिन्न थापा अंकित किये जाने का प्रचलन है। इन थापों और चौकों के द्वारा हमें भारत की विभिन्न जातियों तथा जनपदों की संस्कृति एंव लोकाचारों के दर्शन होते हैं। लोककला की यह पुरातन परम्परा भारतीय इतिहास की झांकी है।

कोहबर

उत्तर प्रदेश की लोककला में कोहबर चित्रण या यहाँ की लोक भाषा में कोहबर लेखन के आत्मरुप यहाँ की संस्कृति में अमूल्य हैं। यद्यपि ऐसी ही अनुष्ठानिक लोककला की परम्परा हिमांचल प्रदेश, आन्ध्रप्रदेश, पंजाब, राजस्थन, गुजरात, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, बिहार व असम में भी है। किन्तु उत्तर प्रदेश की कोहबर लेखन कला अपना अलग महत्त्व रखती है। हिन्दू सामाजिक समूहों में कोहबर लोकचित्रों की समृद्ध परम्परा अपने पूरे वैभव के साथ अस्तित्व में है। यह परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ती चली आ रही है। यहाँ शादी के अवसर पर अन्दर व बाहर और मुख्य द्वार पर जो चित्र बनाया जाता है उसे कोहबर कहा जाता है। यह वह स्थान है जहाँ विवाह के उपरान्त वर-वधु को ले जाकर उनका मनोरंजन किया जाता है। इसी संदर्भ में एक दोहा है-

मन भावन विधि कीन्ह मुदित भामिनी भई।
वर दुलहिनिहि लेवाह सखी कोहबर गई।

(जानकी मंगल: तुलसी ग्रन्थावली)

कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में भित्ति चित्रण वधु के कल्याण से सम्बन्धित है। कानपुर तथा आस-पास के क्षेत्रों में इसका अंकन किया जाता है। जिसमें कुलदेवी का अंकन किया जाता है। कोहबर के चित्रण का कार्य कभी-कभी गाँव की कहारिन या नाउन भी करती हैं, जिन्हें नेग(उपहार) दिया जाता है। कहीं-कहीं ये चित्रण घर की बहू भी करती है। कोहबर का चित्रण करते समय भिन्न प्रकार के श्रृंगारिक गीत भी गाये जाते हैं। कोहबर को ऐसे स्थान पर एंव शुभ मुहूर्त निकलवाकर बनाया जाता है, जहाँ सब लोग आते जाते न हो और टोना टोटका का कोई डर न रहे। कोहबर को प्राय: घर के पूर्वी भाग में पूर्वी दीवार पर बनाने का प्रचलन है। इसमें पषु-पक्षी, सुहाग का सामान, केले, आम, सुपारी, अनार आदि वृक्षों के फल सहित कमल की बेल, पत्ते, विभिन्न प्रकार के सुन्दर लुभावने पशु-पक्षी, सूर्य चन्द्र, तारे आदि बने होते हैं।

नागपंचमी

नाग पूजा अत्यन्त प्राचीन लोकचित्रण है। हिन्दू संस्कृति में यह महत्वपूर्ण प्रतीक है। शैव, वैष्णव, जैन, तथा बौद्ध आदि सभी धर्मो में नाग की महत्ता के कारण लोकजीवन में भी इसकी प्रसिद्धी है। श्रावण (सावन) शुक्ल पंचमी के मनाये जाने वाले नागपंचमी के त्यौहार के समय इस चित्र को धार्मिक पृष्ठभूमि में बनाया जाता है। नाग का लोकचित्र उत्तर प्रदेश में अधिक लोकप्रिय है। भारत में नागचित्रण को धार्मिकता प्राप्त है, क्योंकि यह आदिकालीन संस्कृति से जुड़ा हुआ है। वास्तव में रेखाओं के विभिन्न प्रयोग से नाग का चित्रण किया जाता है। यह चित्र घर के द्वार पर या अन्दर की किसी दीवाल पर बनाया जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस दिन नाग आकर दूध व लावा खाते तथा पीते हैं। नाग पूजा करते समय अपने कल्याण के साथ ही सभी के मंगल की कामना की जाती है। इसी सन्दर्भ में एक लोकगीत प्रचलित है:-

नाग बाढ़े नागिन बाढ़े,
नाग के सातो पोआ बाढ़े।
भइया बाढ़े बहिना बाढ़े,
ओकरे पीछे हमहू बाढ़ी।।

पूजा के बाद इस चित्र को पूरे साल भर नहीं मिटाया जाता है। इसमें अपने परिवार के साथ नाग के परिवार की भी मंगल कामना की जाती है। नाग चित्रण का हमारे समाज में प्रतीकात्मक महत्त्व भी है।

गोधना चित्रण

गोधना लोकचित्रकला की प्राचीन पौराणिक विधा है। उत्तर प्रदेश की लोकसंस्कृति में ये एक लोक पर्व है। इस पर स्त्रियाँ गाय के गोबर से चित्रण करती हैं। इस प्रकार का लोकचित्रण कार्तिक मास में दीपावली के दूसरे या तीसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाया जाने वाला यह त्यौहार गोवर्धन पूजा के नाम से जाना जाता है। इस त्यौहार पर ग्रामीण स्त्रियाँ व्रत रखती हैं। यह भाई दूज का भी त्यौहार होता है जिसमें इन्द्र के मद को चूर करने की कथा समाहित हैं। उत्तर प्रदेश में इस पूजा तथा चित्र का सामाजिक एंव सांस्कृतिक प्रयोजन है। गोधन को अन्नकूट का भी त्यौहार कहा जाता है। इसमें जमीन पर

गोबर की मानव आकृति बनाकर नई रुई से आँख, नाक, कान, ओंठ आदि बनाते हैं तथा हाथ पैर में चार-चार पान की सींकें लगाई जाती हैं। फिर सीमा रेखा बनाकर चित्र को पूर्ण किया जाता है। ब्रज क्षेत्र में गोवर्धन चित्रण करते समय यह लोकगीत गाया जाता है-

श्री गोबरधन महाराज त्योरे
माथे मुकुट बिराज रहो,
तो पै पान चढ़े और फूल
चढ़े, चढ़े दूध की धार।
माथे पै मुकुट बिराज रहो,
कानन में कुण्डल पेहर रहो,
ठोड़ी को हीरालाल त्योरे माथे
मुकुट बिराज रहो।
सात कोस की दंड परिकम्मा चकलेश्वर विश्राम,
त्योरे माथे मुकुट बिराज रहो।

इसी गोबर से बने अल्पना के चारों ओर स्त्रियाँ अपने-अपने पूजा का सामान लेकर पूजा करती है। कहीं कहीं गोबर से स्वास्तिक रखने का भी प्रचलन है।

चौक पूरना

हमारे देश में चौक पूरने की प्रथा प्राचीन समय से ही चली आ रही है। जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त होने वाले सांस्कृतिक लोकाचारों के

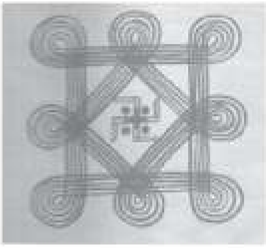

उपलक्ष में बनाई जाने वाली लोक आकृतियाँ इसके अर्न्तगत आती हैं। यद्यपि भारत में चौक पूरना एक महत्त्वपूर्ण एंव पारम्परिक लोकचित्र है। भारत के अनेकों क्षेत्रों में लोकसंस्कृति में उकेरने का यह सहज, सरल, एंव लोकप्रिय आरेखन है। उत्तर प्रदेश में प्राय: प्रत्येक मांगलिक अवसरों पर घर को या पूजा स्थान को गोबर से लीपना एंव चौक पूरना अत्यन्त प्राचीन एंव लोकप्रिय परम्परा है। बौद्ध धर्म में इस अलंकरण का प्रचलन था। अवधि क्षेत्र में घर को सजाने संवारने का यही प्रिय लोकचित्र है। चौकपूराई पर लोकगीत भी गाया जाता है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में चौक रचने का सुन्दर वर्णन है:-

रचहुँ मंजु मनि चौके चारु।
कहहु बनावन बेगि उजारु।। (अयोध्याकाण्ड)
वीथी सकल सुगन्ध सिंचाई
गजमनि रचि बहु चौक पुराई।। (उत्तरकाण्ड)

चौकपूराई एक लोकप्रिय चित्रण है, इसके अनेक अवसर है। चौकपूराई एक मांगलिक अलंकरण है। इसलिए सब प्रकार की मंगलकामना, सुख, कल्याण आदि को ध्यान में रखकर स्त्रियाँ चौकपूरती हैं। चौक पुराई के समय जो गीत गाया जाता है, उससे प्रयोजन भी स्पष्ट होता है।

हाथ का थापा

थापा प्राचीनतम एंव प्रचलित लोककला है, जो अनादि काल से चली आ रही है। मानव जीवन के निरन्तर विकास के साथ-साथ यह प्रथा भी विकसित होती जा रही है। थापा या पचांगुली चित्रण की ऐतिहासिक एंव सांस्कृतिक परम्परा है। यह एक ऐसा लोक चित्रण है जिसके अवसर वर्ष भर आते रहते हैं। किसी भी मांगलिक पर्व, विवाह, कथा आदि में थापा चित्रण बनाया जाता है। थापा चित्रण का प्रयोजन शुद्ध मांगलिक है, धार्मिक है। थापों का प्रयोग कलयाण आर्शीवाद देव प्रतीक तथा अलंकरण के रुप में होता है। यह सर्वमान्य शास्त्रीय एंव लोक परम्परा है यह भित्ति चित्रण का प्राचीनतम साक्ष्य है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि किसी भी देश की कला संस्कृति इतनी समृद्ध नहीं है, जितनी कि भारतीय कलासंस्वति। भारतीय लोककला, संस्कृति को समझने के लिए उपयुक्त है। अतएव भारत वर्ष की लोककला के लोकगीत भारतीय संस्कृति की आधारशिला कही जाती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *उपाध्याय, कृष्ण देव- भारतीय लोक कला विश्वास*
2. *चतुर्वेदी, मंजुला- भारतीय लोककला के अभिप्राय, कला प्रकाशन, आगरा, 2009*
3. *चट्टोपाध्याय, बसन्त कुमार- भारतीय प्रदेश और उनके निवास*
4. *वर्मा, मंजु- लोक संगीत में रस तत्त्व, पृष्ठ-129*
5. *शास्त्री, कैलाश नाथ- भारतीय समाज संस्कृति तथा संस्था*
6. *श्रीवास्तव, पूर्णिमा- लोकगीतों में समाज*
7. *दैनिक जागरण- आगरा सतरंग (जीवन-रक्षक नाग देवता) 18 जुलाई, 2012, मुमुक्षु दीक्षित।*

ISSN 2277-5587

मानवाधिकारों का नारी संदर्भ
(उत्पीडन एवं विधिक सरंक्षण)

डॉ. योगेश चन्द्र शर्मा
प्रोजेक्ट फेलो, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

shodhshree@gmail.com

महान राजनीतिक चिन्तन एवं लेखक हैराल्ड जे. लास्की के कथन को ध्यान में रखा जाये तो अधिकार वे परिस्थितियां है जिनके बिना व्यक्ति अपने पूर्ण आत्म विकास की उम्मीद नहीं कर सकता है।[1] वस्तुत: लास्की का अधिकारों की महत्ता को दर्शानि वाला यह कथन महिला वर्ग के लिए अधिकारों की मांग एवं आवश्यकता को रेखांकित करने के लिए मुख्य सन्दर्भ माना जा सकता है।

मानव अधिकार
↑
सांस्कृतिक अधिकार
↑
सामाजिक एवं आर्थिक अधिकार
↑
राजनीतिक एवं कानूनी अधिकार
↑
नागरिक अधिकार
↑
प्राकृतिक अधिकार[2]

भारत के राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अनुसार मानवाधिकारों का अर्थ ''जीवन, स्वतन्त्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा जैसे अधिकारों से है।''वस्तुत: मानवाधिकार, मौलिक अधिकार या नागरिक अधिकार सभी का लक्ष्य एक ही है।[3]

मानव अधिकारों की अवधारणा देश, काल, परिस्थिति , राजनैतिक दर्शन एवं सामजिकता सापेक्ष होती है। अत: मानवाधिकारों की सार्वभौमिक एवं सम्पूर्ण परिभाषा या व्याख्या सम्भव नहीं है। सामाजिक एवं राजनैतिक विकास तथा प्रगतिशील चिंतन के साथ मानवाधिकारों की धारणा व्यापक एवं विस्तृत होती जा रही है।[4]

मानव अधिकारों की कुछ समान्य विशेषताये होती है जैसे इनकी वैयक्तिक व सामूहिक मांग, समाज एवं राज्य की मान्यता, लोकहित के आधार, राज्य का संरक्षण लोक कल्याणकारी स्वरुप, समानता के नियम से अनुप्रणित, कर्त्तव्यों के साथ संलग्नता इत्यादि।[5]

समाज में स्त्री और पुरुष दोनों का ही समान महत्व हैं। समाज का सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब व्यक्ति के विकास में मानवीय अधिकारों की भूमिका सार्थक रुप में लागू की जाए। सभ्य समाज में दैहिक व

मानसिक दोनों रुप से स्त्री के मानवाधिकारों की सुरक्षा पूर्णरुपेण की जाए तो समाज की संस्कृति की रक्षा हो सकती है।[6]

महिला मानव है, पुरुष की तरह। अवश्य ही वह पुरुष से भिन्न है यह प्रकृति का नियम है, किन्तु इस भिन्नता को असमानता में प्रकृति ने नहीं, अपितु सामाजिक संरचनाओं ने परिणत किया है। अत: यह असामानता, अधिकारहीनता, अन्याय की स्थिति परिवर्तनीय है, यदि इसकी उचित व्यवस्था एवं प्रतिरोध किया जाए। उक्त व्याख्या एवं प्रतिरोध का सुदृढ़ आधार है, महिला की मानव रूप में स्वीकारोक्ति तथा उन सभी अधिकारों की वैधता जो 'मानव अस्तित्व' के रूप में उसके साथ जुड़े है।[7]

परन्तु जब से नारीवादी प्रश्नों पर विमर्श प्रारम्भ हुआ है तब से वर्तमान तक नारीवादी दृष्टिकोण का एक प्रमुख पक्ष अधिकारों की महिलाओं के लिए उपलब्धता यथार्थता एवं प्रासंगिकता पर अवश्य केन्द्रित रहा है और 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौमिक योजना से अब तक विविध महिला आन्दोलनों एवं राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं संरचनाओं सभी में यही विषय प्रमुखता से उपस्थित हुआ है कि महिलाओं के मानवाधिकार क्या है और किन संकटों एवं चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। नारीवादी दृष्टि से उदारवादी चिन्तक मेरी वाल्सटन क्राट की 1972 में प्रकाशित पुस्तक ए विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ वीमेन महत्वपूर्ण है। प्रचलित पुरुष प्रधान सामाजिक, राजनैतिक एवं वैधानिक संरचनाओं का सम्भवत: यह प्रथम नारीवादी विश्लेषण था। 19वीं सदी से नारीवाद के विचारों का प्रश्न मध्यवर्गीय मूल्य व्यवस्थाओं के द्वारा ही निर्देशित रहा तथा मताधिकार एवं वैधानिक अधिकारों, इत्यादि तक सीमित रहा।[8]

मानव अधिकार मानव मात्र के नैसर्गिक, अविच्छेदय एवं अनन्य अधिकर है। इसके बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व तथा प्रतिष्ठा का विनाश हो जाता है। मानव अधिकार व्यक्तित्व के विकास, शोषण रहित समाज के निर्माण, आर्थिक समृद्धि तथा विश्व शान्ति के लिए आवश्यक है।

शुलामिथ फायर स्टोन ने The dialectics of sex, 1970 में नारी के दमन का कारण न तो वर्ग या समाजिकरण को और नहीं समाज की संरचना या प्रक्रिया को माना है। उसके अनुसार महिला का वास्तविक शत्रु पुरुष है। नारी को केवल अधिक पद, सम्मान या प्रास्थिति, सुरक्षा व अधिकार देने से कुछ नहीं बनेगा। असमानता का मूलभूत कारण पुरुष द्वारा स्त्री का दमन है। लिंग वर्ग का भेद सबसे पहले है। आर्थिक वर्ग तो बाद में आता है। इसकी जड़ें जीवशास्त्रीय हैं। प्रजनन में महिला की भूमिका, पुरुष पर निर्भरता तदनुसार उसके शोषण का कारण है। लैंगिक दमन नारी दासता की जड़ है।[9]

अनेक अन्तरिक विभिन्नताओं के बावजूद इस विषय पर आम सहमति उभर कर आई है कि लिंग आधारित असमानता का स्रोत प्राकृतिक/जैविक संरचना में नहीं सामाजिक संरचना में है। परिवाद सामाजिक संरचना को मूलभूत इकाई है एवं पितृसत्तात्मक मूल्यों तथा उस पर आधारित आचरण संहिता के आरोपण एवं व्यापक स्वीकृति ने परिवार को असंतुलित एवं सोपनीय शक्ति संरचना में परिवर्तित कर दिया है। रेडिकल नारीवाद ने तो परिवार को नारी उत्पीड़न का मुख्य स्रोत मानते हुए उसके पूर्ण बहिष्कार का आहान किया है।[10]

सिमोन द बोवाया ने द सैकण्ड सेक्स में लिंग विभेद के कारण को मनोवैज्ञानिक तथा अस्तित्व परक माना हैं। बोवाया का कथन है कि समाज में पुरुष स्वयं को स्वत: सत के रुप में मानता है, तथा स्त्री को अन्य रुप में देखता है। बोवाया के अनुसार इस प्रश्न का सबसे आश्चर्यजनक पहलू ये है कि स्त्रियों ने अपने विषय में पुरुषों के इस मूल्यांकन को स्वीकार कर लिया है। पाश्चात्य नारीवादी लेखिका शीला रोबाथम भी बोवाया के दृष्टिकोण को मानते है उसका कथन है कि अभी भी एक एतिहासिक अभिकर्ता के रूप में स्त्री की सकल्पनाँ नहीं की गयी है, स्त्री अभी भी अन्य जगत का हिस्सा है, जिसे पुरुष देखता है, समझता है व नियत्रित करता है।[11]

वस्तुत: नारी सशक्तीकरण का प्रश्न मूल रुप से महिलाओं के लोकतान्त्रिक अधिकारों एवं उनके मानवाधिकारों का प्रश्न है जो आंशिक रुप से सार्वभौमिक एवं आंशिक रुप से संस्कृतिनिष्ठ हैं। क्योंकि महिला उत्पीड़न का आनुभाविक यथार्थ, विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं की मूर्त भौतिक संरचनाओं एवं प्रक्रियाओं से जन्मता और पल्लवित होता है।[12]

भारतीय संविधान में भी मूल अधिकारों के संदर्भ में महिलाओं के लिये महत्वपूर्ण अधिकार स्वीकृत किए गए हैं। अनुच्छेद 15 के अनुसार धर्म, मूलवंश, जाति लिंग या जन्म-स्थान के आधार पर विभेद का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 16 में लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता प्रदान की गई है। अनुच्छेद 51 (क) के अन्तर्गत मूल कर्तव्य के अन्तर्गत कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं। संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में भी महिलाओं के अधिकार सुनिश्चित किये गये हैं। अनुच्छेद 39 के मुताबिक पुरुष और स्त्री व सभी नागरिकों को समान रुप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है। पुरुषों और स्त्रियों को समान कार्य के लिये समान वेतन का प्रावधान किया गया है।[13]

यहाँ यह बता देना समीचीन होगा कि अमेरिकी संविधान का नवाँ संशोधन इस बात का प्रावधान करता है कि कतिपय वैयक्तिक अधिकारों के गिनाये जाने का अर्थ यह न लगाया जाय कि जिन्हें नहीं गिनाया गया है, उन्हें अस्वीकार किया जाएगा।[14]

महिला सशक्तीकरण उस उत्पीडन को एक चुनौती है जो हिंसा एवं अधीनता के भाव से मुक्त होता है। महिला के मानव अधिकार पर विचार करने के बावजूद पितृसत्ता पूरे सामाजिक ढांचे में इतनी गहराई तक है कि महिला को अपने बारे में निर्णय करने का अधिकार

नहीं है। चूंकि घरेलू हिंसा महिला के विकास को रोकती है, और उसके सशक्तीकरण में ये सबसे बड़ी बाधा है।[15]

महिलाओं के प्रति अपराधों को तीन श्रेणी में बाँटा जा सकता है। ये अपराध प्रकारान्तर में महिलाओं के विभिन्न-प्रकार के मानव अधिकारों के हनन की श्रेणी में भी आते है।

(क) महिलाओं के प्रति हिंसात्मक अपराध – यथा बलात्कार, लैंगिक शोषण, शारीरिक हिंसा, अपहरण, हत्या व यातना संबंधी अपराध। ये सामान्य श्रेणी के अपराध है, एवं इनका निपटरा भारतीय दण्ड संहिता के प्रावधानों के अनुसार किया जाता है।

(ख) घरेलू अपराध – ये अपराध महिला अत्याचार एवं यातना की श्रेणी में आते हैं तथा ये मानव अधिकारों की अवहेलना के गम्भीर प्रकरण माने जाते है।

(ग) सामाजिक अपराध – जैसे मादा भ्रूण हत्या, जन्मते ही बच्चियों को मार डालने, छेड़छाड़, बाल विवाह एवं दहेज हेतु प्रताड़ित करना आदि अपराध इस श्रेणी में आते है।[16]

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा सम्भवत: मानवाधिकार उल्लंघन का सबसे ज्यादा शर्मनाक कृत्य है। और यह सबसे ज्यादा पिछड़ेपन का विषय है। यह भूगोल, संस्कृति व सम्पदा की सीमा दर सीमा में पाया जाता है। जब तक यह चलता रहेगा तब तक समानता, विकास एवं शक्ति के क्षेत्र में वास्तविक प्रगति सम्भव नहीं है।[17]

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा में शामिल हैं, बलात्संग या बलात्कार, दहेज के लिए उत्पीड़न, छेड़छाड़, लैंगिक दुर्व्यवहार, अपहरण, लड़कियों तथा महिलाओं का अनैतिक देह व्यापार, कन्या भ्रूण हत्या या शिशु हत्या इत्यादि। सच्चाई तो यह है कि भारत में स्त्रियां न घर में सुरक्षित हैं न घर के बाहर। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के अनुसार महिलाओं के साथ होने वाले अपराधों की संख्या सालाना दो लाख तक पहुंच गई है। आधिकारिक आंकड़े बताते हैं कि देश के किसी न किसी कोने में हर घंटे एक युवा विवाहिता को या तो मार दिया जाता है या मौत की तरफ धकेल दिया जाता है। दहेज मृत्यु का सालाना आंकड़ा नौ हजार से अधिक है जो एक दशक पहले केवल दो हजार था। राष्ट्रीय महिला आयोग में वर्ष 2013 में कुल 5160 शिकायतें महिला उत्पीड़न से सम्बन्धित दर्ज हुई, जिनमें सबसे ज्यादा मामले उत्तर प्रदेश, उसके बाद दिल्ली से हैं। इन शिकायतों में अधिकांश मामले घरेलू उत्पीड़न और उसके बाद दहेज उत्पीड़न से सम्बन्धित हैं।18

पुरुष व स्त्री का दर्जा बराबरी का है। वे एक दूसरे के पूरक तथा सहयोगी है। परन्तु महिलाओं के लिए तमाम कानूनों की स्थिति अभी भी सिद्धान्त पर तो बनी हुयी है। वास्तविकता में घरेलू हिंसा महिला अत्याचार एवं यौन शोषण ने स्त्रियों के सम्मान को गंभीर रुप से प्रभावित करके उनके मानवधिकार स्थितियों को प्रतिकूल रुप से प्रभावित किया है।

महिलाओं को प्रताड़ित करने के प्रकरणों में कठोर प्रावधान किए जाकर महिलाओं को राहत देने के प्रयास किए गए है। धारा 304 (बी) में दहेज मृत्यु के अन्तर्गत-(1) जहाँ विवाह के सात वर्ष के भीतर किसी स्त्री की मृत्यु जल जाने से या शारीरिक क्षति से अथवा सामान्य परिस्थतियों से भिन्न रुप में हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु के ठीक पहले उसके पति या पति के रिश्तेदारों द्वारा दहेज के लिये मॉग को लेकर परेशान किया गया था या उसके साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया गया था, तो इसे दहेज मृत्यु कहा जायेगा और मृत्यु का कारण उसके पति या रिश्तेदारों को माना जायेगा। साक्ष्य अधिनियम में भी एक धारा 113 ए जोड़ी जाकर विवाहित स्त्री की आत्महत्या के दुष्प्रेरण के बारे में उपधारणा का निर्धारण किया गया है।[19]

इसी प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अनुसार यदि कोई स्थान ऐसी स्त्री के वास्तविक कैद में है, जो रुढि के अनुसार लोगों के सामने नहीं आती है, तो पुलिस अधिकारी उस कमरे में प्रवेश करने से पूर्व उस स्त्री को सूचना देगा कि वह वहां से हट जाने के लिये स्वतंत्र है और हट जाने के लिये उसे उचित सुविधा देगा। इस प्रक्रिया में औरतों के प्रति सभ्यता से पेश आया जायेगा और इनकी गरिमा का सम्मान किया जायेगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 उपधारा (3) के अनुसार स्त्री की तलाशी किसी अन्य स्त्री द्वारा ली जाये और शिष्टता का ध्यान रखा जाये। केन्द्रीय गृह मंत्रालय द्वारा राज्यों को भेजी गई मानवाधिकार मार्गदर्शिका दिनांक 16.1.96 के पैरा संख्या 12 में निर्देश दिया गया है कि महिला की तलाशी, के लिये महिला पुलिस का प्रयोग किया जायेगा। तालाशी के दौरान रखे जाने वाले दो गवाहों में से एक महिला को रखा जावेगा। मार्गदर्शिका के पैरा 4 में निर्देश है कि विशेष परिस्थिति के सिवाय, सूर्यास्त से सूर्योदय के बीच (अर्थात रात में) कोई महिला गिरतार किया जाना आवश्यक हो तो पुलिस अधिकारी द्वारा उपने उच्चाधिकारी को लिखित में कारण बताते हुए आज्ञा ली जायेगी व गिरतारी करने की सूचना उच्चाधिकारी को दी जाएगी। जमानतीय मामलो मे तत्काल जमान ली जाएगी। अजमानतीय अपराध में गिरतार महिला को न्यायिक अभिरक्षा के लिये तुरंत ले जाया जायेगा। रास्ते के दौरान महिला के किसी पुरुष संबंधी को एस्कोर्ट पार्टी के साथ रहने की इजाजत दी जायेगी। पैरा संख्या 5 में निर्देश है, कि यदि महिला को पुलिस अभिरक्षा में रखना पड़े, तो उसे महिला बंदीगृह में रखा जायेगा। अगर महिला बंदीगृह न हो तो किसी अलग कमरे में रखा जायेगा। गिरतार महिला के किसी पुरुष या महिला संबंधी को थाना परिसर में रहने की इजाजत दी जायेगी, यदि कोई संबंधी उपलब्ध न हो तो पड़ौस की किसी महिला को उपस्थित रहने हेतु लिखा जायेगा। पैरा संख्या 6 में लेख है कि गिरतार महिला का पुलिस रिमांड केवल अपवादजनक स्थिति में ही माँगा जायेगा। पैरा संख्या 11 में गिरतार महिला को उसके अधिकार बताये जाने का निर्देश दिया गया है। मेडीकल मुआयना महिला की सहमति के बिना नही किया जायेगा। यह परीक्षण महिला डाक्टर द्वारा ही किया जायेगा।[20]

23 दिसम्बर, 1986 को स्त्री अशिष्ट रुपण अधिनियम 1986 (इंडीसंट रिप्रेजेंटेशन ऑफ वूमेन प्रोहिबिशन एक्ट) बनाया गया। यह कानून 2 अक्टूबर, 1987 से देश भर में लागू किया गया है। इस अधिनियम की धारा 3 के अनुसार कोई व्यक्ति ऐसे विज्ञापन का प्रकाशन नहीं करेगा अथवा प्रकाशन या प्रदर्शन की व्यवस्था नहीं करेगा या उसमें भाग नहीं लेगा जिसमें किसी भी तरह तरह से महिलाओं का अशिष्ट रुपण हो रहा हो। धारा 4 के द्वारा धार्मिक कलाकृति साहित्यिक कृतियों, प्राचीन स्मारकों व रंग चित्रों या रखा चित्रों में अन्यथा प्रस्तुत रुपण अपराध की सीमा से बाहर रखा गया है। महिलाओं का अशिष्ट रुपण करने वाले अभियुक्त का दोष सिद्ध होने पर उसे 2 वर्ष के कारावास व 2,000 रू. के जुर्माने की सजा दी जा सकती है। दूसरी बार और बार-बार अपराध करने के मामलों में 10 वर्ष की कैद व 2 लाख रुपए तक का जुर्माना किया जा सकता है। महिलाओं के संरक्षण के लिए संविधान की धारा 294 के अनुसार सार्वजनिक स्थान पर अश्लील कार्य करने, अश्लील गाना गाने या ऐसे शब्द बोलने जिससे किसी को क्षोभ होता है, तीन मास की अवधि तक कारावास व जुर्माना दोनों से दण्डित किया जाएगा।[21]

महिलाओं के अधिकारों एवं उनके प्रकरणों को विशेष दर्जा दिए जाने के लिए विशेष एवं विविध अधिनियम लागू किए गए हैं। इन अधिनियमों में निम्नांकित महत्वपूर्ण है :-

अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम 1956

स्त्री अशिष्ट रुपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986

औषधि द्वारा गर्भ समाप्ति संबंधी अधिनियम, 1971

दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

समान वेतन अधिनियम, 1976

कारखाना अधिनियम, 1986[22]

उच्चतम न्यायालय ने 12 अगस्त 1997 को विशाखा व अन्य बनाम राजस्थान के मामले में ऐतिहासिक निर्णय देते हुए यौन उत्पीड़न को व्यापक रुप से परिभाषित तथा निर्देशित किया।

1) अब सार्वजनिक या निजी प्रतिष्ठानों में प्रभारी अधिकरियों का यह दायित्व होगा कि वे यौन उत्पीड़न की घटनाओं के निदान निष्पादन व दण्ड प्रावधान के लिए जरुरी व्यवस्था करें।

2) शारीरिक सम्पर्क संकेत, यौनक्रीड़ा की मांग या अनुरोध, यौन मूलक टिप्पणियां, अश्लील साहित्य दिखाना, शाब्दिक व गैर शब्दिक यौन जनित व्यवहार यौन प्रताड़ना की श्रेणी में आते हैं।

3) सरकारी कार्यालयों व सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में महिलाओं को सम्मान सहित काम करने का वातावरण बनाना उस प्रतिष्ठान के प्रभारधिकारों का दायित्व है।

4) महिलाएं अब ऐसे अभद्र, अशिष्ट सहकर्मियों का स्थानान्तरण कराने के लिए भी सक्षम होगी।

5) कार्य स्थालों पर केवल सहकर्मियों द्वारा किया गया अभ्रद अश्लील व्यवहार ही यौन उत्पीड़न की श्रेणी में नही आयेगा। अपितु बाहरी व्यक्तियों द्वारा इस स्थल पर किया गया व्यवहार या उत्पीड़न भी इन दिशा निर्देशों से सम्मिलित होगा।[23]

वर्ष 2013 के अप्रैल माह में 'कार्यस्थल पर महिला उत्पीड़न से संरक्षण अधिनियम, 2013' देश में लागू हो चुका है। इस कानून का उद्देश्य सार्वजनिक एवं निजी कार्यस्थलों पर महिलाओं को सुरक्षा कवच प्रदान करना है, ताकि उनका यौन उत्पीड़न एवं यौन शोषण न किया जा सके। कानून में महिलाओं की सुरक्षा से जुड़े व्यापक प्रावधान हैं। कानून के तहत यौन उत्पीड़न की परिभाषा को व्यापक बनाते हुए इसमें सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र में हर तरह का काम करने वाली हर उम्र की महिलाओं को शामिल किया गया है। महिलाओं के साथ अश्लील बातों, उनकी रजामंदी के बगैर उनसे निकटता बढ़ाने के प्रयास तथा उनके साथ अश्लील व्यवहार को यौन उत्पीड़न के दायरे में लाया गया है। कानून के तहत दुष्कर्म के कारण पीड़ित महिला की मौत होने पर दोषी को आजीवन कारावास या मृत्युदंड दिया जा सकता है। साथ ही ऐसे मामलों में न्यूनतम 20 वर्ष की सजा निर्धारित की गई है। इस कानून के अंतर्गत जहां महिलाओं के साथ अश्लील व्यवहार, उनके कपड़े फाड़ना तथा उनका पीछा करने जैसे हरकतों को अपराध माना गया है, वहीं अश्लील इशारे करने पर सजा को एक वर्ष से बढ़ाकर तीन वर्ष किया गया है। इस कानून के तहत जहां हर जिले के लिए क्षेत्रीय शिकायत समिति के गठन का अनिवार्य प्रावधान है, वहीं नियोक्ता को यौन उत्पीड़न का मामला सामने आने पर एक आंतरिक समिति के गठन का दायित्व सौंपा गया है, जिसे सिविल कोर्ट के समक्ष अधिकार प्राप्त होंगे। समिति के सदस्यों की संख्या कम से कम 10 होगी।[24]

नारी को आत्म उत्थान के लिए अपने व्यक्तिगत एवं संगठनात्मक स्तर पर कुछ महत्त्वपूर्ण गतिविधियां करनी चाहिए। इन महत्वपूर्ण गतिविधियों के सम्बन्ध में निम्न प्रकार वर्णन किया जा रहा है -

1. सामाजिक मुद्दों की पहचान।
2. महिलाओं द्वारा की जाने वाली गतिविधियों का आयोजन।
3. महिलाओं में परिवर्तित होते सामाजिक मूल्यों, मानसिक दृष्टिकोण एवं सद्व्यवहार।
4. महिलाओं सम्बन्धी संगठनों से लाभ।
5. महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्य के तरीके, लाभ एवं हानि।
6. महिलाओं के क्रियाकलापों से परिवार एवं समाज पर प्रभाव।
7. सामाजिक क्रिया-कलापों की कार्य योजना बनाना।
8. संचार के साधनों का उपयोग।[25]

ISSN 2277-5587

भारतीय दण्ड प्रक्रिया संहिता-1860 में समय-समय पर परिवर्तन करके महिलाओं के सशक्तिकरण एवं उन्हें शोषण से मुक्ति हेतु लगातार प्रयास किये जाते रहे हैं। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

धारा-292, 293, 294- अश्लील पुस्तकों का विक्रय, अश्लील कार्य और गाने को अपराध बनाया गया है। धारा 312, 313, 314 - गर्भपात कराना अपराध है। धारा 354 - स्त्री की लज्जा भंग करने के आशय से उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग करना कारावास से दण्डनीय अपराध है। धारा 361 में अठारह वर्ष से कम आयु की नारी और धारा 362 में बल प्रयोग द्वारा किसी स्थान से ले जाना अपहरण का अपराध है। धारा 366(बी) - विदेश से लड़की का आयात करना, धारा 372, 373 वैश्यावृत्ति आदि के प्रयोजन के लिए अप्राप्तव्य को बेचना व खरीदना अपराध है। धारा 375, 376, 376(ए), (ट्) (डी) - के अन्तर्गत बलात्संग के लिए न्यूनतम दण्ड 7 वर्ष व 10 वर्ष और आजीवन कारावास और जुर्माने से दण्डनीय बनाया है। धारा 497 जारकर्म में पत्नी दुष्प्रेरक के रुप में दण्डनीय नहीं होगी। धारा 498 विवाहित स्त्री को फुसलाकर ले जाना या निरुध करना, धारा 498(ए) - स्त्री के साथ क्रूरता करना, धारा 509 शब्द, अंग विशेष से स्त्री का अनादर करना।[26]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 धारा 51 - जब किसी स्त्री की तलाशी करना आवश्यक हो जब ऐसी तलाशी शिष्टता का पूरा ध्यान रखते हुए अन्य स्त्री द्वारा की जाएगी। धारा 53(2) - किसी स्त्री की शारीरिक परीक्षा की जानी है तो ऐसी परीक्षा केवल किसी महिला द्वारा जो रजिस्ट्रीकृत चिकित्सा व्यवसायी है या उसके पर्यवेक्षण में की जाएगी। धारा 125 से 128 में पत्नी, सन्तान और माता-पिता के भरण-पोषण के प्रावधान है। यह पत्नी, बच्चों के अलावा बुजुर्ग माता-पिता को भी प्राप्त हो सकता है, जो अपनी सन्तान में से किसी से भी चाहे वह शादी-शुदा हो, प्राप्त कर सकता है। धारा 160 साक्षियों की हाजिरी के लिए पुलिस अधिकारी द्वारा किसी स्त्री को उसके निवास स्थान से भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की उपेक्षा नहीं की जाएगी। धारा 416-यदि वह स्त्री, जिसे मृत्यु दण्डादेश दिया गया है एवं गर्भवती पाई जाती है तो उच्च न्यायालय दण्डादेश का निष्पादन मुल्तवी किए जाने के लिए आदेश देगा और यदि ठीक समझे तो दण्डादेश को आजीवन कारावास के रुप में लघुकरण कर सकेगा। धारा 437 - के अन्तर्गत अजमानतीय अपराध की दशा में भी स्त्री को जमानत पर छोड़ दिए जाने के विशेष प्रावधान है।[27]

महिलाओं के विरुद्ध हिंसा किसी एक क्षेत्र, वर्ग, धर्म या जाति विशेष से जुड़ा हुआ विचार नहीं है। यह एक सार्वभौमिक गन्दगी है जो विचारधारा या नस्लीय पहचान तथा सामाजिक वर्ग की सीमाओं को पार कर जाती है। व्यक्तिगत स्तर पर यह हिंसा महिलाओं के जीवन में बाधा डालती है, उनके विकल्पों को सीमित बना देती है, उनका विश्वास तथा व्यक्तिगत चेतना को कम कर देती है, तथा उनके स्वास्थ्य को शारीरिक व मनावैज्ञानिक दोनों ही स्तरों पर बाधित कर देती है। यह उनके मानवाधिकारों को नकारता है तथा उनकी सम्पूर्ण सामाजिक सहभागिता के अवसरों को सीमित कर देता है। यह हिंसा न केवल महिला तक वरन उन पर निर्भर बच्चों के भी शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डालती है।

महिला सशक्तिकरण के वैश्विक प्रयासों में यूएन वीमैन एक प्रमुख संस्था व आन्दोलन बनकर उभरा है। यह संगठन जनवरी 2011 से अस्तित्व में आया है। इस संगठन के प्रमुख उद्देश्यों में शामिल है।

(1) अन्तर सरकारी निकायों के सहयोग व समर्थन, जैसे महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग तथा वे अपने स्तर, वैश्विक मानक तथा नीतियों का निरूपण कर सकें।

(2) संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रो को इन स्तरों को तथा मानकों को प्राप्त करने में सहायता करना तथा नागरिक समाज के साथ मिलकर सहयोग करना।

(3) लैंगिक समानता के उद्देश्य को हासिल करने हेतु सदस्य राष्ट्रो में सहयोग।[28]

1975 में ''महिलाओं की प्रस्थिति'' पर चिंता व्यक्त की गई तथा 1977 में ''महिलाओं की व्यक्तिगत गरिमा'' का प्रश्न उठाया गया। 1978 में ''महिलाओं के प्रति सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने' के लिए समिति के गठन का प्रस्ताव किया गया। इस समिति ने 1992 में ''महिलाओं के प्रति हिंसा को उनके खिलाफ भेदभाव की संज्ञा दी तथा इसी वर्ष ''महिलाओं के प्रति हिंसा'' अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे के रुप में चर्चित हुआ। 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा महिलाओं और बालिकाओं के अधिकारों के प्रति हिंसा को समाप्त करने के आशय से नवीन घोषणा जारी की गई।[29]

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया शुरु होने के बाद हुए अध्ययन भिन्न धरातल पर सोचते नजर आये, क्योंकि परिस्थिति बदलती हुई दिखी। भूमंडलीकृत बाजार की जरुरतों के लिए औरतों को गैर-पारंपरिक औद्योगिक उत्पादन में बड़े पैमाने पर झोंक दिया गया। इससे कुछ विकासशील अर्थतंत्रों का तेज विकास हुआ। इस दौरान औरतों की कार्यदशाएँ बहुत खराब थी और उनका पारिश्रमिक बहुत कम था, इसलिए अर्थशास्त्रियों ने व्याख्या की कि श्रम-शक्ति के इस स्त्रीकरण से श्रमिकों का उत्पादन में हिस्सा गिर जायेगा। चूंकि यह मुख्यत: आर्थिक व्याख्या थी, इसलिए इसकी आलोचना की गयी कि यह भूमंडलीकरण द्वारा प्रदत्त अवसरों के जरिये औरत के सशक्तीकरण की संभावना पर गौर नहीं करती। दूसरी तरफ पर्यावरणवादी व्याख्याता थीं जिन्होंने भूमंडलीकरण को इसलिए आड़े हाथों लिया कि वह विज्ञान और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करके निजी मुनाफा बढ़ाने के चक्कर में पारिस्थितिकी का क्षय कर रहा है। अर्थात् औरतों को सस्ते श्रम में लगाकर भूमंडलीकरण प्रजनन और लालन-पालन करने की प्रकृति-प्रदत्त नारीसुलभ क्षमताओं को नुकसान पहुंचा सकता है। पर्यावरणवादी व्याख्याओं को अन्य नारीवादी धाराओं ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उनकी निगाह में

यह रवैया औरत को उसके प्रजन्नकारी जैविक अस्तित्व में सीमित कर देता था और नर-नारी संबंधों में परिवर्तन की संभावनाएँ न के बराबर रह जाती थीं। भूमंडलीकरण की इन दोनों व्याख्याओं में से कोई भी नर-नारी संबंधों को बदलने की दिशा में नहीं थी। जो व्याख्या श्रम के स्त्रीकरण से चिंचित थीं, उनकी निगाह पूंजी और श्रम के बदलते संबंधों पर थी। वे यह मान कर चल रही थीं कि पूंजी लैंगिक भेदभाव करती रहेगी। पर्यावरणवादियों का विचार था कि पारंपरिक काम-काज से महिलाओं को अलग करने वाली हर प्रक्रिया त्याज्य है, क्योंकि वह उस विकास-नीति को प्रोत्साहन देती है जो प्रकृति-विरोधी है। हालांकि इन व्याख्याओं में हालात के कुछ पहलू अवश्य प्रतिबिंबित होते थे। इस तरह भूमंडलीकरण ने महिलाओं को दो श्रेणियों में बांट दिया। एक तरफ वे औरतें थीं जो अपनी पारंपरिक जीवन-शैली बचाने के लिए संघर्ष करती नजर आती थीं, और दूसरी तरफ वे लाखों-लाख औरतें थीं जिन्हें प्रौद्योगिकी परिवर्तन और बाजार की प्रक्रिया ने अपने अधीन कर लिया था।[30]

महिला अधिकारों को मानवाधिकारों के व्यापक महत्वपूर्ण संदर्भ में परिभाषित करने व इनकी सर्वसुलभता को सुनिश्चित करने तथा इनहें महिलाओं के समुचित उत्थान व विकास में सहायक बनाना मौजूदा समय की महत्ती जरुरत है जिसके लिए कतिपय विशिष्ट उपायें की आवश्यकता होगी।

1. मानव महिला अधिकारों की सूची में निरन्तर परिवर्तन तथा व्यापक समावेशन की गुजांइश होनी चाहिए क्योंकि महिला के कार्यक्षेत्र में निरन्तर बदलाव देखा जा रहा है।
2. महिला अधिकारों को केवल संवधान एवं कानून के सरंक्षण की ही जरूरत नहीं है वरन उन अधिकारों का जन शिक्षण की बडी भूमिका है।
3. महिला अधिकारों को महिला सशक्तिकरण के लिये चलाये जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों के परिप्रेक्ष्य में समझना होगा।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि समाज के सभ्य व सफल संचालन हेतु महिला के लिए अधिकारों का होना एवं उनको वास्तविकता में संचलन होना अत्यन्त जरुरी शर्त है। क्योंकि ऐसा होने पर ही महिला समाज के निर्माण, विकास एवं संवर्धन में अपना भरपूर एवं सार्थक योगदान दे पाने में सक्षम होगी।

भारत में 1993 से मानवधिकार आयोग को स्थापना से मानवाधिकारों पर आस्था सुदृढ़ हो गयी, इस आयोग के प्रमुख कार्य है।

1. मानवधिकार हनन के मामलों की जांच करना।
2. मानवाधिकर संरक्षण हेतु विधमान विधियों का पुनरीक्षण तथा प्रभावशाली अनुपालना को सुनिश्चित करना।
3. मानवधिकारो पर अन्तर्राष्ट्रीय विधियों एवं संधियों का अध्ययन करना।
4. मानवाधिकार में शोध तथा कार्यो को प्रोत्साहन देना।
5. मानवाधिकार शिक्षा को बढ़ावा देना।
6. मानवधिकारों के क्षेत्र में गैर सरकारी संगठन व संस्थाओं के प्रयासों को प्रोत्साहित करना।[31]

महिलाओं के मानवाधिकार के संरक्षण के लिए सन् 1990 में राष्ट्रीय महिला आयोग की भी स्थापना की गई है। मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को सक्रिय एवं सशक्त कार्यवाही करने के अधिकार प्राप्त हैं। यह आयोग पुलिस एवं जेल अधिकारियों के विरूद्ध भी कार्यवाही कर सकता है। यदि जेल में या पुलिस संरक्षण में मानवाधिकार के हनन का मामला साबित हों।

31 जनवरी 1990 को राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया जिसके निम्नलिखित कार्य हैं –

1. महिलाओं के लिए संविधान तथा अन्य विधियों के अधीन रक्षोपायों से सम्बन्धित सभी विषयों का अन्वेषण तथा उनकी परीक्षा।
2. महिलाओं की दशा सुधाने हेतु आवश्यक उपायों के बारे में संघ व राज्यों को सिफारिशे प्रस्तुत करना।
3. महिलाओं को संरक्षण प्रदान करने उनके अधिकारों की रक्षा करने तथा समता व विकास का उद्देश्य हासिल करने के लिए विविध नीतियां बनाना व उनको पोषण प्रदान करना।
4. महिलाओं के विकास तथा उनकी शिक्षा संवर्धन के विषय में अनुसंधान ताकि महिलाओं को विविध क्षेत्रों में सम्यक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।
5. महिलाओं से सम्बन्धित किसी बात के और मुख्य रुप से उन विभिन्न कठिनाइयों के बारे में जिनके अधीन महिला कार्य करती है सरकार को समय-समय पर रिपोर्ट देना।[32]

नारी की शक्ति, उसका सामर्थ्य उसकी सजगता, उसका पारिवारिक - सामाजिक स्थान, उसका पद, नारी की आत्मनिर्भरता एवं नारी की क्षमताओं में विश्वास ऐसे तमाम विशेषण है जिनकी सार्थकता उसके अधिकार सम्पन्न होने में ही निहित है। परन्तु अधिकारों का होना मात्र ही सम्पूर्ण नहीं है, अधिकारों के साथ कुछ शर्तें पूरा होना जरुरी है।

1. अधिकार किस तरह के दिये जा रहे है अर्थात अधिकारों के साथ उनकी प्रभावशीलता का होना अत्यन्त महत्पूर्ण है इस सन्दर्भ में रोजगार का अधिकार, अत्यन्त महत्व रखता है।
2. अधिकारों को देने का तरीका क्या है अर्थात क्या वे सामाजिक परम्पराओं एवं रिवाजों की लम्बी श्रृंखला का परिणाम है या फिर विधान के माध्यम से दिये गये है।
3. अधिकारों के सार्थक उपयोग के लिए उनका संरक्षण अत्यावश्यक शर्त है। यह संरक्षण संविधान एवं विधायन के तरीके से उपलब्ध होगा।

 ISSN 2277-5587

4. अधिकारों का उपभोग करने क लिए नारी में जागरुकता का होना अत्यन्त जरूरी है जिसके लिए शिक्षा एक उचित माध्यम बन सकती है।

देश में महिलाओं के मानवाधिकारों की महत्ता को समझा जाए, महिला मानवाधिकार संरक्षण प्रदान किया जाए, सम्मेलनों, भाषण, समाचार व पत्रिकाओं में लेख, पोस्टर, आकाशवाणी व दूरदर्शन के कार्यक्रम आदि सक्रिय भूमिका अदा कर सकते हैं। इस दिशा में सामाजिक जागरुकता की आवश्यकता है। सामाजिक जागरुकता के लिए महिलाओं की शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। वे शिक्षित होकर अपने मानवाधिकारों को स्वयं समझ सकें तथा व्यर्थ में प्रताड़ित या शोषित होने पर आवाज उठा सकेंगे। पुलिस को भी मानवीय व्यवहार की शिक्षा, सेवा-भाव व मानवाधिकारों की सुरक्षा का अनिवार्य प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, जिसमें महिलाओं के संरक्षण को विशेष रूप से शामिल किया जाना चाहिए।

विवश और मजबूर महिलाएँ पारिवारिक एवं सामाजिक मजबूरियों के चलते अकथनीय वेदनाओं और यंत्रणाओं के दौर से गुजरती रहती है। मानव-अधिकारों के संदर्भ में उत्पन्न इन विवश स्थितियों का निराकरण सामाजिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में सुधार लाकर किया जा सकता है। सामाजिक संस्थाए तथा गैर सरकारी संगठन सामाजिक जागरण एवं सामाजिक सुधार की दिशा में प्रभावी कार्यवाही कर कालान्तर में महिलाओं की मूल मानव अधिकारों की स्थितियों में परिवर्तन, बदलाव एवं उत्थान ला सकते है।

स्त्री शिक्षा, सामाजिक सुधार, प्रभावी कानून क्रियान्वयन, महिला जागरुकता कार्यक्रम एवं आर्थिक आत्मनिर्भरता जेसी स्थितियां पैदा की जाकर स्त्रियों के मानव अधिकारों का संरक्षण एवं सम्वर्धन किया जा सकता है।

महिलाओं का शिक्षित होना किसी भी समाज के विकास हेतु प्रगति के निर्धारण का महत्वपूर्ण मापदण्ड होता है। उनकी शैक्षिक दशा, राजनीतिक एवं सामाजिक निर्णयन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का संकेत है। वैधानिक एवं सवैधानिक अधिकारों के साथ-साथ महिलाओं की स्थिति को सवैधानिक रूप से दृढ़ बनाने के लिए यह जरुरी है कि उनकी शैक्षणिक स्थिति में सुधार लाया जाये। केवल साक्षरता के प्रतिशत को बढ़ा लेने मात्र से ही सुधार हो जायेगा यह सही नहीं है महिलाओं को सूचना व ज्ञान से सम्पन्न होना होगा सूचना उनको मिलने वाली सरकारी- गैरसरकारी लाभों की तथा ज्ञान उनको प्राप्त होने वाले अधिकारों का।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में मानव समाज के सभी सदस्यों की अन्तर्निहित गरिमा तथा समान अभेदकारी अधिकार, विश्व में स्वतंत्रता, न्याय एवं शांति को आधार मानकर मानवाधिकारों की घोषणा की गई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 हैराल्ड जे. लास्की : A Grammar of Politics का हिन्दी अनुवाद, राजनीति की व्याकरण, प्रो. प्रभुदत्त शर्मा द्वारा अनुवादित, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2011, पृ.सं. 77.

2 ओमप्रकाश गाबा : राजनीति सिद्धान्त की मूल संकल्पनाएं, स्कॉलर टैक प्रेस, नई दिल्ली, 2014, पृ.सं. 130.

3 सुरेन्द्र नाथ कटारिया : सभ्य समाज और पुलिस, RBSA पब्लिशर्स, जयपुर, 2003 पृ.सं. 4-5.

4 शंकर सरोलिया : मानवाधिकार संदर्भ एवं परिप्रेक्ष्य, सोसायटी फॉर डवलपमेन्ट एण्ड पब्लिक ईश्यूज, जयपुर, 2005, पृ.सं. 3-4.

5 उपरोक्त संदर्भ 4, सरोलिया, डॉ. शंकर, पृ.सं. 19-22.

6 राजबाला सिंह : मानवाधिकार और महिलाएं आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2006, पृ.सं. 57.

7 आशा कौशिक : ''महिला अधिकार, मानवाधिकारों के रुप में'', भारतीय संदर्भ, स्त्रोत : अरुण चतुर्वेदी एवं संजय लोढ़ा सम्पादित भारत में मानव अधिकार, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 2005, पृ.सं. 40-42.

8 आशा कौशिक : नारी सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ, पोइन्टर पब्लिशर्स, 2004, पृ.सं. 29.

9 श्याम लाल वर्मा : उच्चतर आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 2002, पृ.सं. 623.

10 उपरोक्त संदर्भ 8 आशा कौशिक, पृ.सं. 30.

11 राममूर्ति पाठक : सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा, अभिमन्यू प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ.सं. 266-267.

12 उपरोक्त संदर्भ 8, आशा कौशिक, पृ.सं. 34.

13 उपरोक्त संदर्भ 4, शंकर सरोलिया।

14 उपरोक्त संदर्भ 6, राजबाला सिंह, पृ.सं. 19.

15 रेणुका पामेचा : ''महिला सशक्तीकरण : घरेलू हिंसा का संदर्भ'' नारी सशक्तीकरण विमर्श एवं यथार्थ सम्पादित आशा कौशिक पाईन्टर पब्लिशर्स, 2004, पृ.सं. 131.

16 उपरोक्त संदर्भ 4, शंकर सरोलिया, पृ.सं. 205.

17 कोफी अन्नान का कथन, डॉ. विभूति पटेल के लेख अण्डरस्टैंडिंग डामेस्टिक वायलेंस में से उद्धृत www.slideshare.net /vibhutipatel/domestic-vioence- 99violation-ofhuman-rights-of-women18 जी. एल. शर्मा : सामाजिक मुद्दे रावत पब्लिकेशन्स, 2015, पृ.सं. 430-436.

19 उपरोक्त संदर्भ 4, शंकर सरोलिया, पृ.सं. 207-208.

20 उपरोक्त संदर्भ 4, शंकर सरोलिया, पृ.सं. 206-207.

21 उपरोक्त संदर्भ 6, राजबाला सिंह, पृ.सं. 59-60.

22 उपरोक्त संदर्भ 4, शंकर सरोलिया, पृ.सं. 208.

23 एम. ए. अंसारी : महिला और मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन जयपुर, 2000, पृ.सं. 254.

24 उपरोक्त संदर्भ 18 जी.एल. शर्मा, पृ.सं. 430-436.

25 उपरोक्त संदर्भ 6, राजबाला सिंह, पृ.सं. 86.

26 मानचंद खंडेला : मानवाधिकार एवं सामाजिक न्याय, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2008, पृ.सं. 143-144.

27 उपरोक्त संदर्भ 26, मानचंद खंडेला, पृ.सं. 144.

28 http://en.wikipedia.org/wiki/un_women

29 उपरोक्त संदर्भ 7, आशा कौशिक, पृ.सं. 40-42.

30 अभय कुमार दुबे : ''पितृसत्ता के नये रूप'' भारत का भूमण्डलीकरण संपादक अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन द्वितीय संस्करण, 2007, पृ.सं. 228-232.

31 उपरोक्त संदर्भ 23, एम. ए. अंसारी, पृ.सं. 37.

32 पुष्पेन्द्र कुमार : महिला के कानूनी अधिकार, शंकर पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2010, पृ.सं. 40-42.

19वीं शताब्दी के मारवाड़ में धर्म का राजनीतिक जीवन व कला पर प्रभाव - एक सर्वेक्षण

डॉ. तेजेन्द्र वल्लभ व्यास
व्याख्याता, श्री पुष्टिकर श्री पुरोहित सूरजराज रुपादेवी स्मृति महिला महाविद्यालय, जोधपुर

shodhshree@gmail.com

धर्म एक ऐसा व्यापक शब्द है, जो सामने आते ही किसी जाति या समाज का इतिहास और उसके जीवन की भूमिका प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। 'धर्म' शब्द में जाति विशेष की सभ्यता, संस्कृति आचार-विचार, रहन सहन, रीति रिवाज तथा जीवन प्रणाली की प्रक्रिया और निदर्शन प्रस्तुत होता है। धर्म की परिभाषा भी हमारे दार्शनिकों चिन्तकों और मनीषियों ने अपने अपने समय के विचार और चिन्तन के परिणामस्वरुप भिन्न भिन्न रुपों में प्रस्तुत की हैं। 'धारणाद् धर्म इत्याहु': के अनुसार धर्म जीवन का मूलाधार हैं। इसी से मनुष्य को प्रेरणा और प्रकाश उपलब्ध होता हैं यही धर्म जीवन की गतिविधि और प्रगति में सहायक होता है।

राजनीतिक जीवन पर धर्म का प्रभाव:

राजस्थान में सामान्यत: राजा का व्यक्तिगत धर्म जो भी रहा परंतु सामान्य रुप से वे धार्मिक सहिष्णु रहे। तत्कालीन राजपूतानें में धर्म का बोलबाला था, और उसका प्रभाव राजनीति में स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचार होता हैं। राजाओं पर धर्म का प्रभाव प्राय: साधु सन्तों के माध्यम से पडता था। राज्य में कई बार धर्म का प्रभाव इतना महत्वपूर्ण हो जाता था, कि उससे प्रशासकीय संरचना, धार्मिक संस्थाओं को प्रदान किए जाने वाले अनुदान एवं सहयोग की प्रकृति निर्धारित होती थी। किसी सन्त, महन्त या गुंसाई के प्रभाव से महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्तियां होना तो सामान्य बात थी। राजाओं के अतिरिक्त रानियां तथा राजकुमारों के धार्मिक विचारों का प्रशासन एवं राजनीति पर कभी अप्रत्यक्ष रुप से तो परोक्ष रुप दृष्टिगोचार होता था।

जोधपुर के महाराजा तखतसिंह का देहांत हो जाने से पश्चात् महाराजा विजयसिंह के समय मारवाड क्षेत्र में पुष्टिमार्ग काफी लोकप्रिय था। उन दिनों में चौपासनी मन्दिर के गुंसाई विठ्ठलनाथजी की शिष्या गुलाबराय वहां कीर्तन किया करती थी, जिसे विजयसिंह ने अपनी पासवान बनाया। विजयसिंह जी को कृष्णभक्ति की ओर आकृष्ट करने का श्रेय गुलाबराय को दिया जाता है।[1] विजयसिंह जी प्रतिदिन गुंसाई जी के दर्षन करने हेतु जाने लगे। एक दिन गुंसाई जी को मालूम हुआ कि महाराजा निरंजनी साधु आत्मारामजी की समाधि के दर्शन करने जारहे है, इसलिए उन्होंने महाराजा से कहा कि जहां पर महाराज की समाधि है,वह तो षमसान हैं, वहां पर जाने से सूतक लगता है। यह सुनकर महाराजा विजयसिंह ने समाधि पर जाना छोड दिया, तभी से मारवाड़ में गुंसाईजी का प्रभाव बढने लगा। महाराजा विजयसिंह संवत 1822 में पुष्टि मार्ग में दीक्षित हो गये। गुंसाईजी के प्रभाव में आकर महाराजा विजयसिंह ने पशुओं पर लगने वाला चराईकर माफ कर दिया। उन्होंने राज्य में कसाईखाना और शराबखाने बन्द कर दिये। जहां पर तबेला था, वहां पर बालकिशन जी का मन्दिर बनवाया।[2] शहर में पशुवध बन्द हो जाने से कसाई बेकार हो गये, तब उन्हें मकानों पर छीणे चढाने का कार्य सौंपा गया।[3] वैष्णवधर्म का प्रभाव हो जाने पर विजयसिंह की दिनचर्या में परिवर्तन आया। 'महाराजा विजयसिंह री ख्यात' के अनुसार महाराजा का अधिकांश समय ईश्वर आराधना में व्यतीत होता था।[4]

पुष्टिमार्ग से प्रभावित होकर महाराजा विजयसिंह ने राज्य में पशु हिंसा पर रोक लगा दी थी, लेकिन राजपूत सरदार मांसाहारी थे। रेऊ के अनुसार आसोप ठाकुर ने अपने गांव से बोरे भरकर मांस मंगवाया। मांस लदा हुआ ऊंट शहर से गुजर रहा था, तो मार्ग में वह बिदक गया, जिससे बकरे का सिर निकल कर सड़क पर गिर गया। जिसे लोगों ने देख लिया और इसकी सूचना महाराजा को दी। जब महाराजा ने आसोप ठाकुर से पूछताछ की, तब आसोप ठाकुर ने अपनी बात को संभालते हुए कहा कि महाराजा बोरों में ऊन के गोले थे, जिन्हें लोगों ने बकरे का सिर समझ लिया। इसी प्रकार से आउवा ठाकुर जैतसिंह की शिकायत भी महाराजा के पास हुई कि जैतसिंह महाराजा के आदेश की परवाह किए बिना ही पशुवध करवाता जा रहा है, तब महाराजा ने धोखे से जैतसिंह को दुर्ग में बुलवा कर मरवा डाला।[5]

परम वैष्णव पासवान गुलाबराय ने वैष्णव धर्म के माध्यम से महाराजा विजयसिंह के हृदय में प्रवेश किया। महाराजा साहब उस पर विशेष रुप से मेहरबान थे। इस कमजोरी का लाभ उठाकर वह प्रशासनिक हस्तक्षेप करने लगी। गुलाबराय ने अपने पुत्र शेरसिंह को युवराज पद दिलवाया जबकि सिसोदिया रानी से उत्पन्न पुत्र जालिमसिंह स्वयं को युवराज समझता था।[6] एक बार गुलाबराय प्रधानमंत्री गोवर्धन से नाराज हो गई। इसलिए वह पोकरण ठाकुर सवाई सिंह से मिला और गुलाबराय की शिकायत करने का निश्चय किया। गुलाबराय को इसकी भनक पड़ गई, तो उसने गोवर्धन को अधिक तंग किया, जिससे गोवर्धन घबराकर विसलपुर चला गया।[7]

विजयसिंह जी की अन्य रानियां गुलाबराय के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर चिन्तित हुई, क्योंकि उसने महाराज से कहकर अपने पुत्र तेजकरण के लिए मूंडवा, पीपाड़, दांतीवाडा और विरानी का पट्टा प्राप्त कर लिया था।[8] इसके अलावा राजकोष में उपलब्ध धनराशि में से कुछ गुलाबराय के निवास स्थान हेतु निश्चित कर दी।[9]

महाराजा विजयसिंह के बाद भीमसिंह शासक बना। महाराजा भीमसिंह पर भी वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रभाव था, अत: महाराजा भीमसिंह ने अपनी मुद्राओं पर नागरी लिपि में 'श्री कृष्ण चरण शरण राज राजेश्वर महाराजाधिराज श्री भीमसिंह जी कस्य मुद्रिका' उत्कीर्ण करवाया। महाराजा भीमसिंह के बाद मानसिंह मारवाड़ के शासन बने। उनके राज्यारोहण के समय वैष्णव धर्म काफी लोकप्रिय था। कई बार लोग पुत्र प्राप्ति एवं रोगोपचार हेतु नाथ योगियों के पास भी जाते रहते है।[10] जालौर तथा पालासनी नाथों के प्रमुख स्थान थे।[11] मानसिंह जी जब जालौर में थे, तो उनका सम्पर्क जलन्धरनाथ पीठ के पुंजारी आयसदेवनाथ से हुआ। संक्रमणकाल में जब भीमसिंह ने मानसिंह को जालोर का दुर्ग छोड़ने हेतु दबाव बढ़ाया, तो आयसदेवनाथ ने मानसिंह से कहा कि वह 21 अक्टूबर 1803 तक दुर्ग न छोडे, क्योंकि उन्हें शीघ्र ही जोधपुर का राज्य मिलने वाला है।[13] सौभाग्य से भीमसिंह की मृत्यु हो गयी ओर मानसिंह मारवाड़ के शासक बने, इससे नाथों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। महाराजा मानसिंह मारवाड़ राज्य के शासन काल से पूर्व सरकारी कागज पत्रों, सनदों पट्टो, परवानों पर 'परमेश्वर सहाय' चाही लिखा जाता था, लेकिन महाराजा मानसिंह के शासन में 'जलन्धरनाथ सहाय' चाही लिखा जाने लगा। गुरु आयसदेवनाथ जब दुर्ग में आते तो महाराजा मानसिंह शीश पृथ्वी से लगाकर उनका अभिवादन करते थे।[14] गुरु आयसदेवनाथ की हत्या के पश्चात् भीमनाथ (आयसदेवनाथ के भाई) ने मानसिंह की रुग्ण मानसिक दशा का लाभ उठाकर छतरसिंह जैसे अयोग्य को युवराज पद दिलाने के लिए तैयार कर लिया। 1818 ई. को मानसिंह ने देवनाथ के पुत्र लाडूनाथ को महामंदिर का पुजारी नियुक्त किया।[15] लाडूनाथ ने मानसिंह जी से प्रार्थना की कि वे भीमनाथ को महामंदिर से हटा दे। इस कारण मानसिंह ने दोनों के कलह को समाप्त करने के उद्देश्य से भीमनाथ को उदय मंदिर बनवाकर वहां का पुजारी नियुक्त किया। दोनों नाथ गुरु ने राज दरबार में अपने अपने समर्थकों के गुट बनाये। सिघवीं फतहराज तथा भाटी गजसिंह लाडूनाथ और ढंढाल गोवर्धन तथा नाजर इमरतराम भीमनाथ के समर्थक थे। सरकारी अधिकारियों का नाथ गुरुओं से सलाह लेना आवश्यक था।[16] 1829 ई. में लाडूनाथ की मृत्यु के पश्चात भीमनाथ का पुत्र लक्ष्मीनाथ महामंदिर का प्रमुख महन्त बना।[17] भीमनाथ तथा लक्ष्मीनाथ की जोड़ी शक्तिशाली होने लगी। इन्होंने लाडूनाथ के समर्थकों की जागीरें छिनवा दी।

भीमनाथ को अंग्रेजों से डर लगता था, इसलिए धूणी में 1000 अश्वारोही भर्ती किए, उन्हें उदयमंदिर में रखा। भीमनाथ ने धीरे-धीरे 3000 सवार पैदल सैनिक एवं कुछ तोपे एकत्रित कर ली। भीमनाथ ने शक्ति और धन बल से मदहोश होकर महाराजा मानसिंह को हटाकर धोकलसिंह को राजा बनाने के षडयंत्र में लिप्त हो गया था।[18] 1838 ई. में लक्ष्मीनाथ 'पांचू' बीकानेर से जोधपुर आया तथा राज्य में अपनी पसंद के अधिकारी नियुक्त करवाये। प्रशासन में लगातार होने वाले परिवर्तन से नाराज कर्नल सदरलैण्ड ने महाराजा पर दबाव डालकर कहा कि वे नाथों को प्रशासन में हस्तक्षेप करने से रोके, लेकिन मानसिंह कोई कदम नहीं उठा सका।

महाराजा मानसिंह के पश्चात तखतसिंह '1843-1845ई.' मारवाड के सिंहासन पर बैठे। तखतसिंह के शासक बनते ही नाथों ने उपद्रव किये, जिसे तुरंत दबा दिया गया। तखतसिंह जी वैष्णव धर्मावलम्बी थे,[19] उनके राज्यकाल में माता चावड़ीजी ने तबेले के सम्मुख फतैबिहारीजी मन्दिर बनवाया।[20] महाराजा तखतसिंह के समय में बिजली गिरने तथा बारुद में आग लगने से चामुण्डा माता मंदिर क्षतिग्रस्त हो गया, उसका पुन: निर्माण करवाया।[21]

महाराजा तखतसिंह की ख्यात में लिखा है, कि महाराजा तखतसिंह के समय तुलसी विवाह के अवसर पर ठाकुरजी श्री आनंदधनजी की सवारी किले से बालसमंद पहुंची और वहां से विवाह करके दायजें सहित लौटी।[22] इसी प्रकार तखतसिंह द्वारा जन्माष्टमी के दिन

ISSN 2277-5587

चौपासनी जाकर ठाकुरजी व गुंसाई जी के दर्शन करने का उल्लेख ख्यात में मिलता है। इस उत्सव में गुंसाई जी ने यशोदा बनकर ठाकुरजी के सामने नृत्य किया। उस समय उनके पैरों में चांदी के पायजेब पहने थे, जिसे महाराजा तखतसिंह ने उतरवा कर सोने के पायजेब पहनाये।[23] महाराजा तखतसिंह के पश्चात जसवंतसिंह द्वितीय '1873-1895 ई.' ने मारवाड़ का राजसिंहासन ग्रहण किया। उस समय अंग्रेज पूरी तरह प्रशासन को नियंत्रित करने के प्रयास में व्यस्त थे। जसवंतसिंह द्वितीय पर नाथ सम्प्रदाय का विशेष प्रभाव नहीं था, इसलिए उन्होंने महामंदिर के शरणी के अधिकार को समाप्त किया।[24] महाराजा की वैष्णव एवं वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा थी। उन दिनों स्वामी दयानंद सरस्वती आर्य समाज के सिद्धांतों प्रचार राजपूताना में कर रहे थे। उन्होंने 1865-1833 ई. के मध्य राजपूताने के कई रजवाड़ों एवं नगरों की यात्रा की।[25] स्वामी दयानंद सरस्वती से महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय भी प्रभावित हो चुके थे।

31 मई 1883 ई. को स्वामी दयानंद पाली से जोधपुर पधारे।[26] राज्य की ओर से जवानसिंह ने उनका हार्दिक स्वागत किया। जोधपुर में स्वामी दयानंद के ठहरने की व्यवस्था फैजुल्ल खां के उद्यान में की गई। 'वर्तमान स्वामी दयानंद स्मृति भवन, रातानाडा' वहां उनसे महाराजा प्रतापसिंह और तेजसिंह ने भेंट कर आशीर्वाद प्राप्त किया।[27] महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय 15 जून 1883 को फैजुल खां के बगीचे में स्वामी दयानंद से भेंट की।[28] उस समय प्रतापसिंह तथा तेजसिंह भी महाराजा के साथ थे। दयानंद ने इस मुलाकात में महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय को राज्य की एकता, स्वदेश प्रेम, राजा के कर्तव्यों पर भाषण दिया। यद्यपि दयानंद को पुष्टिमार्गियों एवं इस्लाम धर्मावलम्बियों ने धमकिया दी थी, लेकिन इन्होंने परवाह नहीं की।2[9] जोधपुर में दयानंद के विचार सुनकर कई जागीरदार, राजा और महाराजा उनसे प्रभावित हुए। कुचामन ठाकुर केसरीसिंह एवं उनका पुत्र शेरसिंह तो स्वामी जी के अनुयायी ही बन गये।

यद्यपि प्रारंभ में जसवंतसिंह जी का झुकाव वैष्णव धर्म की ओर था, परन्तु बाद में वे आर्य समाज के सिद्धांतों से प्रभावित हुए। आर्य समाज के सिद्धांतों को तो उन्होंने प्रशासन पर विधिवत लागू किया। 27 जुलाई, 1883 ई. को जोधपुर में महाराजा जसवंतसिंह द्वितीय की संरक्षता में आर्य समाज की स्थापना की गई।[30] दयानंद के प्रभाव से राज्य की कचहरियों में आदेश जारी करके राष्ट्रभाषा हिन्दी में कार्य करना प्रारंभ किया गया। यह आदेश 12 अगस्त, 1883 ई. को जारी हुआ।[31] इससे पूर्व कोर्ट-कचहरी में कार्यवाही उर्दू भाषा में होती थी। इसके अलावा वि.सं. 1941 को राज्यादेश निकालकर सरकारी कर्मचारियों को खादी (रेजा) पहिनने की प्रेरणा दी गई। राजा द्वारा ओसर मौसर पर खर्चा न करने का आग्रह किया गया।[33] अफीम का उपयोग रोकने हेतु उस पर कर बढ़ा दिया गया।[34]

कला पर धर्म का प्रभाव:

किसी भी राज्य व जाति के क्रमिक विकास व प्रगति के इतिहास को हृदयगम करने में स्थापत्य की विभिन्न परतों और खण्डहरों के समुचित अध्ययन की नितांत आवश्यक होती है, क्योंकि स्थापत्य के अवशेषों में राज्य व जाति की वास्तविक आत्मा का प्रतिबिम्ब दृष्टिगत होता है तथा विस्मृत अतीत को उजागर करने में वे सहायक सिद्ध होते है। स्थापत्य के अवशेषों में तत्कालीन धार्मिक चिंतन, विचार, शौर्य व प्रगति की अनुभूति निहित रहती है तथा उनमें वहां के सौंदर्य वैभव ओर माधुर्य का सुखद अनुभव भी किया जा सकता है।

स्थापत्य कला पर प्रभाव:

मारवाड़ राज परिवार के सदस्य मंदिर निर्माण एवं अन्य समाज उपयोगी कार्यो को करवाकर धार्मिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का पोषण करते थे। इससे अनेक लोगों को रोजगार उपलब्ध होता था एवं निर्माण सामग्री का क्रय भी होता था। शिल्पी लोगों को अपनी कला मंदिरों में दर्शाने का अवसर मिलता था, वहां के पुजारी ब्राहमणों को परिवार पालने का साधन भी सुलभ होता था। राज्य में जल के प्राकृतिक स्त्रोतों का अभाव होने के कारण यहां की जनता को पानी सुलभ करवाने हेतुं तालाब, बापी निर्माण करवाकर समाज व धार्मिक, सांस्कृतिक गतिविधियों का पोषण राजपरिवार द्वारा किया जाता था। धर्म एवं निर्माण कार्योसे लोगों में रुचि जागृत होती थी, वर्षो तक धार्मिक भावना को बल मिलता था एवं सैकड़ों वर्षो तक लोगों द्वारा यह प्रयोग में लाये जाते थे।[35] गजधर एवं चुनगरों का धर्म संबंधित निर्माण कार्य में विशेष योगदान रहता था। इन्हें राजपरिवार द्वारा समय समय पर विशेष अवसरों पर रोकड़ भी प्राप्त होते थे।

महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर दुर्ग में चामुण्डा माता के मंदिर की मरम्मत करवाई। जोधपुर नगर में मूलनायकजी का मंदिर (गुन्दी के मौहल्ले में), पचदेवरियां, गंगश्यामजी का मंदिर,अजीतसिंह के शासन काल में ही निर्मित हुए।[36] महाराजा बखतसिंह ने आनन्दघन जी का मंदिर बनवाया। महाराजा विजयसिंह वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके शासनकाल में बालकृष्णलाल जी, मदनमोहनजी और कुंजा बिहारीजी के मंदिर निर्मित हुए। स्थापत्य कला की दृष्टि से इन मंदिरों की अत्यधिक महत्ता हैं।[37] महाराजा मानसिंह जी पर नाथ सम्प्रदाय का अत्यधिक प्रभाव था। अतः उनके शासनकाल में नाथों से संबंधित महामंदिर और उदयमंदिर जैसे भव्य मंदिरों का निर्माण हुआ। महामंदिर के चारों ओर पत्थर का सवा मील परिधि का परकोटा बना हुआ है, जिनमें अनेक बुर्ज बने हुए हैं। महाराजा मानसिंह ने इन निर्माण कार्यो पर लगभग 10 लाख रुपये व्यय किए।[38] इन भव्य इमारतों को मानसिंह ने अपने नाथ गुरु आयस देवनाथ को समर्पित किया।

इस प्रकार कहा जा सकता है, कि महाराजाओं के धार्मिक झुकाव तथा प्रचलित धार्मिक विश्वासों ने मन्दिर स्थापत्य कला की परम्पराओं को प्रभावित किया। शासक वर्ग सामान्यतः आय के विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त राजस्व को देवता के निर्मित मन्दिर के

संरक्षण, जीर्णोद्वार, सुधावलेप तथा पूजा आदि के लिए दान देते थे।

चित्रकला पर प्रभाव :

मारवाड़ में चित्रकला पर धर्म का प्रभाव रहा, धर्मान्ध और कट्टरपंथी औरंगजेब के शासनकाल से मुगल चित्रकला का ह्रास प्रारंभ हुआ। अनेक चित्रकार मुगल दरबार छोड़कर अपनी जीविका- निर्वाह हेतु हिन्दू शासकों के आश्रय में चले आये। तत्कालीन राजपूत शासकों ने उन्हें अपने दरबार में आश्रय प्रदान किया।[39] इन मुगल चित्रकारों के सहयोग से धीरे-धीरे स्थानीय शैलियों का विकास हुआ।[40] जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के शासनकाल में मारवाड़ चित्रकला शैली का विकास हुआ। इनके शासनकाल में कृष्ण से संबंधित लीलाओं का चित्रण अधिक संख्या में किया गया। महाराजा मानसिंह की धार्मिक नीति ने तत्कालीन चित्रकला को अत्यधिक प्रभावित किया। इस काल में नाथों से संबंधित असंख्य चित्रों का अंकन हुआ। 'सिद्ध-सिद्धांत पद्धति' नाथ पंथ के यौगिक पक्ष का अध्ययन कराती है। उसको चित्रित करने में एक अत्यंत नवीन प्रणाली को अपनाया गया। ये चित्र देशी कागज पर जो कि चार इंच चौड़ा है, जिसका किनारा आधा इंच चौड़ा है, चित्रित किए गए है। कलात्मक कुशलता का एक अत्यंत सुदर नमूना होने के साथ ही साथ उत्तम मनका के काम का वैभवशाली प्रभूषितकरण है, जिससे इनकी शोभा और सौंदर्य में वृद्धि हुई है। इसी प्रकार 'नाथचरित्र' के चित्र जो कि मोटे कागज पर चित्रित किए गए हैं, नाथ साधुओं की छवि को चित्रित करते है। इन चित्रों में सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्यौरे को भी वास्तविकता के पुट के साथ प्रदर्शित किया गया और साथ ही उनको महान, उत्कृष्टता से स्वर्ण के रंग से अलंकृत किया गया है। इसी तरह 'शिव रहस्य' में जो चित्र समाविष्ट किए गए है, उनमें हिमाच्छिादित पर्वतों को प्रदर्शित किया गया है। ये हिन्दू पौराणिक कथाओं के दृश्यों का निरुपण करते है। विष्णु पुराण के एक सौ नौ चित्र जिनके किनारे पीले रंग के है, इस बात की साक्षी है कि उस समय तक जोधपुर कलम परिपक्व हो चुकी थी। 'रामायण' की सचित्र प्रति में इक्यावन चित्रों का समावेश किया गया है। ये चित्र सादा परंतु शोभामय तथा मोहक नीति से भगवान राम के जीवन की गाथा को चित्रित किये है।[41] इसी प्रकार महामन्दिर में स्थित नाथमन्दिर के भिति चित्र, अपने आप में अनुपम है। महाराजा मानिसिंह के शासनकाल का चित्रकार शिवदास भाटी ने नाथ सम्प्रदाय से सम्बन्धित अनेको चित्रों को चित्रित किया, ये सभी चित्र उम्मेद भवन, जोधपुर के संग्रहालय में संग्रहित है।[42] इनमें सबसे प्रमुख महाराजा मानसिंह के सेवक को उपदेश देते हुए गुरु जलंधर नाथ का तिथि युक्त चित्र है। हरे रंग के कई शेड का सुनहरे रंग के साथ अद्भुत प्रयोग किया गया है। चित्रकार शंकरदास ने भी नाथ सम्प्रदाय से संबंधित अनेक चित्र बनाये है। उसके द्वारा चित्रित जलंधरनाथ एवं सेविकाएं का चित्र अत्यंत सुन्दर है।[43]

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि मारवाड़ में धर्मों के संप्रदायों एवं पंथों ने तत्कालीन राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया। राजवंश में धर्म की महत्वपूर्ण एवं अहम भूमिका रही। शैव, शाक्त, वैष्णव आदि विविध सम्प्रदायों का प्रभाव बना रहा, जिससे समाज भी सदैव प्रभावित रहा। धार्मिक आस्थाओं एवं विचारों को यहां रीति रिवाजों के माध्यम से प्ररुट किया गया, रीति रिवाजों से ऐहिक सुख तथा पारलौकिक आनंद के उद्देश्य की पूर्ति की गई एवं उस हेतु धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न किये जाते रहे। राजपरिवार द्वारा अपनाये गए रीति रिवाजों में धार्मिक क्रियाओं की भूमिका प्रमुख होती थी। संस्कार जन्य कार्यो पर्व, उत्सवों के सम्पन्न करने में धार्मिक, परंपराओं का निर्वाह प्रमुखतया किया जाता था। दान, पुण्य करना, धार्मिक यात्राएं करना, तुलादान, मंदिर, वापी, तालाब मंदिर जैसे धार्मिक कृत्य करना, राजपरिवार की धार्मिक प्रवृति के अन्तर्गत थी। धर्म-प्रधान राजवंश में कुलदेवी, इष्टदेवी एवं अन्य हिन्दू देवी देवता तथा लोक देवी देवताओं की मान्यता एवं पूजन विधि विधान से होता रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *रेऊ, मारवाड़ का इतिहास 1, पृ. 371*
2. *महाराजा विजयसिंह जी री ख्यात, संपादक, ब्रजेश कुमारसिंह, जोधपुर 1997 पृ. 9.*
3. *रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 381*
4. *महाराजा वियजसिंह री ख्यात, पूर्वोक्त, पृ. 86-87*

   'श्री महाराजा प्रभुरी बंदगी करै सुरात घड़ी च्यार रहे तरां तारत पधार दांतण कर सीनान करै। पछै प्रभुरै मींदर चाकरी करै। पछै असवारी कर मींदरां पधारे। पछै दोफार रा थाक पधरावे: पछै घडी दोय आराम करे। पछै उठने राजकाज के वासते मुसदियां रो दरबार कर न सारी जाब नीवेडे।''
5. *रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 385*
6. *गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, पृ. 90*
7. *रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 383*
8. *शिवदत्त बारठ, पूर्वोक्त, पृ. 128*
9. *जोधपुर हकीकत बही, संख्या 2, श्यामलदास, वीर विनोद 3, पृ. 140*
10. *एड्म्स, दी वेस्टर्न राजपूताना स्टेटस, पृ. 92*
11. *डॉ पद्मजा शर्मा, जोधपुर के महाराजा मानसिंह और उनका काल, पृ. 140*
12. *वहीं, पृ. 141*
13. *वहीं, पृ. 142*
14. *वहीं, पृ. 147*
15. *वहीं, पृ. 150*
16. *वहीं*
17. *वही*
18. *वहीं, पृ. 154*
19. *रेऊ, पूर्वोक्त, पृ 443*
20. *वही*

21. वहीं, पृ. 449
22. महाराजा तखतसिंह जी री ख्यात, संपादक नारायण सिंह भाटी, पृ. 212
23. वही, पृ. 147- 148
24. रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 471
25. राधेश्याम टेलर, राजपूताना में दयानंद और आर्य समाज, पृ. 212
26. वहीं, पूर्वोक्त पृ 471
27. राधेश्याम टेलर पूर्वोक्त पृ. 111
28. हकीकत बही, संख्या 32, 436 (बीकानेर)
29. राधेश्याम टेलर, पूर्वोक्त,, पृ. 11
30. वहीं पृ 414
31. विक्रम सिंह गुन्दोज, सरप्रताप और उनकी देन, पृ. 80 प्रगए
32. वहीं, पृ. 99
33. वहीं, पृ. 79
34. जगदीश सिंह गहलोत, मारवाड़ राज्य का इतिहास, पृ. 177
35. सांस्कृतिक धरोहर के ये प्रतिरुप आज भी जोधपुर राज्य में प्रत्यक्ष देखे जा सकते है।
36. डॉ. आर.पी. व्यास, पूर्वोक्त, पृ. 412
37. रेऊ, पूर्वोक्त, पृ. 357, 358
38. डॉ पद्मजा शर्मा, पूर्वोक्त, पृ. 242
39. विजय, राजस्थानी चित्रकला, पृ. 30-31,
40. मीरा मित्रा, महाराजा अजीतसिंह एवं उनका युग, पृ. 276
41. नाथ चरित, सिद्धांत, शिव रहस्य, शिवपुरान, आदि सचित्रा हस्तलिखित पुस्तक प्रकाश में उपलब्ध है।
42. मधु प्रसाद अग्रवाल, मारवाड की चित्रकला, नई दिल्ली, 1993 पृ. 146
43. वहीं, पृ. 148

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि एवं सृजनात्मकता पर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के प्रभाव का अध्ययन

डॉ. अनीता गौड़

सहायक प्राध्यापक, इन्स्टीटयूट ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)

shodhshree@gmail.com

संगीत कला एक उच्च कोटि की साधना है जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ की प्राप्ति संभव है। संगीत की स्वर लहरियां न केवल मनुष्य को मानसिक रुप से प्रभावित करती है बल्कि शारीरिक स्वास्थ्य पर भी अपना प्रभाव डालती है। 'गीतं वाद्यं तथा नृत्यम् त्रयं संगीतं मुच्यते'' अर्थात् संगीत एक अन्विति है जिसमें, गायन, वादन तथा नृत्य इन तीनों विधाओं का समावेश होता है जो कि संगीत का निर्माण करती है। शास्त्रीय संगीत समस्त कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है जिसकी सुखद अनुभूति मनुष्य के उन्नत संस्कारों का द्योतक है। संगीत मानसिक तनाव को समाप्त कर चंचल मन को शान्त एंव एकाग्र करता है।

शिक्षा महाविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षकों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है जिसका एकमात्र लक्ष्य इन प्रशिक्षणार्थियों ऐसे शिक्षकों के रुप में स्थापित करना है, जो शिक्षकीय कौशलों से युक्त हो, जो सृजनशील हो, जो अभिरुचियों से युक्त हो। संगीत अर्न्तमन की वह अभिव्यक्ति है जिसके माध्यम से मानव की भावनात्मक एंव संवेगात्मक क्रियाओं को समझा जा सकता है। शिक्षक, संगीत के माध्यम से विद्यार्थियों में सामाजिक, नैतिक एंव सांस्कृतिक मूल्यों को उजागर कर सकता है क्योंकि इन मूल्यों के अभाव में शिक्षण की सभी क्रियायें मूल्यहीन है। वैसे तो शिक्षा महाविद्यालय में शिक्षक प्रशिक्षकों के बहुत से शीलगुणों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है परन्तु आज समाज के बदलते हुए चुनौतीपूर्ण परिवेश में कुछ विशेष शीलगुणों को जानने की अपेक्षा की जाने लगी है ।

बी.एड. के पाठ्यक्रम में संगीत विषय को कार्य अनुभव के रुप में एक वैकल्पिक विषय वर्ग में रखा गया है। जहां एक ओर अनिवार्य विषय शिक्षा के ज्ञानात्मक पक्ष को बढाते है वहीं दूसरी ओर कार्यानुभव आधारित विषय शिक्षा के भावनात्मक एंव क्रियात्मक पक्ष को बढाते है। प्रस्तुत शोध में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के कुछ चुने हुये राग, जो कि बी.एड. पाठ्यक्रम में सम्मिलित है, को साधन के रुप में माध्यम बनाकर उन शिक्षक प्रषिक्षणार्थियों पर प्रयोग किया गया जो संगीत में रुचि रखते है। एवं उन शिक्षकों की संगीत अभिरुचि एवं सृजनात्मकता जैसे शीलगुणों को उदात्त रुप से उभारने का प्रयास किया गया है ऐसी सम्भावना की जा सकती है कि इन संगीत के रागों का प्रशिक्षण विद्यार्थियों के शिक्षकत्व व्यवहार को विकसित कर सकेगा ।

सामान्यत: संगीत के प्रति सभी की रुचि होती है। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में संगीत अभिरुचि को ज्ञात करने के लिए शास्त्रीय संगीत को लिया गया है जिसकी सहायता से प्रशिक्षणार्थियों में निष्ठा, त्याग, सर्मपण को जाग्रत कर सकारात्मक भाव को विकसित किया जा सकता है। इसी प्रकार सृजनात्मकता शब्द से तात्पर्य नवीन खोज या निर्माण करना। संगीत विद्धानों की मान्यता है कि संगीत छात्रों के बौद्धिक, शारीरिक एवं संवेगात्मक विकास में अपना योगदान देता है, जिस प्रकार संगीत अभिरुचि छात्र के शारीरिक तथा मानसिक विकास में सहयोग करती है उसी प्रकार सृजनात्मकता छात्र के संवेगात्मक विकास की इच्छा पूर्ति करता है। संगीत में सृजनात्मकता से अभिप्राय नवीन-नवीन संगीत रचनाओं का निर्माण (Compose) करना है। संगीत प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि के साथ-साथ रचनात्मकता भी, जिसमें संगीत

 ISSN 2277-5587

क्रियाओं का सृजन करने की शक्ति को ज्ञात कर उसके सृजनात्मक व्यवहार का पता लगाना प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य है।

सम्बन्धित साहित्य

सम्बन्धित साहित्य एवं शोधों के अध्ययन करने से शोध में ज्ञान, अवधारणाओं की पहचान सम्बन्धि उपागम तथा आधारभूत सिद्धांतों को सीमांकन करने तथा समस्याओं को समझने में सहायता मिलती है। शोध से सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से पता चला है कि शास्त्रीय संगीत को लेकर अनेक शोध एवं प्रयोग देश विदेश में हो रहे हैं। संगीत तथा शिक्षा के क्षेत्र में जो भी कार्य हुये है वे सभी मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गये है उन्होंने अनेक परीक्षणों एवं प्रयोगों का निर्माण कर शिक्षा, चिकित्सा, अध्यात्म आदि के क्षेत्र में अनेक कार्य किये।

Gray & Binghem, Streep (1929) ने अपने शोध में संगीत अभिरुचि एवं योग्यता में जातिगत भेदों के प्रभाव को देखा, उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि लय विभेदन तथा स्वर साम्य में अन्य जाति की तुलना में नीग्रो अधिक श्रेष्ठ थे।

Earhand, Gatto (1933) ने विद्यार्थियों पर संगीत स्वर लिपि एवं धुनों की रचनाकार्य के आधार पर प्रयोगात्मक विधि से अध्ययन किया। उन्होंने 19 सप्ताह के प्रयोग के अन्त में पुन: परीक्षण करके प्रायोगिक समूह को नियन्त्रित समूह की तुलना में श्रेष्ठ पाया। Johnson, Hazel (1940) & Doig, Dorothea (1942) ने बालकों में सृजनात्मक गीत लेखन पर शोध कार्य किया। इसके आगे Gray (1957) ने अपने अध्ययन में निष्कर्ष निकाला कि जो छात्र संगीत की कक्षाओं में जाते है उनका सामाजिक समायोजन अन्य किशोरों की तुलना में अधिक अच्छा होता है।

Horacek (1963) & Spohn (1963-65) के अनुसार संगीत के स्वरों की पहचान एवं विभेदीकरण करने एवं संगीत सम्बन्धी अन्य आधारभूत कौशलों को परम्परागत शिक्षक कक्षा उपागम की तुलना में प्रोग्राम अनुदेशन की सहायता से अच्छी तरह सिखाया जा सकता है। Masih (1979) ने सृजनात्मकता एवं शिक्षक दक्षता के अन्तर्गत बी. एड. के शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों पर अध्ययन किया। उन्होंने विज्ञान/कला तथा पुरुष/महिला की सृजनात्मकता के स्तर का पता लगाया।

Ho, Y.C. Cheung, M.C. & Chan, A.S. (2003) ने अपने अध्ययन में पाया कि संगीत प्रशिक्षण से शाब्दिक स्मृति में सुधार आता है जबकि दृश्य स्मृति पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। Copley Jennifer (2008) ने भी अपने शोध में यह बताया कि शास्त्रीय संगीत सकारात्मक विचारों एवं मस्तिष्क की शक्तियों को बढ़ाता है, जिससे तनाव में कमी आती है और बौद्धिक क्षमता बढ़ती है। Adena Portowitz, Osnat Lichtenstein, Ludmula Egorova and Eva Brand (2009) ने अपने शोध में बच्चों के संवेगात्मक एंव सामाजिक विकास में संगीत शिक्षा के प्रभाव का अध्ययन किया।

उद्देश्य

शिक्षा के मुख्य तीन उद्देश्य क्रमश: ज्ञानात्मक, भावात्मक एंव क्रियात्मक हैं। इन्हीं के आधार पर सम्पूर्ण संगीत शिक्षण व्यवस्था निर्भर करती है। शिक्षक इन्हीं लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को लेकर विद्यार्थियों में योग्यता का विकास करता है। क्या शास्त्रीय संगीत के माध्यम से संगीत प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि एंव सृजनात्मकता को विकसित किया जा सकेगा? इसको जानने का प्रयास करना ही शोध का प्रमुख उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध के उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों कि संगीत अभिरुचि के संदर्भ में न्यादर्श पर शास्त्रीय संगीत के प्रभाव को ज्ञात करना।
2. शास्त्रीय संगीत के माध्यम से शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों कि सृजनात्मकता के प्रभाव को ज्ञात करना।

परिकल्पनाएं

प्रस्तुत शोध में परिकल्पना के रुप में यह माना गया है कि –

1. शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि के सदंर्भ में प्रायोगिक समूह पर नियंत्रित समूह की तुलना में शास्त्रीय संगीत का विशेष प्रभाव पड़ता है।
2. शिक्षक प्रशिक्षणार्थी की सृजनात्मकता के संदर्भ में प्रायोगिक समूह पर नियंत्रित समूह की तुलना में शास्त्रीय संगीत का विशेष प्रभाव पड़ता है।
3. लिंगानुसार शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के बीच संगीत अभिरुचि एवं सृजनात्मकता के सदंर्भ में शास्त्रीय संगीत का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता है।

शोध विधि

समष्टि एंव न्यादर्श

प्रस्तुत शोध एक प्रयोगात्मक अध्ययन है जिसमें बी.एड. पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले शास्त्रीय संगीत के रागों (यमन, भूपाली, खमाज, काफी आदि) को प्रयोग के लिये चुना गया है। शोध में संगीत प्रशिक्षण एवं अभ्यास के आधार पर शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों की संगीत में अभिरुचि व सृजनात्मकता को ज्ञात किया गया है। प्रस्तुत शोध में जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर के अन्तर्गत आने वाले षासकीय एवं अशासकीय शिक्षा महाविद्यालयों के शिक्षक प्रशिक्षणार्थी इस शोध अध्ययन की समष्टि के रुप में सम्मिलित किया गया है। चार अशासकीय शिक्षा महाविद्यालयों 200 शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों को साधारण यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा चयनित किया गया तथा इस न्यादर्श समूह को लॉटरी विधि द्वारा यादृच्छिक रुप से 100–100 के प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह में विभाजित किया गया।

शोध उपकरण एवं प्रशासन

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि को ज्ञात करने के लिये प्रस्तुत शोध में संगीत अभिरुचि परीक्षण (श्रीमती जी. नायक) को

चुना गया है, एंव सृजनात्मकता ज्ञात करने के लिए टी. ए. टी. परीक्षण (श्रीमती चौधरी) एवं शोधार्थी द्वारा स्वंय एक परीक्षण तैयार किया गया। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता को ज्ञात करने के लिए दो परीक्षणों का निर्माण किया गया। (1) सृजनात्मक गीत लेखन एवं (2) सृजनात्मक गीत गायन। सृजनात्मक गीत लेखन मे प्रशिक्षणार्थियों कि लेखन क्षमता, शब्दावली अर्थात् शब्द संयोजक अर्थ आदि को ध्यान में रखकर अंकों का विभाजन किया गया। सृजनात्मक गीत गायन में गीत के स्वर, धुन, पिच, लय आदि के आधार पर अंकों का विभाजन किया गया। शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के प्रायोगिक समूह को शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण देने एवं अभ्यास के लिए हारमोनियम, तबला, इलेक्ट्रॉनिक तानपूरा, टेपरिकॉर्डर, कैसेट, सी.डी. आदि यंत्रों एवं वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया गया। शोधार्थी द्वारा स्वयं लगभग एक महीना एवं पन्द्रह दिन का संगीत प्रशिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के प्रायोगिक समूह को दिया गया। उन्हें प्रतिदिन एक घंटा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के रागों को अभ्यास के लिये सुनाया गया। जिससे उनके मस्तिष्क में श्रव्य प्रतिमाएं स्थापित हों और वे सिखाए गये रागों के स्वरों के माध्यम से नई रचना का सृजन करने के लिये तैयार हों।

आंकड़ों का संकलन

संगीत अभिरूचि के आंकड़ों को ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम परीक्षण का प्रशासन किया गया। जिसकी समय सीमा 50 मिनट निर्धारित की गई। एक महिना 15 दिन के शास्त्रीय संगीत के प्रशिक्षण के पूर्व के आंकड़ों का संकलन किया गया। तत्पश्चात् पूर्ण अवधि प्रशिक्षण पश्चात् एक बार पुन: परीक्षण का प्रशासन कर आंकड़ों को प्राप्त किया गया एवं सृजनात्मकता के आंकड़ों को ज्ञात करने के लिये संगीत स्वर लिपि तथा धुनों की तात्कालिक रचना का कार्य दिया गया।

प्रदत्त विश्लेषण एवं व्याख्या

शोध उपकरण के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया जिसमें मध्यमान एवं प्रामाणिक विचलन को ज्ञात करके परिकल्पनाओं का सत्यापन किया गया।

सारिणी-1

शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों संगीत की अभिरुचि पर शास्त्रीय संगीत के प्रभाव के संदर्भ में मध्यमान तथा प्रमाप विचलन

	प्रायोगिक समूह		नियंत्रित समूह	
	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण
मध्यमान	19.49	25.713	20.44	23.40
प्रमाप विचलन	9.65	6.52	10.65	9.85

सरिणी-1 से स्पष्ट है कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि के संदर्भ में नियंत्रित समूह का मध्यमान 20.44 (पूर्व परीक्षण) एवं 23.40 (पश्च परीक्षण) और प्रमाप विचलन 10.65 (पूर्व परीक्षण) एवं 9.85 (पश्च परीक्षण) है जबकि प्रायोगिक समूह का मध्यमान 19.49 (पूर्व परीक्षण) एवं 25.71 (पश्च परीक्षण) और प्रमाप विचलन 9.65 (पूर्व परीक्षण) एवं 6.52 (पश्च परीक्षण) है। परिणाम संकेत करते हैं कि प्रायोगिक समूह की संगीत अभिरुचि प्रक्रिया पर शास्त्रीय संगीत का सार्थक प्रभाव पड़ा। अत: परिकल्पना एक को स्वीकृत किया जाता है।

सारिणी-2

शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता पर शास्त्रीय संगीत के प्रभाव के संदर्भ में मध्यमान तथा प्रमाप विचलन

	प्रायोगिक समूह		नियंत्रित समूह	
	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण	पूर्व परीक्षण	पश्च परीक्षण
मध्यमान	13.23	18.81	15.50	16.12
प्रमाप विचलन	8.1	7.4	8.2	8.0

सरिणी-2 से स्पष्ट है कि शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों की सृजनात्मकता के संदर्भ में नियंत्रित समूह का मध्यमान 15.50 (पूर्व परीक्षण) एवं 16.12 (पश्च परीक्षण) है और प्रमाप विचलन 8.2 (पूर्व परीक्षण) 8.0 (पश्च परीक्षण) है जबकि प्रायोगिक समूह का मध्यमान 13.23 (पूर्व परीक्षण) एवं 18.81 (पश्च परीक्षण) और प्रमाप विचलन 8.1 (पूर्व परीक्षण) एवं 7.4 (पश्च परीक्षण) है। परिणाम संकेत करते हैं कि प्रायोगिक समूह की सृजनात्मकता प्रक्रिया पर शास्त्रीय संगीत का सार्थक प्रभाव पड़ा। अत: परिकल्पना दो को स्वीकृत किया जाता है।

सरिणी-3
लिंगानुसार शिक्षण प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि एवं सृजनात्मकता पर शास्त्रीय संगीत के प्रभाव के संदर्भ में मध्यमान एवं प्रामाणिक विचलन

	प्रायोगिक समूह		नियंत्रित समूह	
	स्त्री	पुरुष	स्त्री	पुरुष
मध्यमान	22.82	21.10	19.46	16.66
प्रमाप विचलन	4.5	3.1	3.1	2.6

सरिणी-3 से स्पष्ट है कि लिंगानुसार स्त्री/पुरुष शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में शास्त्रीय संगीत के प्रभाव के संदर्भ में प्रायोगिक समूह के स्त्री समूह का मध्यमान 22.82 एवं प्रमाप विचलन 4.5 है एवं पुरुष समूह का मध्यमान 21.10 एवं प्रमाप विचलन 3.1 जबकि नियंत्रित समूह के पुरुष समूह का मध्यमान 16.66 एंव प्रमाप विचलन 2.6 है तथा स्त्री समूह का मध्यमान 19.46 एवं प्रमाप विचलन 3.1 है। इसके आधार पर यह पाया गया कि लिंगानुसार स्त्री/पुरुष शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के बीच सार्थक अन्तर प्रभाव परिलक्षित होता है। अत: अत: परिकल्पना को स्वीकृत नहीं किया जा सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त प्रदत्त विश्लेषण के आधार पर यह पाया गया कि प्रथम एंव द्वितीय परिकल्पनाएं आंशिक रुप से स्वीकृत की गई, परन्तु तृतीय परीकल्पना आंशिक रुप से स्वीकृत नहीं पाई गई। क्योंकि स्त्री एंव पुरुष प्रशिक्षणार्थियों के मध्य अन्तरक्रिया करने पर सार्थक अन्तर दिखाई दिया। स्त्री प्रशिक्षणार्थियों की संगीत अभिरुचि एवं सृजनात्मकता पर पुरुष प्रशिक्षणार्थियों की तुलना में शास्त्रीय संगीत का प्रभाव अधिक पड़ा।

निष्कर्ष से प्राप्त होता है कि प्रशिक्षणार्थियों के संगीत अभिरुचि एंव सृजनात्मकता के प्राप्तांकों के संदर्भ में हिन्दुस्तानी संगीत के प्रभाव को देखा गया। प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह में महिला एवं पुरुष दोनों ही शामिल थे। प्रस्तुत शोध विषय में शास्त्रीय संगीत के प्रभाव को परिलाक्षित करते हुए उद्देश्यों को लेकर शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के संदर्भ में देखा गया । क्योंकि ये भावी शिक्षक चाहे किसी भी विषय समूह के हों यदि उनमें संगीत में अभिरुचि एवं सृजनशीलता होगी, तो वह विद्यार्थियों को भी प्रेरित करने का प्रयास करेंगे। क्योंकि संगीत वह अभिव्यंजना है जिसका प्रभाव शोध के अन्तर्गत शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों पर सार्थक रुप से पड़ा। इस विषय पर अभी और शोध होना बाकी है। आज संगीत अपने तकनीकी विस्तार के कारण जन-जन में रच बस गया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Gray, C.T. & Bingham, C.W. (1929). A comparison of certain Phases of musical ability of coloured and white Public School Pupils. J.Ed. Psychol. 20, 501-506.*
2. *Earhart, will & Gatto, Frank M., (1933). An experimental study of creative work in public school music. (Doctoral Dssertation), 44-56.*
3. *Johnson, G.B. (1931). A Summary of Negro: Scores on the Seashore Musical Talent Test (Klinberg). Journal of Comp. Psy., 11, 383-393.*
4. *Johnson, G.B., Hazel L. (1940). Creative song writing in the elementary school. (Masters Dissertation). Fitchburg State Teacher's College, Fitchburg.*
5. *Doig, Dorothea (1942). Creative music. J.Ed. Res., 35, 344-355.*
6. *Horacek , Leo (1963). Programmed instructions in music. R. Psycolo. Music, 1(2), 1-6.*
7. *Spohn, Charles L. (1963-65). Programming the basic materials of Music for self- instructional development of Aural Skills. J. Res. Music Ed., 7(1), 1-10.*
8. *Masin (1979). Creativity and teacher's effectiveness quest in education. (Unpublished Doctoral Thesis). Meerut University, Meerut.*
9. *Ho, Y.C., Cheung, M.C. & Chan, A.S. (2003). Music training improves verbal but not visual memory: Cross-sectional and longitudinal explorations in children. Neuro Psychology, 17, 430-450.*
10. *Jennifer Copley (2008). Psycology of classical music: Research on mood, intelligence, learning epilepsy and Mozart effect. Retrieved from http//:www.jennifercopley.suite101.com/thepsychologyofmusic*
11. *Adena Portowitz, Osnat Lichtenstein, Ludmula Egorova and Eva Brand (2009). Underlying mechanism linking music education and cognitive modifiability. Research Studies in Music Education, 31(2), 107-128. doi: 10.1177/1321103X09344378*
12. *वर्मा, सतीश (2004). संगीत चिकित्सा. आगरा: राधा पब्लिकेशन।*
13. *बसंत (1991). संगीत विशारद. हाथरस: संगीत कार्यालय।*
14. *शर्मा, श्री राम (1998). वाड;मय (19) शब्द ब्रह्म नाद ब्रह्म (द्वितीय संस्करण). मथुरा: अखंड ज्योति संस्थान।*
15. *शाह, शोभना (1998). संगीत शिक्षण. आगरा: विनोद पुस्तक मंदिर।*
16. *गर्ग, लक्ष्मीनारायण (1989). निबंध संगीत. हाथरस: संगीत कार्यालय।*

भारत में महिला कामगारों को प्रदत्त संवैधानिक एवं विधिक अधिकार : एक परीक्षण

डॉ. पंकज गुप्ता
व्याख्याता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली

shodhshree@gmail.com

मानव सभ्यता के विकास कालक्रम में मानव अधिकार की अवधारणा एक अहम् पड़ाव के रुप में विशेष महत्त्व रखती है। ये ऐसे उत्कृष्ट अधिकार हैं जो मनुष्य को न केवल मनुष्य के रूप में अपितु सम्पूर्ण समाज के सदस्य के रुप में सांस्कृतिक, नैतिक व भौतिक उन्नति के अवसर प्रदान करते हैं। मानव अधिकारों का प्रत्यक्ष संबंध मानव के आत्मसम्मान, गरिमापूर्ण जीवन व स्वतन्त्रता से है। वस्तुत: मानव अधिकार स्वयं में अन्तर्निहित, अपृथक्करणीय एवं वैश्विक हैं। मानवाधिकार सभी मनुष्यों, चाहे वो महिला हो या पुरुष के अस्तित्व हेतु अनिवार्य हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो मानव अधिकारों में मानव की संकल्पना में स्त्री व पुरुष दोनों विवक्षित हैं। संयुक्त राष्ट्र के चार्टर की प्रस्तावना में भी यह कहा गया है कि ''हम संयुक्त राष्ट्र के लोग......मूलभूत मानवाधिकारों में व्यक्ति की गरिमा और मूल्यों में पुरुष और स्त्री के समान अधिकारों में आस्था व्यक्त करते हैं।''[1] लेकिन यह कटु सत्य है कि सभ्य मानव समाज का आधा भाग आज भी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है।

महिला मानवाधिकारों के सन्दर्भ में एक विशेष तथ्य है कि लम्बे समय तक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रुप से वंचना व उचित स्तर के सम्मान के अभाव के कारण यह वर्ग समाज की मुख्यधारा से पृथक हो हाशिये पर चला गया। अत: सामान्य मानवाधिकार का प्रयोग व स्तर इनके लिए कोई विशेष अर्थ नहीं रखता है, वहीं दूसरी ओर महिलाओं की अपनी विशिष्ट शारीरिक पहचान है जो उसे पुरुषों से पृथक करती है। अत: महिलाओं की उपेक्षा एवं अधिकारों के हनन ने राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महिलाओं के मानवाधिकारों की आवश्यकता के विमर्श के प्रत्यय को विकसित किया है। महिलाओं के प्रति लैंगिक विभेद एवं पूर्वाग्रह से ग्रस्त दृष्टिकोण का फैलाव श्रम के क्षेत्र में भी प्राचीन समय से लेकर वर्तमान तक सतत् रुप से जारी है। महिलायें समाज के आर्थिक एवं सामाजिक ताने-बाने का संयुक्त रुप से महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं किन्तु समाज में उनके द्वारा किये कार्य को पुरुषों के समान महत्त्व दिया जाना अभी तक शेष है।

महिला कामगारों के सामाजिक-आर्थिक अधिकार उनके मानवाधिकारों के एकीकृत एवं अपृथक्करणीय अंग हैं। वैश्विक परिदृश्य में महिला कामगारों की ऐतिहासिक प्रस्थिति, परम्परावादी समाज, प्रतिकूल आर्थिक परिस्थितियाँ और समाज के कार्यों में अधिक भागीदारी के बावजूद अधिकांश देशों द्वारा उनके आर्थिक-सामाजिक अधिकारों की वास्तविक प्राप्ति हेतु गंभीर नीतिगत प्रयास नहीं किये गये। अत: अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों विशेषकर संयुक्त राष्ट्र संघ एवं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा विभिन्न चार्टरों, अभिसमयों, घोषणाओं, एवं सम्मेलनों के माध्यम से महिला कामगारों के मानवाधिकारों के संरक्षण व प्रोन्नयन हेतु एक संरचनात्मक ढाँचे का निर्माण किया गया है। वहीं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न संवैधानिक उपबंधों एवं अधिनियमों के माध्यम से महिला कामगारों को उनके मूलभूत मानवाधिकारों को उपलब्ध करवाने का प्रयास किया गया।

 ISSN 2277-5587

महिला कामगारों के मानवाधिकारों की संरचना : भारतीय परिप्रेक्ष्य

प्राचीन काल से महिलाएँ विभिन्न आर्थिक क्रिया कलापों में संलिप्त रही है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् वैश्विक स्तर पर सामाजिक संरचना में आये बदलाव के अनुरुप भारत में भी महिलायें रोजगार की तलाश में घर से बाहर निकलीं। इससे महिलाओं की प्रस्थिति में तो सकारात्मक परिवर्तन हुये किन्तु साथ ही कार्य स्थल पर लैंगिक विभेद एवं शोषण के रुप में विभिन्न समस्याऐं उत्पन्न हुई। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न अभिसमयों, प्रस्तावों, घोषणाओं व अनुशंसाओं के अनुरुप ही भारतीय संविधान निर्माताओं ने महिला कामगारों के मानवाधिकारों को सुरक्षित करने हेतु विभिन्न संवैधानिक उपबंधों की संरचना की। साथ ही क्रियान्वयन स्तर पर दृष्टिगोचर कमियों को दूर करने हेतु केन्द्र व राज्य स्तर पर सरकार द्वारा विभिन्न अधिनियमों का सृजन किया गया जो महिला कामगारों की प्रस्थिति एवं उनके मानवाधिकारों की संरक्षा करते हैं।

(I) संवैधानिक अधिदेश

महिला कामगारों के भारतीय संविधान निर्माताओं द्वारा मानव अधिकार से संबन्धित अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों, चार्टरों, घोषणाओं और संविदाओं में उद्घोषित अधिकारों को संविधान में मूल अधिकारों (भाग-3) और नीति निर्देशक तत्वों (भाग-4) में स्थान दिया गया है साथ ही कामगारों के मानवाधिकारों से संबंधित विषयों का उल्लेख संविधान में समवर्ती अनुसूची में किया गया है।

(i) प्रस्तावना

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में एक ऐसे समाज के निर्माण पर जोर दिया गया है जो न्यायोचित हो, जिसमें लिंग आधारित भेद ना हो साथ ही त्रिआयामी न्याय (सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक) सभी को समान रुप से उपलब्ध हो।[1] संविधान ने सब के लिए प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने का प्रावधान किया है।[2] ये लक्ष्य सभी नागरिकों के लिए निर्धारित किये गये है और सभी नागरिकों में महिला और पुरूष सम्मिलित है।

(ii) मौलिक अधिकार (भाग-3)

- अनु. 14 में सभी व्यक्तियों को बिना लैंगिक भेदभाव के विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण का अधिकार प्रदान किया गया हैं। 'समान कार्य हेतु समान वेतन' का अधिकार इस अनुच्छेद में विवक्षित है जिसे न्यायालय द्वारा विभिन्न वादों में मौलिक अधिकारों के रुप में मान्यता दी गई है। साथ ही 'न्यूनतम मजदूरी' का अधिकार भी अनुच्छेद 14 में अन्तर्निहित है।
- अनुच्छेद 16 नियोजन में अवसर की समानता का उपबन्ध सभी नागरिकों के लिए करता है। इसमें लिंग के आधार पर कोई भेद-भाव नहीं हो सकता। किन्तु यदि आवश्यक हो तो महिलाओं को विशेष सुविधाऐं प्रदत्त करने हेतु प्रावधान किये जा सकते हैं।
- अनुच्छेद 19 (1)(c) कतिपय युक्तियुक्त निर्बन्धनों के साथ सभी नागरिकों को संघ बनाने का मौलिक अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 21 में अधिकथित 'जीवन के अधिकार' में आजीविका अर्थात 'काम' का अधिकार सन्निहित है। साथ ही इसमें कार्य की मानवीय दशाएं एवं शोषण न होना सम्मिलित है।
- अनचछेद 23 मानव व्यापार, बेगार और बलातश्रम के सभी प्रकारों को निषिद्ध कर दण्डनीय अपराध घोषित करता है। संविधान का अनुच्छेद 35 भारतीय संसद् को अनुच्छेद 23 में निषिद्ध कार्य हेतु दण्ड देने के लिए अधिनियम की संरचना हेतु अधिकृत करता है।

(iii) नीति निर्देशक तत्व (भाग-4)

- अनुच्छेद 39(क) के अन्तर्गत पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रुप से आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार है।
- अनुच्छेद 39(घ) के अनुसार पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन होना चाहिए।
- अनुच्छेद 39(ड़) में राज्य को ऐसी आर्थिक नीतियां निर्मित करने को कहा गया है जिससे स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य व शक्ति का दुरुपयोग ना हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आयु व शक्ति के अनुकूल ना हो।
- अनुच्छेद 41 राज्य की आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने का अधिकार प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 42 के अनुसार राज्य महिला कामगारों के लिए काम करने की न्याय संगत व मानवीय परिस्थितियाँ उपलब्ध करवाने एवं मातृत्व सहायता हेतु उपबन्ध करेगा।
- अनुच्छेद 43 कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी अर्थात न्यूनतम मजदूरी का प्रावधान करता है जिसमें सामान्य जीवन स्तर, काम की दशाएं, अवकाश इत्यादि अर्न्तनिहित हैं।
- अनुच्छेद 43(क) के अनुसार राज्य उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करेगा।

(iv) मूल कर्त्तव्य (भाग-4 क)

- संविधान का अनुच्छेद 51 (क) (ड़) भारत के समस्त नागरिकों पर यह कर्त्तव्य अधिरोपित करता है कि वे ऐसी प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरूद्ध हैं।[4]

(v) संवैधानिक अनुसूची

भारतीय संविधान में श्रम समवर्ती सूची और संघीय सूची दोनों का विषय है। अत: केन्द्र व राज्य दोनों ही इससे संबंधित विषयों पर कानून बनाने में सक्षम हैं। इसी आधार पर बड़ी संख्या में श्रम अधिनियमों का विरचन हुआ है।

अनुसूची में श्रम सम्बन्धी विषय

संघ सूची	समवर्ती सूची
खानों और तेल क्षेत्रों में श्रम और सुरक्षा का विनियमन (संख्या-55)	व्यापार संघ : औद्योगिक एवं श्रम विवाद (संख्या-22)
संघ के कर्मचारियों से संबंधित औद्योगिक विवाद (संख्या-61)	सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा : नियोजन और बेकारी (संख्या- 23)
संघ के अभिकरण और संस्थाओं हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण (संख्या-65)	श्रमिकों का कल्याण जिसके अन्तर्गत कार्य की दशाएँ, भविष्य निधि, नियोजन का दायित्व, कर्मकार प्रतिकर, अशक्तता और वार्धक्य पेंशन तथा प्रसूति सुविधाएँ हैं (संख्या-24)

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय संविधान के विभिन्न प्रावधान ना केवल महिलाओं हेतु पुरुषों के समकक्ष समानता की आवश्यकता को इंगित करते हैं अपितु उनकी विशेष आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए कुछ विशेष संरक्षण प्रदान करते हैं। इन्हीं संवैधानिक आधारों की अनुपालना में समय-समय पर महिला कामगारों के हितों के संरक्षण हेतु विभिन्न अधिनियमों की संरचना हुई है।

(II) महिला कामगारों के विधिक अधिकार

भारत में श्रम एवं रोजगार से संबंधित अधिनियम प्रमुखत: औद्योगिक कानून की विस्तृत श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।[1] इस श्रेणी में महिला कामगारों को उनके अद्वितीय गुणों (शारीरिक, मानसिक व जैविक) के आधार पर विशिष्ट स्थिति प्रदत्त की गई है। वस्तुत: भारत में अधिनियमों की संरचना के सृजन में समाज में कामगार महिलाओं की उपेक्षित, भेदभाव कारी एवं कमजोर सामाजिक और व्यावसायिक प्रस्थिति को केन्द्र में रखा गया है। ये श्रम अधिनियम संयुक्त राष्ट्र संघ एव अर्न्तराष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा अंगीकृत महिला कामगारों से संबंधित विभिन्न पहलुओं यथा कार्य की दशाएं, समान कार्य हेतु पुरुष कामगारों के समान पारिश्रमिक, स्वास्थ्य सुरक्षा, मातृत्व सुविधाएं इत्यादि पर आधारित अभिसमयों, अनुशंसाओं एवं उद्घोषणाओं की दिशा में ही विस्तार मात्र हैं। महिला कामगारों के हितों के संरक्षण हेतु संरचित विभिन्न अधिनियमों को अग्रांकित प्रकार से विभाजित कर सकते है-

(i) स्वास्थ्य एवं सुरक्षा सम्बन्धी प्रावधान

- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 22(2) के अनुसार किसी स्त्री को किसी मूलगति उत्पादक या संचरण मशीनरी के किसी भाग की, जब मूलगति उत्पादक या संचरण मशीनरी गति में हो तो उसके किसी भी भाग की सफाई, स्नेह या समायोजन करने की अनुमति नहीं होगी क्योंकि ऐसा करने पर उस महिला को मशीन से अथवा आसपास की मशीन से घायल होने का अंदेशा होगा।
- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 27 के अन्तर्गत रुई दबाने के कारखाने में किसी ऐसे भाग में जिसमें रुई-धुनकी चल रही है, महिला श्रम को प्रतिबन्धित किया गया है।
- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 34(1),(2) के अन्तर्गत सरकार द्वारा महिला कामगारों द्वारा उठाये जाने वाले वजन की अधिकतम सीमा का निर्धारण करने को अधिकथित किया गया है।
- ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 की धारा 19 के अनुसार ठेकेदार महिला कामगार हेतु काम के दौरान एक प्राथमिक उपचार पेटिका की व्यवस्था करेगा जिसमें आवश्यक वस्तुएं होंगी।

(ii) रात्रिकालीन कार्य निषेध सम्बन्धी प्रावधान

- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 66(1) (बी) के अन्तर्गत किसी भी महिला को किसी भी कारखाने में सुबह 6 बजे से लेकर शाम 7 बजे के अलावा काम करने हेतु अनुज्ञात नहीं किया जा सकता।
- बीड़ी और सिगार कामगार (रोजगार की शर्तें) अनिधियम, 1966 की धारा 25 के अनुसार किसी भी महिला को सुबह 6 बजे से लेकर शाम 7 बजे के मध्य के अतिरिक्त किसी भी समय औद्योगिक परिसर में काम करने की अनुमति नहीं है।
- खान अधिनिमय, 1952 की धारा 40(1) (बी) में महिलाओं को किसी भी जमीन के उपरी खदान में सुबह 6

बजे से लेकर शाम 7 बजे के बीच के समय के अतिरिक्त काम करने की अनुमति नहीं है।

(iii) मातृत्व प्रसुविधा सम्बन्धी प्रावधान

- प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम, 1961 विभिन्न स्थापनों में बच्चे के जन्म के पूर्व और पश्चात् की कतिपय कालावधियों में स्त्रियों के नियोजन को विनियमित करने तथा प्रसूति प्रसुविधा और कतिपय अन्य प्रसुविधाओं का उपबंध करने हेतु अधिनियमित किया गया है।
- भवन एवं अन्य निर्माण कर्मकार (विनियमन व रोजगार की शर्तें) अधिनियम, 1996 महिला लाभार्थी को मातृत्व लाभ हेतु कल्याण निधि प्रदान करता है।

(iv) पृथक शौचालय संबंधी प्रावधान

महिला कामगारों हेतु पृथक शौचालय और पेशाबघर का प्रावधान अग्रलिखित अधिनियमयों के अन्तर्गत आता है-

- ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 के अध्याय 5 की धारा 18
- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 19
- अन्तर्राज्यीय प्रवासी कर्मकार अधिनियम, 1980 की धारा 42

(v) पृथक धुलाई की सुविधाओं संबंधी प्रावधान

- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 42(1) के अनुसार महिला कर्मकारों के नहाने और धुलाई हेतु पृथक और पर्याप्त पर्देदार सुविधाओं की व्यवस्था की जाए।
- ठेका श्रम (विनियमन और उत्सादन) अधिनियम, 1970 की धारा 18 के अन्तर्गत महिला श्रमिक को धुलाई की सुविधाएं प्रदत्त हैं।
- अन्तर्राज्यीय प्रवासी कर्मकार (केन्द्रीय नियम), अधिनियम, 1979 की धारा 431

(vi) शिशु गृह की सुविधा संबंधी प्रावधान

महिला कामगारों के छः वर्ष तक के बच्चों की देखभाल हेतु शिशु गृह का प्रावधान अग्रलिखित अधिनियमों में विहित है-

- कारखाना अधिनियम, 1948 की धारा 48
- खान अधिनियम, 1952 की धारा 20
- अन्तर्राज्यीय प्रवासी कर्मकार (केन्द्रीय नियम) अधिनियम, 19796 की धारा 44
- बागान श्रम अधिनियम, 1951 की धारा 9
- बीड़ी और सिगार कामगार (रोजगार की शर्तें) अधिनियम, 1966 की धारा 25
- भवन एवं अन्य निर्माण कर्मकार (रोजगार और सेवा की शर्तों का विनियमन) अधिनियम, 1996 की धारा 35

(vii) अन्य प्रमुख प्रावधान

- **कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948**

  यह भारत के सामाजिक सुरक्षा कानूनों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस अधिनियम द्वारा बीमित महिला कामगारों को बीमारी प्रसुविधा, निःशक्तता प्रसुविधा, चिकित्सा प्रसुविधा और अंत्येष्टि पर व्यय हेतु अन्त्येष्टि प्रसुविधा प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त महिला कामगारों को प्रसूति प्रसुविधा के अन्तर्गत प्रसवावस्था की, आकस्मिक गर्भपात की, समयपूर्व शिशु जन्म या गर्भपात से उद्भूत बीमारी की दशा में सहायता प्रदत्त की जाती है। बीमित महिला कामगार की प्रसूति काल में मृत्यु होने की दशा में उसके आश्रितों को सहायता राशि प्रदान की जाती है।[7]

- **समान पारिश्रमिक अनिधियम, 1976**

  यह अधिनियम पुरुष और स्त्री कर्मकारों को समान प्रकृति के कार्य हेतु समान पारिश्रमिक का संदाय करने और नियोजन में लिंग के आधार पर स्त्रियों के विरुद्ध विभेद किए जाने का निवारण करने हेतु अधिनियमित किया गया है। इसके अन्तर्गत भर्ती के पश्चात्[8] अर्थात नियोजन के दौरान महिला कामगारों से सेवा की शर्तों में भी विभेद नहीं किया जा सकता है, जैसे पदोन्नति, प्रशिक्षण, स्थानान्तरण इत्यादि।

उपर्युक्त विवेचना से महिला कामगारों को उनके अधिकारों के संरक्षण, सुनिश्चियन एवं प्रोन्नयन हेतु विभिन्न श्रम अधिनियमों में उनकी विशिष्ट शारीरिक बनावट एवं कार्यक्षमता के अनुरुप विभिन्न प्रावधान विरचित किये गये हैं लेकिन इसके बावजूद भी अशिक्षा, जागरुकता की कमी, श्रम अधिनियमों के क्रियान्वयन में कमी एवं लक्ष्य आधारित योजना के अभाव के कारण अधिकारों व योजनाओं के लाभ तक उनकी वास्तविक पहुँच नहीं है। महिला कामगार अभी भी सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में शोषण एवं विभेद से पीड़ित हैं। अधिकांश श्रम कानून संगठित क्षेत्र में लागू हैं जबकि महिला कामगारों का बड़ा वर्ग असंगठित क्षेत्र में कार्यरत है और जहाँ लागू है वहाँ भी इनके निरीक्षण और प्रवर्तन हेतु आवश्यक मशीनरी अप्रभावी व अपर्याप्त है। एक ओर इन कानूनों का विस्तार असंगठित क्षेत्र की ओर करना होगा वहीं वर्तमान कानूनों में आवश्यक संशोधन करने होंगे साथ ही नियोक्ताओं द्वारा महिला कामगारों के प्रति अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा तभी उनकी मानवाधिकारों के प्रति संचेतना में वृद्धि होगी और उनकी स्थिति में सुधार होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संयुक्त राष्ट्र का चार्टर, अनुच्छेद (3)*
2. *गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस, द कान्सटीट्यूशन ऑफ इंडिया; प्रियम्बल*

3. टी.टी. त्रिपाठी, मानव अधिकार, इलाहाबाद लॉ एजेन्सी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 2009, पृ. 126
4. गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ लॉ एण्ड जस्टिस, द कान्सटीट्यूशन ऑफ इंडिया: पार्ट IV ए
5. मेमोरिया, मेमोरिया, इन्डसट्रियल लेबर, सोशल सिक्योरिटी एण्ड इन्डसट्रियल पीस इन इंडिया, किताब महल, इलाहाबाद, 1984, पृ. 136
6. गोस्वामी, वी.जी., लेबर एण्ड इंन्डस्ट्रीयल लॉज, सेन्ट्रल लॉ ऐजन्सी, इलाहाबाद, 2008, पृ. 245-309
7. हसन, एन. द सोशल सिक्योरिटी सिस्टम ऑफ इंडिया, फर्स्ट एडिसन, एस.चान्द एण्ड कम्पनी (प्रा.) लिमिटेड, न्यू देहली, 1972, पृ. 2-3
8. भारतीय राजपत्र, समान पारिश्रमिक संशोधन अधिनियम, 1987 की धारा 21

 ISSN 2277-5587

Impact of Tourism on Environment of Jim Corbett National Park

Madan Mohan Joshi
Assistant Professor, Uttarakhand Open University,
Haldwani, Nainital (Uttarakhand)

shodhshree@gmail.com

The Jim Corbett National Park is India's Oldest National Park located at the foothills of the lofty Himalayas in the state of Uttarakhand, and with administrative centre in the town of Ramanagar District Nainital. The park is known for its diverse wildlife, and as the site for the launching of Project Tiger. The Corbett National Park and the adjoining Sonanadi Sanctuary form the Corbett Tiger Reserve. Jim Corbett National Park lies in the Nainital, Pauri Garhwal and Bijnore Districts of Uttarakhand.

Initially Jim Corbett National Park measured merely 323.75 square kilometers, but to accommodate wild animals like Tigers and Elephants, it was expanded to its present area of 520 square km. (core area) in 1966.The present area of the Corbett Tiger Reserve is 1318.54 sq. km. including 520 sq. km. of core area and 797.72 sq. km. of buffer area. The core area forms the Jim Corbett National Park while the buffer contains reserve forests (496.54 sq. km.) as well as the Sonanadi Wildlife Sanctuary (301.18 sq. km.)

The core is bounded to the North by the Kanda Ridge, with a height of 1043 m at its highest point. The entire area of Corbett Tiger Reserve is mountainous and falls in the Shivalik and Outer Himalaya geological region. It forms the catchments area of the Ramganga, a tributary of the Ganga.

The Ramganga River flows from East to West in the reserve through landscapes of incredible beauty, dammed at Kalagarh at the south western end of the reserve in 1974. The reservoir created, submerged 40-sq. km. of prime grassland. The area on the western side of the reservoir now constitutes the Sonanadi Wildlife Sanctuary.

India's first and finest park, established initially as Hailey National Park on August 8, 1936, in honour of Sir Malcolm Hailey, then governor of the United Provinces, the name was changed to Ramganga National Park in 1952. In 1957, it was finally named as Corbett National Park in honour and memory of the late Jim Corbett, the legendary hunter, naturalist-turned-author and photographer who had helped in setting up the park and demarcation its boundaries.

Biodiversity at Jim Corbett National Park

The park inhabits-

- 110 Species of trees,
- 51 Shrubs,
- 27 Climbers,
- 37 Grasses and bamboos
- 50 Endemic species of mammals,
- 600 Species of birds,
- 26 Reptiles,
- 07 Amphibians.

The Corbett National Park is an excellent and largely inviolate specimen of the rich SAL and mixed woodland that spans the outer Himalayas. Because of its rich bio-geographic diversity, the Park is a natural heaven for the flora and fauna of the plains, the sub mountainous regions and high altitude areas.

Fauna

At the lower level are winding strips of alluvial grasslands or Chaurs (beloved to many species of deer) crossed by numerous water resources. The lifeline of the Park is the sparkling Ramganga River, which provides safe harbor to Mahaseer fish, crocodile and otter. Stately stands of Sal and diverse mixed forest cover hills and valleys, fodder and foliage for large herds of elephants. Sharp spurs in the terrain make it an idyllic habitat for shy species like the tiger.

The incredible variety of mammals, birds and vegetation at Corbett reveals one of the healthiest 'food chains' this side of the world. Almost all the major groups of animals known to exist in the Himalayan Terai and the Bhabar foothills region are found here. The abundance of the prey species determines the presence and survival of the predators. As the abundance of diverse vegetation supports myriad species, from avian to mammal.

Apart from the Bengal Tigers and Elephants, the wildlife in the Corbett National Park includes Himalayan Palm Civet, Indian Gray Mongoose, Common Otter, Blacknaped Hare and Porcupine. Besides the huge herds of elephants, one can also discover the two varieties of crocodiles – Gharial and Mugger – on the banks of Ramganga River. The leopards are mostly found in the hilly terrains of the National Park contrary to the sloth bear, which is found in the lower regions of the park. The national park also consists of the cat family like Leopard Cat, Jungle Cat and Fishing Cat. The Dole or Wild Dog and Jackal are found in the southern parts of the national park. The Langur and Rhesus Monkeys are also quite common in the Corbett national park.

The great variety of habitat in Jim Corbett National Park is reflected in its impressive diversity in the bird life. Over 600 species, many of them rare and endangered, have been recorded in and around the Jim Corbett National Park. These include nearly fifty kinds of birds of prey that provide a unique character to the avifauna.

This inherent richness in bird life increases even further during winter with the arrival of numerous migrants –some, like osprey and ducks, coming all the way from East Africa, Europe and Central Asia. Winter also brings many Himalayan birds from higher regions that come to take refuge in Corbett to escape the extreme conditions in the mountains above. These include many flycatchers, great barbet and the wall creeper.

The park, with its rich bio geographic diversity, is home to more than 600 species of birds – about half of the total species found in the entire Indian subcontinent. You can see parakeets, owls, orioles, drongos, thrushes, babblers, bulbuls, cuckoos, doves, bee eaters, rollers, flycatchers, warblers, robins, chats, finches, forktails, hornbills, kingfishers and many more. It is also possibly one of the best places in the world for observing birds of prey. About 50 species out of the total 70 odd species found in South East Asia live in the park. The numerous water bodies provide an ideal habitat for ducks and waders.

Many of these birds are migratory: The park forms a natural crossroad and meeting ground for avian species from high altitude areas, plains and eastern and western regions. Because of this unique location, the bird population is pretty high throughout the year, with winter visitors,

summer visitors, altitudinal migrants, passage migrants and local migrants. Even the fringes of the park are eminently rewarding. All you need is a pair of binoculars for hours – and even days – of fascinated bird watching.

The Corbett Park is the best place in Northern India to observe Asiatic elephants at fairly close quarters. About 300-350 Asiatic elephants roam around the park in herds, along the river Ramganga or foraging in the grasslands. The forests provide the elephants enough food. The elephant's daily diet is perked up with wild berries and fruits, which are available in plenty. A great delicacy is the plant rohini (mallotus phlippensis), which is favoured by elephants when they are in the 'mast' condition. It cools them down!

Jim Corbett National Park is home to many species of freshwater fish. The Ramganga, Palain, Sonanadi and Mandal rivers provide vital habitat and breeding grounds for them because of moderate temperature, low gradient, presence of deep pools and boulders and gravel on stream beds, and negligible pollution. Fishes form a fundamental link in the food chain for many key species like the gharial, otters, fish-eagles, kingfishers, ospreys, storks, fish-owls, egrets, darters and pelicans.The most celebrated of the fishes is the Golden Mahaseer (Torputitora), a large freshwater river fish belonging to the carp family. It has a magnificent appearance – sap green body with bright orange scales. Mahaseer is considered to be one of the most prized fish for anglers all over the world.

Clean water, which is increasingly becoming rare, is the prime habitat requirement for the Mahaseer fish. Its population has declined due to loss of habitat. Loss of breeding grounds also possesses a threat because Mahaseer fish require shallow, clear, well-oxygenated water for spawning, which again is hard to find these days. Decline of Mahaseer fish is also due to construction of dams on their migratory routes, obstructing access to favoured spawning areas upstream. The Ramganga River is one of the best-preserved rivers for Mahaseer fish in India. Other important fish species of Jim Corbett National Park are Goonch (Bagarius bagarius), Indian trout (Barilius bola) and Rohu (Labeo rohita). Sustainable angling, as opposed to intensive fishing, benefits conservation of prized fishes like Mahaseer. Angling is allowed in certain areas in the buffer region of Jim Corbett National Park after taking permits from the Forest Department.

The main attraction of the Jim Corbett National Park is the Tiger. Existence of Jim Corbett National Park is based on Tiger. One of the Tiger reserved areas in India. The elusive tiger is perhaps the most celebrated of the wild animals of Jim Corbett National Park. It symbolizes raw power of nature and finds an important place in our culture, mythology and legends. It has been worshiped as the guardian and ruler of the forest.

Today this perfect carnivore is a critically endangered species, though once it roamed freely in most of Asia. India is home to the largest population of wild tigers in the world. There are estimated to be only 5000 to 7500 tigers surviving in the world. Out of these, the subspecies found in the Indian subcontinent, the Bengal tiger has 3000 to 4500 surviving members, more than three- fourths of which are in India.

The terai-bhabar region, including Jim Corbett National Park, was once the best place to find tigers but this habitat has reduced tremendously due to development. The tiger has always had a close association Corbett National Park earlier through the writings of Jim Corbett and other shikaris and later because of the launch of Project Tiger, India's tiger conservation programme, initiated from the Parks soil on 1st April, 1973.

Tigers hunt deers and wild boar. Tigers choose the largest of the prey species since larger prey represents more energy for the effort spent. For this reason the Sambar population density is believed to be a good indicator of the presence of tigers. Occasionally tigers will also attack young of elephants and take smaller species, including monkeys, birds, reptiles and fish.

Adult tigers are usually solitary, except for females with cubs. However, sometimes several are sometimes seen together. Generally, both female and male tigers maintain home ranges that do not overlap with the home range of another tiger of the same sex. Females have home ranges of approximately 20 sq. km while those of males are much larger, covering 60-100 sq. km. Tigers home ranges cover the territory of many smaller female home ranges. Tigers protect his territory and the females within it from competing males.

To mark their territories, tigers use several means of advertising this fact. Urine and anal gland secretions are sprayed on trees, bushes and rocks in various places throughout a particular area. Tigers also make claw marks on trunks of trees. Such markings help avoid physical confrontation since any intruders in the territory recognize the owners scent and generally keep out. Among the large cats in India tigers have the greatest reputation as man-eaters. Several legendary man-eating tigers have been known, especially during the terai-phabar region. Such tigers have been immortalized through the writings of Jim Corbett. For examples, the Champawat tiger is said to have killed 434 people before Colonel Jim Corbett finally succeeded in killing it. However, in recent times, with the huge decline in the numbers of tigers, attacks on humans have been relatively rare. Man-eating is usually the result of the tiger's inability to catch usual prey when it is too old to hunt or if it has an injury.

Being a carnivore and a master predator, the tiger lies on top of the food pyramid. It keeps the population of ungulates under control and thus maintains the ecological balance. The tiger is an indicator of a healthy wilderness ecosystem. If the tiger is protected, our forests will also live. And forests mean good air and plenty of freshwater.

The Leopard (Panthera pardus) is the other large cat found in Jim Corbett National Park. Compared to the tiger leopards are smaller, more graceful and have a long agile body that has rosettes instead of stripes. It also has the ability to limb trees. Leopards are quite versatile, adaptable to a variety of terrains as well as to a broad range of prey that includes everything from insects and rodents up to large ungulates. Leopards mostly hunt during twilight hours and at night. They also ambush their prey by jumping down from trees.The leopard's call is termed as 'saw'. Sawing can be described as a short rasping vocalization. When living near populated areas leopards will attack and kill livestock and domestic dogs. Sometimes, they also attack humans. In spite of leopards being highly adaptable, they face many problems in survival. This includes habitat destruction, poaching for their skins, and persecution as killers.

Jim Corbett National Park has two of India's three crocodilian species. It is considered to be one of the best spots to see the Gharial (Gavialis gangeticus), one of the largest and most endangered crocodilians of the world. It is found only in the Indian subcontinent. It gets its name from the 'ghara' or pot like structure on the snout that is present only in males.

The gharial's slender snout is adapted to eat fish so it does not attack humans or larger mammals. Young gharials may eat invertebrates and insects. About 100 gharials live in the Ramganga River and can be seen swimming in its deep pools or basking in the sun on its banks. These were released as part of the conservation programme for gharials. Though it has been saved from extinction, the gharial is still critically endangered. The main threats are – loss of habitat (fast-flowing rivers) and nesting sites (sandbanks) due to construction of dams and barrages, which changes the flowage of water and exploitation of fish by humans (depletion of prey species). The still waters of Jim Corbett National Park, especially the Ramganga reservoir, are home to the Mugger crocodile (Crocodylus palustris). Muggers are more general carnivores and take a variety of animals as food. Muggers are also found in Nakatal, Jim Corbett National Park's only lake.

Jim Corbett National Park has four species of deer. They are the most frequently sighted large mammals in Jim Corbett National Park. Chital

ISSN 2277-5587

(Axis axis) or Spotted deer is the commonest of deer species of Jim Corbett National Park. It is also the most beautiful, with characteristic white spots on its reddish-brown body. Only male chital have antlers that may grow up to 1 m length. These antlers are periodically shed and a new set developed every time. Chital live in large herds and are usually seen in open grasslands. Grasses from the main food for chital but they also depend on fallen fruits, flowers and leaves from forested areas. They prefer to graze in short grasslands without much cover because in such areas they can watch out for predators like tigers. Tree cover is also required as shelter and source of food. Chital are most active in early morning and evening and rest in cool places during the heat of the day. They give alarm calls to warn the herd when a potential threat or predator is sensed. Chital are ecologically important because they form an important prey base for carnivores like leopards and tigers. They also help in dispersal of plant seeds including grasses and also tree and shrub species like amla, ber, etc.

Para or Hog Deer (Axis porcinus) is the rarest of Jim Corbett National Park's deer. It is closely related to the chital but is smaller in size. Unlike most other deer, the hog deer is not given to leaping over obstacles but instead, it escapes its predators by crouching low, ducking under obstacles, its limbs are short and its hind legs are longer than the four legs. This anatomy raises its rump to a higher level than the shoulders. This species mostly inhabits grasslands, swampy areas and clearings and is usually nocturnal. Unlike chital, hog deer are solitary animals but sometimes feed in small groups. Hog deer face the threat of habitat destruction, especially draining of swampy areas and change in water regimes.

Sambar (Cervus unicolor) is the largest deer found in Corbett. Its body is largely a uniform grayish-brown in colour, except for the creamy white on the backsides and under-tail areas. Males have antlers up to 1 m long that are periodically shed and replaced. Male sambar also has dense manes on their necks. Sambar is mostly found in dense forests with a gently sloping to steep topography. They are known to reach altitudes as high as 3,700 m. Samber browse on leaves, berries, fallen fruit, leaves and tender bark of young trees, and also graze on grasses and sedges. These deer are mostly active solitary but may be found in small groups during the mating season. They let out a loud, repetitive alarm call when they sense a threat. Trackers to locate tigers use these signals.

Sambar is the most important prey species for the tiger and presence of Sambar usually indicates a good tiger habitat. Kakar or Barking Deer (Muntiacus muntjak) is the smallest of Corbett's deer. The body colour is golden tan on the dorsal (upper) side and is lighter on the undersides. Male Kakar have short antlers growing on long, bony projections called burrs. In place of antlers, females possess only bony knob-like burrs on their head. Males also have tusk-like upper canine teeth curving sharply outwards from the lips. Kakar are mostly found in areas having dense vegetation and hilly terrain. They prefer to be close to water-sources. Kakar are omnivorous and feed on herbs, fruit, grass, tree-bark and also birds, eggs and small animals. They are solitary and quite territorial.

There are two other species of primates found in Jim Corbett National Park. The Rhesus Macaque (Macaca mulatta) is the commonest monkey of the Indian subcontinent. It lives in a wide range of hanitats – from plains to the Himalayas at elevations up to 3000 m – and is quite adaptable to humans. Its body is earthy brown in colour and buttocks are reddish. The Rhesus is quite a lively and vocal animal. It lives in large troupes of up to two hundred individuals. Large dominant males (called alpha males) lead these groups. It is omnivorous, and often eats roots, herbs, fruits, insects, crops, and small animals. Hanuman or Common Langur (Semnopithecus entellus) has an unmistakable appearance – a light body, dark face and a very long tail. It is considered to be sacred in many parts of India and is found in many environments, from desert edge to forests. Langurs are vegetarian and feed mainly on leaves, buds, flowers, fruit and seeds. Feeding activity is

generally in the early morning and late afternoon.Like monkeys, langurs too live in troupes led by dominant males. In the trees, they are remarkably agile and can make horizontal leaps of 3-5 m.

Himalayan Goral or Ghural (Nemorhaedus goral) is a goat-like animal that occurs in the Himalayas between 1,000 to 4,000 m. It lives in small groups on sparse mountainous slopes and cliff faces with crevices. It is remarkably sure footed and can move at high speeds even over near vertical terrain. Goral are active at dawn and dusk when they come to feed on grasses, leaves, twigs, nuts and fruit. Mostly grey to brown in colour, the goral has a lighter coloured 'bib' at the base of the neck and sports short, conical, backward-curving horns having irregular ridges. Goral are well camouflaged, and thus are very difficult to spot, especially when they are still.

Wild boar (Sus scrofa) is the ancestor of the domesticated pig that lives in moist forests and scrub. It has long, curved canine teeth (called tusks) that are used for digging food and as weapons. Wild boar feed on roots, tubers, fruits, shrubs, bird eggs, insects, mice, snakes, frogs and carrion. They usually move in groups both at day and night.

The Asiatic Jackal (Canis aureus) is a member of the dog family. It is found in open country, short grasslands and has also adapted to living near human settlements. It comes out during the night to forage for food. Its omnivorous diet consists of deer fawns, rodents, hares, birds, eggs, reptiles and amphibians and various fruits especially ber and jamun. The jackal is also an opportunistic scavenger, readily raiding garbage bins.

Corbett is one of the few places in India where three species of otter are found exiting together. Otters are an important component in the ecology of the Park, especially the Ramganga and its tributaries. Otters are indicators of a healthy river ecosystem. These small carnivores are a part the aquatic food chain and live mostly along riverbanks, spending a lot of their time in water. They make dens among rocks and boulders along perennial streams and rivers. The species of otter occurring in Corbett Park are Eurasian or Common otter (Lutra Lutra monticola), Smooth-coated otter (Lutra perspicillata) and Small-clawed otter (Aonyx cinerea). Fish forms the majority of the otters diet, except in case of Small-clawed otter, which primarily feeds on insects and other invertebrates. Otters face threat of elimination of habitat due to construction of dams, intensive fishing, quarrying in rivers for stone and gravel and land use changes for agriculture or prawn cultivation. Poaching in the hilly regions of India for otter skins is also a threat.

Flora

The different habitat types of Jim Corbett National Park i.e. mountains, sal forests, chaurs, khair-sissoo forests, and rivers have their distinct assemblage of plants. The most visible trees found in Jim Corbett National Park are sal, Sissoo and Khair. Many other species that contribute to the diversity are found scattered throughout the Jim Corbett National Park. Chir pine is the only conifer of the Jim Corbett National Park and is found on ridge-tops like Chir Choti but comes quite low in Gajar Sot. The upper reaches near Kanda have Banj Oak growing, which is essentially a Himalayan species. Palms include Date palm that grows in open areas. Kanju (Holoptelia integrifolia), Jamun (Syzygium cumini) and Aamla (Emblica officinalis) are found scattered moist areas. Other major tree species are-

- Bel
- Kusum
- Mahua
- Bakli

Flowering trees lend colour to the forests in Jim Corbett National Park. The main ones are Kachnaar (Bauhinia variegate) with pink to white flowers, Semal (Bombax ceiba) with big red blooms, Dhak or Flame-of-the-forest (Butea monosperma) with bright orange flowers, Madaar or Indian Coral (Erythrinia indica) with scarlet red flowers and Amaltas (Cassia fistula) with bright yellow chandelier like blooms. Some

ISSN 2277-5587

species of trees that do not occur naturally in the Park have been artificially planted in and around habitation. These include -

- Teal (Tectona grandis)
- Eucalyptus,
- Jacaranda
- Silver Oak
- Bottlebrush
- Grasses

Grasses form the largest group of plant species in Jim Corbett National Park with more than 70 species recorded. They occupy different habitats, especially chaurs. They include -

- Kansi
- Themeda arundinacea
- Baib or Bhabar
- Narkul
- Tiger Grass
- Khus Khus

In some parts of Corbett the vegetation is dominated by bamboo forest. The main species is Male Bamboo having clustered stout stems and shining papery stem sheaths. Bamboos follow a peculiar flowering process. All bamboos in a forest flower together at the same time once in several decades. After flowering, fruiting and dispersal of seeds, all plants die together.

Shrubs dominate the forest floor. There are several species of Ber found in open areas that provide food and habitat to many birds and animals. Maror phalli is an easily noticeable shrub. Its fruits are in the form of twisted spiraling pods. Karaunda with pinkish-white flowers and sour fruit is found under sal. Hisar or Hisaloo has yellow, juicy, berry-like fruits that are savored by animals. Jhau is found along the Ramganga basin on sandy or rocky soil in Jim Corbett National Park.

Rivers

For the survival of such a remarkable gamut of floral and faunal species water is a crucial factor in Jim Corbett National Park. The Ramganga River forms the most prominent hydrological resource, supplemented by tributaries, most prominent of which are the Sonanadi, Mandal and Palain rivers. The river Kosi runs proximate to the Park and is also a significant water resource for nearby areas of Corbett National Park. Wildlife is dependent on rivers; more so in the dry season, for they provide drinking waters and also forms home to several key aquatic species of Corbett National Park.

Ramganga River is crucial for Jim Corbett National Park in fact without it there would be no Jim Corbett National Park. It is the largest of the precious few perennial sources of water in the Jim Corbett National Park. A rain-fed river origination near Gairsain in the Lower Himalayas, the Ramganga traverses more than 100 km before entering Jim Corbett National Park near Marchula. Inside the Jim Corbett National Park it flows roughly 40 km till Kalagarh where it enters the plains. During this run through the Jim Corbett National Park it gathers water from the Palain, Mandal and Sonanadi rivers. The Ramganga River is inhabited by key aquatic species like mahseer fish, the endangered gharials, mugger crocodiles, otters and turtles. Many species of birds, like Kingfishers, fish-eagles, terns and storks depend on the Ramganga River. During winters the Ramganga reservoir attracts many migratory bird species, especially waterbirds from Europe and Central Asia.

The Kosi River is a perennial river like the Ramganga and its catchment lies partially in Jim Corbett National Park. From Mohan through Dhikuli till Ramnagar, the kosi forms the eastern boundary of Jim Corbett National Park. Even though the kosi does not enter the Jim Corbett National Park boundary, wild animals from Jim Corbett National Park use it for drinking especially during pinch periods. Its bed is strewn with boulders and its flow is erratic and often changes course. Kosi is notorious for its unpredictable and damaging torrents during monsoon. Like Ramganga, the Kosi River too is inhabited by mahseer fish and attracts migratory birds.

The Sonanadi River is an important tributary of

the Ramganga River. Named after this river the Sonanadi Wildlife Sanctuary adjoins Jim Corbett National Park and forms an important part of the Corbett Tiger Reserve. The Sonanadi enters the Jim Corbett National Park from the northwest direction and meets the Ramganga at eh reservoir. The name Sonanadi means river of gold. At one time grains of gold, found in the alluvial deposits washed down from the higher areas, were extracted from the bed sand by sieving washing and mercury treatment.

The Mandal River rises in the eastern heights in Talla Salan in Chamoli district. Forming a part of the northeastern boundary, Mandal River flows for 32 km and joins the Ramganga River at Domunda a little distance above Gairal. During the dry season, the Mandal River contains very little water but during the monsoons it turns into a furious torrent. It forms a vital breeding ground for the endangered mahseer fish. The Palain River is the third important tributary of the Ramganga River and enters the Jim Corbett National Park from a northern direction. It meets the Ramganga about 3 km north of the Ramganga reservoir.

Sots

Sot is the local name for a seasonal stream. While traveling across the Jim Corbett National Park you may cross several of these bouldery dry streams. Though most of them appear dry and lifeless, they are very important for the Jim Corbett National Park ecology. Animals depend on these sots for their drinking water requirements for a good part of the year. There are some sots in Jim Corbett National Park that are perennial, important ones being Paterpani, Laldhang, Kothirao, Jhirna, Dhara and Garjia. Since water is a limiting factor, these perennial sots provide water to wildlife during pinch periods. Many of these sots are covered with thick growth of evergreen shrubs and bamboo clumps which form ideal shelter for many animals including the tiger.

Impact of Tourism on Environment of Jim Corbett National Park

Now a day Tourism is a matter, which is causing concern to all environmentalists all over the world. The increasing rate of tourism putting strain on local Natural resources, Environmental parameters are often threatened due to increase in the nature based tourism as this kind of tourism is very close to environment. There is an Inter Relationship between environment and tourism affecting the parameters of each other. Tourism widely effects the environment working as creational or damaging forces. Tourism industry creates jobs, earn foreign exchange by attracting foreigners, and generate opportunities for small-scale business development. But it is only the one side of coin, tourism adversely affect the environment in the sense tourist activities correlated with environment and any false step directly affect the environment. The development of tourism has innumerable impact on environment. Often tourists and tourism promoters are potentially destructive to the local environment, due to lack of awareness of local conditions, both social & natural. Using resources in inappropriate amount also encourage environmental degradation.

Tourism is worthy aspect for Jim Corbett National Park's Environment in most of the cases. The revenue came from tourism (Like Gate pass, Permit for visiting etc.) is spent for protecting & maintaining the equilibrium of the environment. The official department of Jim Corbett National Park spread the awareness among local people & Tourist about importance of maintaining integrity of environment. The stats provided by the department about the current state of wild life in the park shows the success of the department in protecting wildlife and environment from certain damaging forces, which might generate from tourism in that reason.

How Tourism Affect's the Biodiversity of National Park

Tourism is one of the world's fastest growing industries as well as the major source of foreign exchange earnings and employment for many developing countries, and it is increasingly focusing on natural environments. However, tourism is a double-edged activity. It has the potential to contribute in a positive manner to

socio-economic achievements but, at the same time, its fast and sometimes uncontrolled growth can be the major cause of degradation of the environment and loss of local identity and traditional cultures. Biological and physical resources are in fact the assets that attract tourists. However, the stress imposed by tourism activities on fragile ecosystems accelerates and aggravates their depletion. Tourism and the environment have a very complex and interdependent relationship. Negative effects caused by tourism industry can be very costly to the National Parks and its biodiversity.

For the Jim Corbett National Park as well as other Biosphere reserve of country, the effects include pollution, plant extinction, inadequate sewage and waste disposal system, deforestation. This doesn't seem like a lot, but as the time goes by, the problem intensifies especially if there is nothing done about it. Local community suffers as well, through shortages of water and natural resources. The main problems centered on the Jim Corbett National Park via increasing rate of Tourism activities are following:

The Effects of Increasing Population and Consumption

The visiting population and residential population around Jim Corbett National Park has more than tripled in Last twenty years – Although the impact is rather different if the transient population increases at this rate than if the permanent population does, an increase in the tourist population of this magnitude poses very similar challenges and problems as any other kind of population increase.

The heavy flow of tourists is also related to the pollution of the environment. Ordinary things that we usually don't dwell on very much can have severe consequences on such National Park. The excessive use of Buses, Jeep for transport people to and from the National Park, growing number of vehicles contributes to pollution. This is a serious threat to National Park of such proportions, the areas available to people are highly sensitive to the wastes produced by the vehicles and sewers which are dumped into the environment of the Park.

National Park inadequate sewage disposal system has been the cause for worries for some time now, throughout the Residential Areas. Even though the large hotels don't have treatment plants; the effectiveness of such is very questionable. All the wastage is allow flowing towards river otherwise Discharges from the sewage systems are usually dumped into the river water, which causes a lot of damage to the marine life of rivers i.e. rehabilitation of Mahaseer fish etc. Both residents and tourists use river waters as a dump, not only by resort areas, but also directly. The river floor was littered with bottles, plastic cups etc.

Decline in Biodiversity

The current decline in biodiversity of the National Park is a serious threat. The human activity causing the loss of biodiversity in many sided. The conversion of more and more land to agriculture and resort areas leads to loss of habitats that are crucial to animals and plants; disappearance of tropical forests, pollution and construction works also contribute to loss of habitat. Due to the increasing demand of tourism industry, more land is being converted to resort areas and new roads. Such hotel and road constructions lead to the destruction of dune barriers and natural environment. Resort developments of the area, deforestation, as well as increasing load of tourism cause wildlife of National Park give up their environment and move further away from their original habitat. They have to adopt to new areas of living, adjust to overcrowding overpopulation in one region, and adjust to scarce food and water supply. The tourism industry is responsible for wildlife relocation, but sometimes is the reason that animal and plants become extinct. In such cases nature is ruthlessly destroyed, and often it is not even known how particular animal and plant species were wiped out. Collection of plants or careless use of fire can destroy plant life. Littering causes changes in soil nutrients, affecting vulnerability of the plants. For example, the wipe

out of trees and forests in the islands means that the floods during rainy season can be very damaging and may be even deadly for the animals.

References

1. *Nature Reserves of the Himalaya and the mountains of Central Aisa, IUCN 1993, pp 170-176.*
2. *Bedi R., Corbett National Park, Clarion Books, Delhi, 1984.*
3. *Dillon Ripley S and Ali S. , Pictorial Guide to the Birds of the Indian Subcontinent, BNHS, 1995.*
3. *Dr. Kumar, Girish, Land or Roar and Trumpet, Sanctuary, Sept. – Oct. 1994.*
4. *Corbett National Park: A Golden Jubilee Celebration 1936-1986.*
5. *Sinclair et al, Insight Guide to Indian Wildlife, Insight guides, 1990.*
6. *Corbett Jim, Man Eaters of Kumaon, Oxford University Press.*
7. *Brochure, Corbett National Park: Rest Houses and Facilities*
8. *Grewal and Sahgal, Birds of Corbett Tiger Reserve, Oriental Bird Club, 1996.*
9. *www.jimcorbettnationalpark.com*
10. *www.corbettpark.com*
11. *www.uttaranchal.ws/corbett.htm*
12. *www.answers.com*

ISSN 2277-5587

A Comparative Study of Adjustment of Secondary School Students

Dr. Jitendra Kumar
Lecturer, Hira Inter College,
Mehandipur, Rampur (Uttar Pradesh)

shodhshree@gmail.com

Secondary education is that level of schooling that falls between the elementary education and higher education. Since this stage of education coincides with the adolescent period, it becomes the most crucial period. This stage is characterized by intensive psycho-physiological and socio-emotional changes. Many students face many problems and fail to make adjustments in life. The term adjustment means a state of harmonious relationship between a person and his environment. It is a continuous process by which a person changes his own behaviour or tries to change his environment or bring change in both to produce satisfactory relationships with his environment. It exhibits how efficiently an individual performs his duties in different circumstances. Symond writes, "Adjustment can be defined as a satisfactory relation of an organism to its environment". According to Shaffer, "Adjustment is the process by which a living organism maintains a balance between its needs and the circumstances that influence the satisfaction of these needs".Thus, adjustment is that process which makes an individual enable to reduce the strains and to cope up with the different circumstances and situations of the life.

Adjustment is the harmonious relationship between the person and the environment to fulfil his demands and needs. C. V. Good defines, "Adjustment is the process of finding and adopting modes of behavior suitable to the environment or the changes in the environment". Haloren and Santrokdefined adjustment as "the psychological process of adapting in coping with, managing their problems, challenging tasks and requirements of daily life". Adjustment is an important factor to complete a person's goal. It refers to the ability of an individual to fit into his environment.

In this rapid changing world of science and technology, students want to achieve more and more in all the aspects of life. The unfulfilled desires and the expectations of the students with himself, his family, his friends and his society lead them towards stress, tensions, frustrations as well as maladjustment. They find themselves to make adjustment in their relationships, academic and social demands. Due to this, they choose the wrong path sometimes and reach

to the extent of drugs and alcohol use and even suicidal attempts. We can document such type of situations in newspapers, magazines, articles etc. which present the adverse conditions of the students due to their inability to make adjustment with their problems and situations. All this struck the mind of the investigator, which compelled him to study the adjustment of secondary school students of district Rampur.

Review of The Related Literature

Adjustment has profound impact on the overall behaviour of the individuals. Many researches have been done which throw light on the adjustment of the students. Agarwal (2003) compared the adolescents' level of adjustment in relation to the academic success and failure. It was found that successful adolescents were significantly superior in their social emotions and educational adjustment. Singh (2006) examined the effects of socio, emotional and socio emotional climate of the school and sex on the adjustment of students along with their interactions effects. Boys were significantly better than girls in their health adjustment at different levels of socio-emotional climate of the school. Raju and Rahamtulla (2007) examined the adjustment of rural and urban school students of Visakhapatnam district In relation to their age, gender, class, type of school etc. They found that adjustment of school children is related to the class, medium of instruction, and the type of the school. It was also found that parental education and occupation also significantly influenced their adjustment.

Gehlawat (2011) studied the adjustment of high school students with respect to their gender. No significant differences were found in the emotional, social, educational and the total adjustment of students with respect to their gender. Parmar (2012) investigated the adjustment of secondary school students of Gandhi Nagar district. Effect of gender and category was found significant on the adjustment of secondary school students. Yellaiah (2012) found that government and private schools students as well as rural and urban school student do not differ significantly in their adjustment. It is also found that there is a low positive relationship between adjustment and academic achievement. Chauhan (2013) revealed that there is significant difference in adjustment of higher secondary schools students. Female students have good adjustment level as compared to their male counterparts. Ganai and Mir (2013) found no significant difference between male and female college students in terms of their adjustment.

Researches clearly state the importance of the impact of student's adjustment on their academic achievement.Haider (1990) noticed a close relationship between adjustment and academic achievement of the children. Gurubasappa (2009), Surekha (2008) and Halpern (1991) pointed out that a significant positive high correlation exists between academic achievement and adjustment. Yengimolki et al. (2015) revealed that the better adjustment of the people will lead them to the progress in their life. It was indicated that academic achievement is positively correlated with their adjustment. In some studies contradictory findings have also been found which state no relationship between adjustment and academic achievement of the students. Duttaet et al. (2014) revealed that adjustment of the children does not significantly affect their academic achievement and educational aspirations. Rajkonwar et al. (2015) revealed that there existed no relationship between academic achievement and adjustment among visually handicapped children. Thus, the different studies lead to different generalization. Therefore the research has taken the present study in hand with the purpose to study the adjustment of secondary school students.

Objectives

The present study was undertaken with the following objectives:

- To compare the adjustment of rural and urban secondary school students.
- To compare the adjustment of rural secondary school boys and girls.

ISSN 2277-5587

- To compare the adjustment of urban secondary school boys and girls.
- To compare the adjustment of rural and urban secondary school boys.
- To compare the adjustment of rural and urban secondary school girls.

Hypotheses

- There is no significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school students.
- There is no significant difference in the adjustment of rural secondary school boys and girls.
- There is no significant difference in the adjustment of urban secondary school boys and girls.
- There is no significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school boys.
- There is no significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school girls.

Method

Normative survey method has been adopted in the present study.

Population and Sample

For the present study, the sample of 120 secondary school students of district Rampur (U.P.)was selected through stratified random sampling technique. The sample included the students of rural (60) and urban area (60) of district Rampur. The sample consisted of equal number of boys and girls. The sampling frame work is presented below:

Sampling Framework

Sample	Area	Sex	No. of students	Total
Secondary School Students	Rural	Boys	30	60
		Girls	30	
	Urban	Boys	30	60
		Girls	30	
	Total		120	120

Tools

In the present study "Adjustment Inventory for School Students" developed by Sinha and Singh was used to collect the data on adjustment. It contains 60 items and measures adjustment in three areas: emotional, social and educational. The lower score indicates the higher adjustment.

Statistical Techniques

The obtained data were analysed using mean, S.D. and t-test.

Results and Disscussion

In this part, the results of research are given. The findings can be summarized as follows:

Table – 1
Comparison of Adjustment of Rural and Urban Secondary School Students

Variable	Area	N	Mean	S.D.	df	t-value	Results
Adjustment	Rural	60	17.65	8.36	118	2.38*	Significant
	Urban	60	21.56	9.64			

**** = significant at 0.05 level of significance***

The above table shows the comparison of adjustment of rural and urban secondary school students. At df 118, the t-value to compare the adjustment of rural and urban secondary school students is 2.38, which has been found significant at 0.05 level of significance. It means that there is a statistical significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school students.

Mean values show that rural secondary school students are more adjusted as compared to their urban counterparts.

Thus, the null hypothesis that ***"there is no significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school students"*** is rejected.

Table – 2
Comparison of Adjustment of Rural Secondary School Boys and Girls

Variable	Sex	N	Mean	S.D.	Df	t-value	Results
Adjustment	Boys	30	22.56	9.05	58	5.60**	Significant
	Girls	30	12.73	3.22			

***** = significant at 0.01 level of significance***

The above table shows the comparison of adjustment of rural secondary school boys and girls. At df 58, the t-value to compare the adjustment of rural secondary school boys and girls is 5.60, which has been found significant at 0.01 level of significance. It means that there is a highly statistical significant difference in the adjustment of rural secondary school boys and girls. Mean values show that rural secondary school girls are more adjusted as compared to their male counterparts.

Thus, the null hypothesis that ***"there is no significant difference in the adjustment of rural secondary school boys and girls"*** is rejected.

Table – 3
Comparison of Adjustment of Urban Secondary School Boys and Girls

Variable	Sex	N	Mean	S.D.	Df	t-value	Results
Adjustment	Boys	30	18.43	9.67	58	2.64**	Significant
	Girls	30	24.70	8.69			

** = significant at 0.01 level of significance

The above table shows the comparison of adjustment of urban secondary school boys and girls. At df 58, the t-value to compare the adjustment of urban secondary school boys and girls is 2.64, which has been found significant at 0.01 level of significance. It means that there is a highly statistical significant difference in the adjustment of urban secondary school boys and girls. Mean values show that urban secondary school boys are more adjusted than urban secondary school girls.

Thus, the null hypothesis that "there is no significant difference in the adjustment of urban secondary school boys and girls" is rejected.

Table – 4
Comparison of Adjustment of Rural and Urban Secondary School Boys

Variable	Area	N	Mean	S.D.	Df	t-value	Results
Adjustment	Rural	30	22.56	9.04	58	1.71	Insignificant
	Urban	30	18.43	9.67			

ISSN 2277-5587

The above table shows the comparison of adjustment of rural and urban secondary school boys. At df 58, the t-value to compare the adjustment of rural and urban secondary school boys is 1.71, which has been found insignificant. It means that rural and urban secondary school boys do not differ significantly in their adjustment. Thus, the null hypothesis that "there is no significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school boys" is accepted.

Table – 5
Comparison of Adjustment of Rural and Urban Secondary School Girls

Variable	Area	N	Mean	S.D.	Df	t-value	Results
Adjustment	Rural	30	12.73	3.22	58	7.07**	Significant
	Urban	30	24.70	8.69			

** = significant at 0.01 level of significance

The above table shows the comparison of adjustment of rural and urban secondary school girls. At df 58, the t-value to compare the adjustment of rural and urban secondary school girls is 7.07, which has been found significant at 0.01 level of significance. It means that there is a highly statistical significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school girls. Mean values show that rural secondary school girls are more adjusted than urban secondary school girls.

Thus, the null hypothesis that "there is no significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school girls" is rejected.

Conclusions

Following conclusion can be drawn from these results:

- A statistical significant difference has been found in the adjustment of rural and urban secondary school students. Rural secondary school students are more adjusted in comparison to their urban counterparts.
- A highly statistical significant difference has been found in the adjustment of rural secondary school boys and girls. Rural secondary school girls are more adjusted than boys.
- There has been found a highly statistical significant difference in the adjustment of urban secondary school boys and girls. Urban secondary school boys are more adjusted than urban secondary school girls.
- Rural and urban secondary school boys have not been found to differ significantly in their adjustment.
- There has been found a highly statistical significant difference in the adjustment of rural and urban secondary school girls. Rural secondary school girls are more adjusted than urban secondary school girls.

References

1. *Agarwal, K. (2003). A Comparative Study of Adolescents Level of Adjustment in relation to the Academic Success and Failure, Indian Journal of Psychometric and Education, Vol. 34 (2), Pp. 172-176*
2. *Chauhan, V. (2013). A Study on Adjustment of Higher Secondary School Students of Durg District, OSR Journal of Research & Method in Education (IOSRJRME), Vol. 1, Issue 1, Pp. 50-52*
3. *Ganai, M.Y. and Mir, M.A. (2013). A Comparative Study of Adjustment and Academic Achievement of the Students, Journal of Educational Research and Essays, Vol. 1(1), Pp. 5-8*
4. *Gehlawat, M. (2011). A Study of Adjustment among High School Students in relation to their Gender, International Referred Research Journal, Vol. III ,Issue-33*
5. *Good, C. V. (1959, Ed). Dictionary of Education, New York: Macmillan*

6. Gurubasappa, H.D. (2009). Intelligence and Self-Concept as Correlates of Academic Achievement of Secondary School Students, Edutracks, 810, Pp.42-43

7. Haider, S. I. (1996).A Comparative Study of Some Related Psychological Characteristics and Academic Achievement of Blind Children,Ph. D Dissertation, Guwahati University, Guwahati

8. Halonen, J. and Santrock, J. (1997). Human Adjustment (2nd ed.), Madison Brown and Benchmark

9. Halpern, J. (1991). A Comparative Study of Adjustment Difficulties of American Male and Female Students in Israeli Institutions of Higher Learning, Dissertation Abstracts International, 529, Pp. 3182A

10. Parmar, G.B. (2012). A Study of Adjustment of the Secondary School Students, International Indexed & Referred Research Journal, Vol. IV, Issue 41

11. Rajkonwar, S.; Dutta, J. and Soni, J. C. (2015). Adjustment and Academic Achievement of Visually Handicapped School Children in Assam, International Journal of Science and Research (IJSR), Volume 4, Issue 4, Pp. 1228-1235

12. Raju, M.V.R. and Rahamtulla, T.K. (2007). Adjustment Problems among School Students, Journal of the Indian Academy of Applied Psychology, Vol. 33, No.1, Pp.73-79

13. Shaffer, L. F.'s Article in Boring, Langfield and Welb (1961, Eds.). Foundation of Psychology, New York: John Wiley, P. 511

14. Singh, H. (2006). Effect of Socio-emotional Climate of the School on the Adjustment of Students, Psycho lingua, 36, No. 2, Pp.133-143

15. Surekha (2008). Relationship between Students Adjustment and Academic Achievement, Edutracks, 77, Pp.26-31

16. Symonds, P. H. (1946). The Dynamics of Human Intelligence, New York: Appleton Century Crofts, Inc

17. Yellaiah (2012). A Study of Adjustment on Academic Achievement of High School Students, International Journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research, Vol. 1, No. 5, Pp. 84-94

18. Yengimolki, S.; Kalantarkousheh, S.M and Malekitabar, A. (2015).Self-Concept, Social Adjustment and Academic Achievement of Persian Students, International Review of Social Sciences and Humanities, Vol. 8, No. 2, Pp. 50-60

ISSN 2277-5587

Creating Space for Peace: Sufi abodes amidst political chaos

shodhshree@gmail.com

Dr. Veenu Pant
Assistant Prof., Kanoria P.G. Mahila Mahavidyalaya, Jaipur

Peace is most of the times a social need rather than a political wisdom. Rulers may prefer war over peace but the society always will have a natural inclination towards peace. The turbulent Middle Ages of India when two nations were merging with each other is often remembered by friends and foes alike as times of blood ravaged land, mass massacre and conversions. Islam was introduced in India at Sword tip and its expansion within Indian Territory and its initial history of expansion from Hindu Kush (The land of death for Hindu's) to Bengal is written in blood soaked pages with the tears of conquered race.

The devastated Indian society was unable to seek consolation in its present political status; they were unable to identify themselves with these new rulers. Two radically opposing religious thoughts were pitched together in a small space to either survive or perish; annihilation of opposers was a choice with the rulers but for the ruled the only feasible option seemed to be to retreat in a cocoon of their making and try to save whatever they could from these invaders of their land, life and religion. The times were indeed difficult and the initial response of Hindu's of trying to assimilate Islamic thought into the ever expanding Hindu philosophy by calling Allah as an avatar(Incarnation) of Vishnu failed in the face of strict monotheism and Iconoclastic tendencies of Islamic thought. This paper is a study of transition from the India of Ghori to the India of Akbar, the assimilation, the reconciliation, the process of birth of one nation by merging of Hindu and Muslim traditions. The resultant cultural synthesis gave rise to the national culture which we now identify as Indian. The quest is to study the elements of synthesis and the urge for peaceful coexistence which made it possible.

First Muslim invasion of India took place around 664 CE during the Umayyad Caliphate, led by Al Muhallab ibn Abi Suffrah towards Multan in Southern Punjab, in modern day Pakistan. From then onwards the Indian sub continent was raided and looted several times and the gradual influx of Muslim invaders was responsible for Muslim settlement in India.

This encounter with Islam was a totally new experience for the Indians as for the first time in the long history of India the population was faced with a mass of people who were neither ready to accept Hindu philosophy as their own nor willing to be absorbed in the vast philosophy of the land which already contained varied elements of Hindusim, Buddhism, Jainism and many nameless foreign influences which it had encountered since ancient times due to repeated foreign invasions.

For Islam too the Indian experience was a novel one as for the first time they were to encounter a race which was not ready to be completely subjugated. The mass conversion of faith and culture which had been a common feature elsewhere was not applicable in India. Temple destruction, imposition of taxes like jizya, keeping out the majority population from all administrative posts and governance etc were not enough to coerce Hindu's into forsaking their religious beliefs and thus even after a long period of Muslim subjugation they remained a minority in the land.

The initial impact with Islam was blood soaked and horrifying, battered and defeated the Hindu population sought shelter in deep religious faith and tried to identify the causes of their misery in Bhakti. Bhakti means complete devotion to God, a questionless surrender to his will and complete faith in his righteousness. This devotion was not new to Hindusim and neither was Islamic monotheism, it was just that their form of extreme monotheism was not compatible with polytheistic devotional of Hinduism which did believe in unity of truth but also in the truth of its different manifestation.

During these turbulent times when Hinduism was already seeking solace in devotion the mystic trend in Islam, known as Sufism attracted lots of common people towards its simple virtue and loving nature. While the devastated population could not understand the sheer violence and terror raged by Muslim invaders they were attracted by the Mystic romanticism of Sufi saints. The advent of Sufism in India is said to be in the eleventh and twelfth centuries. One of the early Sufis of eminence, who settled in India, was Al-Hujwari who died in 1089, popularly known as Data Ganj Baksh (Distributor of Unlimited Treasure).

In the beginning, the main centres of the Sufis were Multan and Punjab. By the thirteenth and fourteenth centuries, the Sufis had spread to Kashmir, Bihar, Bengal and the Deccan. The Sufis came to India via Afghanistan on their own free will. Their emphasis upon a pure life, devotional love and service to humanity made them popular and earned them a place of honour in Indian society.

12th century onwards as Sultanate rule started establishing itself firmly many Sufi saints entered India and made it their home. 1192 Khwaja Moinuddin Chishti came to India along with Shiabuddin Ghori, another Islamic invader, and settled down in Ajmer where his shrine is still worshipped and revered by millions of Indians, both Hindus and Muslim. The Chisti sect of Sufism in India is further represented by Nizamuddin Auliya, Sheikh Salim Chisti, and Malik Muhammed Jayasi etc. These Sufi saints were tolerant of Hindu faith and in their quarters India found its new identity in true terms.

Sultanate period of Indian history is full of wars and coercion. The resultant friction in society was as much due to Islamic rejection of Hindu faith as due to Hindu rejection of invaders beliefs. Forceful conversion on sword point did not help either. The result was that both the societies started catering to extreme orthodox elements and such development was retarding the social thought and assimilation. Hindu population was unable to understand such brutal force but they were ready to understand Sufi mysticism. Quiet akin to Vaishanav thought among Hindu's Sufism was one touch of healing balm after scorching fire of Islamic invasion.

The Sultans of Delhi based their laws on the Quran and the Islamic sharia and permitted non-Muslim subjects to practice their religion only if they paid the jizya (poll tax). They ruled from urban centers, and while military camps and trading posts

ISSN 2277-5587

provided the nuclei for towns that sprang up in the countryside Sufi settlements provided a shelter for those who were seeking devotion and social assimilation.

During times of heavy political and economic oppression, the only option for the poor was complete and total submission to the will of "God" which often meant sacrificing all their religious will autonomy in favour of the Islamic clergy, (who rarely challenged political authority), and more often than not, were largely beholden to the rulers who chose to support and promote them. When the clergy did resist political authority, it often tended towards social conservatism and reaction rather than social progress. Islamic rulers taxed the Hindu peasantry at significantly higher rates. If the average rate of taxation during the pre-Islamic period varied between 10% to a maximum of 20% - averaging around 15-16%, it had increased to 33% or even more under the Mughals.

While all early Islamic invaders and rulers insisted on the discriminating jizya, it was extracted in most insulting and painful way. Court chronicler of the Delhi Sultanate often describes the violent means adapted to suppress peasant rebellions and extract the high taxes from the crushed peasantry. While the peasantry of doab was required for continuous influx of money in the state coffers the means of collection and coercion were justified by the fact that it was necessary to keep the majority Hindu population under control. Punishment for those who rebelled meant loss of adults (particularly young women) and children to slavery, mass massacres or forced evacuations of entire villages and small towns, pillage and destruction of places of learning, of temples and other symbols of cultural identification, and denial of job opportunities in the courts. The mutual distrust was such a ruling factor during the early years of Islamic rule that Hindu's were kept out of administration completely.

One look at the social scenario of that age and we are able to visualise a society which is trying to seek its identity in its own land, which ironically was now no longer its own to call for. The foreigners who had conquered and captured their land were making them pay taxes to prophess their own religion. The neo converts were also finding it hard to accept the strictly monotheistic book based worshipping of Islam. We find references in history where it is said that neo muslim were often caned by Maulvi's to make them accept the habit of regular prayer as hindu religion lacked any such ritualistic regime of prayers and obeyance and so these people were not used to regularity of worshipping. Everywhere there was a great psychological need for a platform of mutual agreement.People were seeking solace in Bhakti and the mystic devotional love of Sufism provided them a common ground between two radically opposing faiths. The Hindu inclination towards Sufism was a natural reaction of its engrained cultural values of Peace and mutual harmony. Faced with opposition in materialistic world they turned towards devotion and Sufism which with its stress on pure devotion seemed familiar enough.

Cultural synthesis takes place in hearts, no ruler can force cultural acceptance, Muslim rulers were converting prisoners of war, defeated rulers and enslaved masses but the more they advanced the more Hindu's retreated in their shell of orthodox protection. While they called Hindu's as infidels they were shunned by Hindu's as Mallech, meaning impure. No society can survive on such hatred for long. India defeated and prostrated would have followed the path of other Middle Eastern and European nations where the very cultural identity of natives along with their religious faith was completely destroyed and changed by these Islamic invaders. Had the ideal of peaceful coexistence not been so inherent to Indian culture nothing could have prevented an all out war and complete destruction of national identities. This is what sets India as unique in their interaction with Islam. The culture of peace pervaded all realms and Indian masses sought social peace in the Khankahas of Sufi saints. The trauma of defeat was lessened by the identification of similarities in devotion. The

pangs of losses were muted through promises of gain in form of Sufism. Indian culture was able to seek peace amidst carnage in the mud plastered houses of saints and a new nation was born.

Sufi orders that entered India were not all free from political patronage or motives but the most popular orders of Chishti and Shattari saints were free from such lurings and thus of the various Sufi orders, Muslims of India prominently follow Chistiyya order and the impact of Chisti order is visible even in small villages of Indian subcontinent. Kwaja Moin-ud-Din Chisti, a disciple of Khwaja Abu Abdal Chisti, the propounder of this order introduced it in India. Born in Afghanistan in 1142 AD, he came to India with the army of Shihab-ud-Din Ghuri in 1192 AD and selected Ajmer as his permanent abode since 1195. His shrine became a place of pilgrimage largely with the support of Muslim rulers. Akbar used to have annual pilgrimage there.

Four Islamic mystics from Afghanistan namely Moinuddin (d. 1233 in Ajmer), Qutbuddin (d. 1236 in Delhi), Nizamuddin (d.1335 in Delhi) and Fariduddin (d.1265 in Pattan now in Pakistan) accompanied the Islamic invaders in India. All of them were from the Chistiyya order of Islamic mysticism. Radiating from Delhi under Nizamuddin and following the trail of Mohammad ibn Tughlaq towards the south, the Chistiyya spread its roots all across India. Internationally famous Sufi Shine at Ajmer Sharif in Rajasthan and Nizamuddin Auliya in Delhi belong to this order.

As Sufi literature and practice evolved, there was much that Indians could find oddly reminiscent of what had been emphasized not only by some authors of the Upanishads, or practitioners of Buddhism, but also by Indian folk and devotional saints. In fact, many aspects of Sufi belief systems and practice had their parallels in Indian philosophical literature. Even though most Sufis didn't reject formal religion - allowing that for the average practitioner, day-to-day rituals and traditional religious practices could play a useful role. Nevertheless, Sufis were much less likely to approve of rigid and literalist interpretations of the Quran. "Words cannot be used in referring to religious truth, except as analogy". This sentiment of Hakim Sanai as expressed in his 'The Walled Garden of Truth' echoed what is most immediately evident in the Kena and Chandogya Upanishads.

As Sufi currents flourished in India their social acceptance eased the pain of conversion. The sudden transition was less prominent now as Sufi scholars worried less about Quranic compatibility, and emphasized that there was a spiritual truth that exceeded what could be learned from religious texts. There was an emphasis on spiritual discovery and cultural evolution - through practical experience, through the development of intuition and a sharpened world perspective as opposed to the mere repetition of dogma. As the Sufis synthesized older ideas and philosophical traditions that attracted them - they also transcended them in some ways, adding their own unique insights as they went along.

The Sufi saints in India potrayed and preached divine unity, the vedantic philosophy had many parallels. The social equality offered by them was main force behind conversions which took place within their perview. Even those who did not get converted were now better disposed in their thoughts towards Islam.

These Sufi abodes proved to be the synthesis points of two cultures. Therein was born the language of northern India, Hindavi, which was a mixture of Urdu and Hindi, therein were written the songs that we still sing during various festivities in Hindu families. Once Islam was established, and a measure of stability was achieved in the newly conquered territories, Sufism replaced the bleak and cold environment of the conquered land with the warm touch of devotional love and with the colours of mystic bhakti. Sufis also played important role in the incorporating several aspects from the older Indian traditions in the new culture that was fast developing in form of language, architecture, dresses and devotion etc. They facilitated intellectual development and creativity in the cultural sphere. In India, Sufism was mainly an

ISSN 2277-5587

unintellectual, emotional expression of faith which deeply influenced the Hindu population of the land. It was a reaction against the orthodox faith which was creating a deep rift within the society and thus played a particularly important role in bridging the distance between Islam and the indigenous traditions.

It is within this loving environment of Sufi abodes that we find a pattern of mostly peaceful co-existence which gave rise to a new nation which strived to assimilate best of both. Hindu and Muslim artisans and craftspeople often worked side-by-side and even when they followed different religions, they were able to come to terms with their differences as they were taught that all were equal before god. This was the common message of Sufism and the Hindu Bhakti traditions. It was, therefore, not uncommon for a popular Bhakti saint to have Muslim followers, or a popular Sufi saint to have Hindu followers. Festivals that commemorate such popular saints draw entire communities, cutting across religious lines, even today.

Conversions which were facilitated and encouraged by the preachings of Sufi saints lacked the cutting edge of jihadist conversions. In many instances, peasants and artisans who converted to Islam did not abandon previous religious practices and continued to celebrate popular Hindu festivals. Most Indian converts to Islam had maintained certain continuity with their earlier tradition that enabled a level of mutual tolerance amongst ordinary Hindus and Muslims.

The contribution of the Indian Sufis to society lies in their sincere and dedicated devotion towards the quest of finding a common ground for the two religions to meet. Their appreciation of the multi-racial, multi-religious and multilingual pattern of Indian society helped in establishing a culture son varied and unique of its own that has no parallel else where in the world.

For them God was not a logical abstraction of unity, but a living reality who can be approached through the service of mankind. Their efforts were, therefore, directed towards the creation of a healthy social order free from dissensions, discords and conflicts. It was a herculean task but they undertook it as a divine mission. In love, faith, toleration and sympathy they found the supreme talisman of human happiness.

Their multi cultural and multi religious approach was that brought two societies together. They consciously avoided segregation of different religious groups. Their whole hearted acceptance of Hindu ways of life and worship is expressed in the form of Quawwalis, Natia qalam, and Sufi poetry which enriched Indian literature and became a symbol of Indian culture.

The Sufis in India have played a vital role. They helped in reconciliation of Hindu masses with their political loss, they helped in creation of common identity and they helped in creation of common culture. The culture of peace reigned supreme and the trauma of loss was eased by psychological balms of these mystic saints. India though lost politically was gained in love and social bonding. Today, centuries after the first contact between Islam and India whenever a marriage takes place in a north Indian household the pain of separation experienced by the daughter on leaving her parent's house finds expression in the Vidai song saying:

Kaahay ko biyaahi bides, ray,
lakhia baabul moray,
Kaahay ko biyaahi bides........
Bhayiyon ko diye babul mehlay do-mehlay,
Hum ko diya pardes, ray, lakhia babul......

Meaning:

Why did you part me from yourself, dear father, why?
You've given houses with two stories to my brothers,
And to me, a foreign land? Why dear father, why?

The pain is same, the pangs of separation is same, the song is same for both Hindu and Muslim girls. This song which is a true representative of the cultural synthesis of Indian folks and many such others still sung by masses on all auspicious occasions was written by Amir Khushrau, follower of Sheikh Nizamuddin Auliya, a Sufi saint

of Chishtia order.

Today when a Hindu offers prayer at his village Pir baba's mazar he is not only accepting Islam as a religion of his land he is also accepting the truth of peaceful coexistence made possible by cultural synthesis. Peace that has been attained by mutual recognition and merger of thought as well as culture. Peace that ensured development of a society free from conflicting orthodoxy of different religions. Peace that was socio psychological need of a wounded society. Peace that is perhaps the only way for survival of a society.

References

1. *Indian Islam: a religious history of Islam in India, The religious quest of India by Murray Thurston Titus, Oriental Books Reprint Corp., 1979*
2. *A History of Modern India edited by Claude Markovitz, Anthen Press, 2002*
3. *Contemporary Relevance of Sufism, 1993, published by Indian Council for Cultural relations*
4. *History of Sufism in India by Saiyied Athar Abbas Rizvi, Volume 2, 1992*
5. *The Sufi Orders in Islam by J. Spencer Trimingham, Oxford, 1971*
6. *The Contribution of Indian Sufis to Peace and Amity by K. A. Nizami, in Culture Of Peace, Edited by Baidyanath Saraswati, IGNCA and D. K. Printworld Pvt. Ltd., New Delhi, 1999.*
7. *Religions in Conflict, Ideology, Cultural Contact and Conversion in Late Colonial India by Antony Copley, Oxford University Press, 1997*
8. *The National Culture of India by S. Abid Husain, National Book Trust of India, 2007.*
9. *Sufism In India, Sayyid Amīr Ḥasan 'Ābidī, Wishwa Prakashan, 1992.*
10. *The Big Five of India in Sufism: by Wahiduddin Begg, sn, 1972*
11. *Indian Sufism since the Seventeenth Century: Saints, Books and Empires in the Muslim Deccan, by Nile Green, Routledge, 2006*

ISSN 2277-5587

Literature Review on Sleep Disturbances in People with Mental Retardation

Dr. Narendra Kumar
Sannidhi Institute for Disability Rehabilitation
Koheda, Hayathnagar Mandal, Rangareddy (Telangana)

shodhshree@gmail.com

Mental Retardation (MR) is one of the more common developmental disabilities. It can be idiopathic and challenging to recognize in normal-appearing children who have developmental delays. Conversely, MR can be easily recognized when the child presents with dysmorphic features associated with a known genetic MR disorder. Mental retardation is defined by the American Association on Mental Retardation (AAMR) as "significantly sub-average general intellectual functioning accompanied by significant limitations in adaptive functioning in at least two of the following skills areas: communication, self-care, social skills, self-direction, academic skills, work, leisure, health and/or safety. These limitations manifest themselves before 18 years of age." MR is associated with various syndromes, disorders, and conditions for example; Alstrom Syndrome, Angelman Syndrome, Autism Spectrum Disorders, Bannayan-Riley-Ruvalcaba Syndrome, Bardet-Biedl Syndrome, Beckwith-Wiedemann Syndrome, Cerebral Palsy, Cohen Syndrome, Down Syndrome, Lesch-Nyhan Syndrome, Fragile X Syndrome, Meningomyelocele, Neurofibromatosis, Prader-Willi Syndrome, Rubinstein-Taybi Syndrome, Smith-Lemli-Opitz Syndrome, Smith-Magenis Syndrome, Sotos Syndrome, Storage diseases, Williams Syndrome, Velocardiofacial Syndrome, Shprintzen Syndrome, 22q deletion Syndrome, DiGeorge Syndrome, CATCH-22, X-Linked Adrenoleuko Dystrophy, Zellweger Syndrome (Greydanus & Bhave, 2005; Brier, 1992 and Rauh, 1992).

Review On Sleep Disturbances

Sleep problems are commonly reported by parents of young children. Approximately 25% of typically developing preschool- aged children have sleep problems pertaining to bedtime resistance, sleep onset delays, and night awakenings (Armstrong et al., 1994; Jenkins et al., 1984; Johnson, 1991; Scher et al., 1995). Other less common sleep disturbances that concern parents include night terrors or nightmares and repetitive rhythmic behaviors, which manifest during the toddler-preschool period in some children (Anders et al., 2000). Finally, 1–3% of children experience sleep-disordered breathing (Ali et

al., 1993; Gislason and Benediktsdottir, 1995), a medical condition that also contributes to a reduced quality of sleep. Sleep problems have been broadly classified into three major categories (American Academy of Sleep Medicine., 2001; American Psychiatric Association., 1994): (1) dyssomnias include sleep onset delays and night awakenings, (2) parasomnias include behaviors involving motor and autonomic activation, which intrude on sleep (e.g. night terrors, nightmares, repetitive rhythmic behaviors), and (3) sleep disorders secondary to a physical illness or another psychological disorder. The extant literature has focused primarily on the presence of dyssomnias in both typically developing children as well as clinical samples (Malow, 2004; Sadeh et al., 2002; Wiggs and Stores, 2001).

Review On Sleep Disorders In Persons With Mental Retardation

Very little has been reported about the incidence of sleep problems in persons with mental retardation and other developmental disabilities. Poindexter and Bihm (1994) studied sleep patterns in a group of 103 institutionalized persons with profound mental retardation, almost all adults, and found that 38.8% had persistent patterns of short-sleep over a period of many months. Brylewski and Wiggs (1998) surveyed 205 persons, ages 18 years or over, living in community housing, with a response rate of 85.7%. Results showed problems falling asleep in 26.8%, night waking in 55.6%, parasomnias in 14%, and sleep-related breathing problems in 15%. Parasomnias reported included sleeptalking, tooth grinding, waking screaming, head banging, nightmares, and sleepwalking.

Several reports discuss the incidence of sleep disorders in children with developmental disabilities. Clements et al. (1986) reported an exploratory study of a group of handicapped children which showed some degree of sleep difficulty in over a third of the group. More recently, Richdale et al. (1997) assessed sleep problems in 44 children with developmental disabilities in Australia, compared with a group of 15 children without developmental disabilities. In this study children with developmental disabilities had a greater frequency of sleep problems than control children. Children with Down syndrome had higher incidence of sleep apnea than did others, and children with autism had the most severe sleep problems in the study group. Wiggs and Stores reported in 1996 results from a sleep survey of 209 children ages 5-16 years with severe learning disabilities. Forty-four percent of this sample had a current severe sleep problem most nights or every night, with an average duration of over seven years. Of the 25 children with autism in the group, 17 (68.0%) had reported sleep problems, as did seven of the twelve with cerebral palsy. After careful assessment for general daytime behavior problems, these authors concluded that the children with current sleep disturbance had significantly more daytime behavior problems than did other children.

Shibagaki et al. (1985) studied development of nighttime sleep of 79 children and adolescents with mental retardation, whose ages ranged from six months to 20 years. Polygraphic recordings were carried out while the subjects were in bed, and routine sleep parameters were measured. Total sleep time and percentage of rapid-eye movement sleep decreased, and awake time tended to increase, with age, similar to the pattern seen for age-matched subjects. This group felt that their results indicated that the basic function of the sleep-waking system of children with mental retardation developed normally with age. In contrast, a study was reported from the same centers in the same year (Shibagaki et al. 1985) of sleep patterns in 23 children with cerebral palsy and mental retardation, as compared with 39 children with mental retardation without cerebral palsy. In this latter study, 11 of the children with cerebral palsy and 30 of the children with mental retardation without cerebral palsy had normal sleep patterns. Twelve other persons in the cerebral palsy group and nine of the controls had some abnormal sleep EEG

ISSN 2277-5587

patterns. After extensive analysis they concluded that brain lesion abnormalities seemed to be greater in the children with abnormal sleep patterns than in others.

Okawa et al. (1987) studied chronobiologically four congenitally blind children with severe or moderate mental retardation. Three of these children showed a free-running rhythm of sleep-wake, and the fourth showed an irregular sleep-wake rhythm. They felt that the free-running rhythms in the three children were their own internal rhythms, revealed through some disorder in the brain mechanism supposed to synchronize to the normal 24-hour day. They postulated that the irregular sleep-wake rhythm in the fourth child may have been the result of immaturity or of failure of the pacemaker of the circadian (24-hour) rhythm. They also noted that, because of the severe degree of their mental retardation, all of the children were lacking in social time cues. Studies by Poindexter and Bihm (1994) would appear to confirm the importance of blindness on sleep patterns, since 15 of the 19 persons with blindness in their sample, 78.9%, exhibited chronic short sleep patterns, compared to 38.8% of their total sample.

Comings and Comings (1987) assessed a variety of markers, including presence or absence of sleep disturbances, in 247 consecutive persons with Tourette syndrome, 17 persons with attention-deficit disorder, 15 persons with attention-deficit disorder associated with Tourette syndrome, and 47 random controls. Sleep problems were pervasive in the individuals with Tourette syndrome, with a significantly increased frequency of sleepwalking, night terrors, trouble falling asleep, early awakening, and inability to take afternoon naps as a young child. They noted that in all diagnostic categories, including persons with mild Tourette syndrome, a total sleep-problem score was significantly higher than that of controls. They feel this is consistent with the theory that Tourette syndrome is a disorder of disinhibition of the limbic system of the brain.

Recent trends toward deinstitutionalization of persons with mental retardation have increased the importance of addressing factors that may interfere with community integration. Although a number of factors have been analyzed in an attempt to relate individual characteristics to success of community placements (Schalock & Lilley, 1986), very little attention has been paid to characteristics other than obvious behavioral or cognitive factors. One neglected area is that of patterns of sleep, even though atypical patterns would be expected to present far more problems in a small-group setting than they do in a large congregate facility. Certainly individuals with developmental disabilities would be expected to exhibit all of the types of sleep abnormalities seen in the general population.

Because of the apparent impact of atypical sleep patterns on the physical and mental health of persons with developmental disabilities, the area of assessment and management of these conditions appears to be a fruitful area for research for persons with mental retardation and behavioral/psychiatric conditions. While sleep laboratories and research centers are able to use complex electronic equipment to analyze sleep disorders, this usually is a time-consuming and expensive process. Most sleep disorders can be satisfactorily assessed with thorough, careful history and basic medical evaluation.

Conclusion

As appeared in the review that the sleep disorder coexists among people with mental retardation and other developmental disabilities. There have been systematic studies to find out the prevalence of sleep disorders from medical point of view. The psycho-social and behavior perspective of sleep disorders among individual with mental retardation and other developmental disabilities can also be studied. The impact of non-medical interventions like Naturopathy, Yoga Therapy and Occupational Therapy etc., can be studied by using typical clinical intervention methods to address the sleep disorders.

References

1. *Ali, N. J., Pitson, D. J. and Stradling, J. R. Snoring, sleep disturbance, and behaviour in 4-5 year olds. Arch. Dis. Child., 1993, 68: 360-366.*

2. *American Psychiatric Association. 2000. Diagnostic and statistical manual of mental disorders. 4th edition. Text revision. Washington, DC: American Psychiatric Association.*

3. *Anders, T., Goodlin-Jones, B. and Sadeh, A. Sleep disorders. In: C. H. Zeanah, Jr, (Ed.), Handbook of Infant Mental Health. Guilford Publications, Inc., New York, 2000 (second edition): 326-338.*

4. *Armstrong, K. L., Quinn, R. A. and Dadds, M. R. The sleep patterns of normal children. Med. J. Aust., 1994, 161: 202-206.*

5. *Brier NM. "In SB Friedman, M Fisher, SK Schonberg, eds. Comprehensive Adult Health Care. St.Louis, MO; Quality Med Pub. Inc. 1992; 103: 824-829.*

6. *Brylewski, J. E. & Wiggs, L. (1998). A questionnaire survey of sleep and night-time behaviour in a community-based sample of adults with intellectual disability. Journal of Intellectual Disability Research, 42, 154-162.*

7. *Clements, J., Wing, L., & Dunn, G. (1986). Sleep problems in handicapped children: A preliminary study. Journal of Child Psychology and Psychiatry, 27, 399-407.*

8. *Comings, D. E. & Comings, B. G. (1987). A controlled study of Tourette syndrome. VI. Early development, sleep problems, allergies, and handedness. American Journal of Human Genetics, 41, 822-838.*

9. *Gislason, T. and Benediktsdottir, B. Snoring, apneic episodes, and nocturnal hypoxemia among children 6 months to 6 years old: an epidemiologic study of lower limit of prevalence. Chest, 1995, 107: 963-966.*

10. *Greydanus DE, Bhave S. The Mentally Challenged Adolescent. Recent Advances in Pediatrics, Kashmir, India, In Press, 2005.*

11. *Jenkins, S., Owen, C., Bax, M. and Hart, H. Continuities of common behaviour problems in preschool children. J. Child Psychol. Psychiatry, 1984, 25: 75-89.*

12. *Malow, B. A. Sleep disorders, epilepsy, and autism. Ment. Retard. Dev. Disabil. Res. Rev., 2004, 10: 122-125.*

13. *Okawa, M., Nanami, T., Wada, S., Shimizu, T., Hishikawa, Y., Sasaki, H., Nagamine, H., & Takahashi, K. (1987). Four congenitally blind children with circadian sleep-wake rhythm disorder. Sleep, 10, 101-110.*

14. *Poindexter, A. R. & Bihm, E. M. (1994). Incidence of short-sleep patterns in institutionalized individuals with profound mental retardation. American Journal on Mental Retardation, 98, 776-780.*

15. *Rauh JL, "Mentally Retarded Youth" In McAnarany, RE Kreipe, DP Orr, GD Comeric, eds. Textbook of Adol Med. Phildelphia; WB Saunders Company, 1992; 31:229-232.*

16. *Richdale, A., Gavidia-Payne, S., Francis, A., & Cotton, S. (1997, May). Sleep characteristics of children with an intellectual disability. Poster paper presented at the meeting of the American Association on Mental Retardation, New York, NY.*

17. *Sadeh, A., Gruber, R. and Raviv, A. Sleep, neurobehavioral functioning, and behavior problems in school-age children. Child Dev., 2002, 73: 405-417.*

18. *Schalock, R. L. & Lilley, M. A. (1986). Placement from community-based mental retardation programs: How well do clients do after 8 to 10 years?. American Journal of Mental Deficiency, 90, 669-676.*

19. *Scher, A., Tirosh, E., Jaffe, M., Rubin, L., Sadeh, A. and Lavie, P.Sleep patterns of infants and young children in Israel. Int. J. Behav. Dev., 1995, 18: 701-711.*

20. *Shibagaki, M., Kiyono, S., & Takeuchi, T. (1985). Nocturnal sleep in mentally retarded infants with cerebral palsy. Electroencephalography and Clinical Neurophysiology, 61, 465-471.*

21. *Wiggs, L. & Stores, G. (1996). Severe sleep disturbance and daytime challenging behaviour in children with severe learning disabilities. Journal of Intellectual Disability Research, 40, 518-528.*

22. *Wiggs, L. and Stores, G. General aspects of sleep and intellectual impairment. In: G. Stores and L. Wiggs (Eds) Sleep Disturbance in Children and Adolescents with Disorders of Development: its Significance and Management. Cambridge University Press, Oxford, England, 2001: 47-52.*

ISSN 2277-5587

Concerns of Teacher Education Under New Set of Global Conditions

Dr. Gaurav Sachar
Assistant Professor, P.K.R Jain (P.G.) College of Education, Ambala (Panjab)

shodhshree@gmail.com

Teacher education is an integral component of the educational system. It is, intimately connected with society and is conditioned by the ethos, culture and character of nation. The constitutional goal, the direction principles of the state policy, the socio-economic problems and the grown of knowledge, the emerging expectation and the changes operating in education etc. call for an appropriate response from futuristic education system and provide the perspective within which Teacher education programs need to be views.

Scenario of Teacher Education:-

Various commissions and committees appointed by the central and state governments in recent have invariably emphases the need of quality teacher education suited to the need of the education system. The secondary education commission (1953) observed that a major factor responsible for the educational reconstruction at the secondary stage is teacher's professional training. The education commission (1964-66) stressed that in a world based on science and technology it is education that determines the level of prosperity, welfare and security of the people and that is why sound program of professional education of teachers is essential for qualitative improvement in education.

The Program of Action (POA-1992) has emphasized teacher education as a continuous process, its pre service and in service components being inseparable. The POA, among others has – pointed out the following in respect of teacher education:-

a) Professional commitment and over all competences of teachers leave much to be desired.

b) The quality of Pre – service education has not only improved with recent developments in pedagogical science but has actually shown sign of deterioration.

c) Teacher education programs consist mainly of pre-service teacher training with practically no systematic programs of in-service

training facilities for which are lacking.

d) There has been an increase in sub-standard institutions of teacher education and there are numerous sports of gross malpractices for which they are lacking.

e) The support system provided by the state council of educational research and training (SCERTs) and the university departments of education has been insufficient and there is no support system below the state level.

Teacher Education and Concerns of the Nation and Global Era:

It is universally acknowledged that education is an effective means for social reconstruction and to a great extent it offers solution to the problems a society is faced with. These problems may be economic, social, cultural, political, moral, ecological and educational. Since the teachers play a major role in education of children their own education becomes a matter of vital concern. Teacher education must, therefore create necessary awareness among teachers about their new roles and responsibilities.

Concept of Globalization:

Globalization is associated with technological innovations and the salvation of the third world war by advanced capitalist societies. Thus, it is simultaneously a legitimating ideology, a cultural and economic paradigm, and a phenomenon that resists viewing the world through a narrow nation – state level.

Features of Globalization:

- International division of labor.
- Encouragement of markets rather than government central planning.
- Growth of offshore finance and telecommunication that can link bank, stock markets, companies and organization together in a global network.
- Growth of national and international non-government organization (NGO).

Implication of Globalization on Teacher Education:

All developing countries including India have quest to achieve education for all by 2020. Teachers who possess the necessary technical competencies and professional skills through a well-coordinated teacher education program will be able to meet the challenges of the education.

Economic Concerns:

Poverty, unemployment and low rate of growth and productivity are some of the major economic problems of the country which have led to the compulsion of the backward economy for this, introduction of work education and vocationalisation in secondary will have to be given a modern and meaningful direction. The attitude towards the work culture needs a transformation. So teacher education curriculum therefore has to promote such attitudes as are necessary for the emergence of a new economic order. Along with the vocational competencies a skill a new work culture will have to be created which necessarily involves the inculcation of dignity of work, the spirit of self reliance and scientific temper among students. The courses of teacher education need to be enriched to enable teachers to understand the attributes of modern development.

Social Concerns:

Strengthening national and social cohesion in a diverse and plural society accelerating the process of economic growth, improving the life of the down trodden and the people living below the poverty line, removing the widely prevalent ignorance, superstition and prejudices from the masses, inculcating scientific temper and developing a critical awareness about the social realities of Indian are some of the issues which call immediate attention. Teachers and the teacher education will have to play their role in cultural transmission.

Concerns of Cultural Reconstruction:

Education is the process of transmission of dynamic and responsive components of cultural heritage and its continuous enrichment. There is

ISSN 2277-5587

a need to reinterpret the Indian culture in its district identity and composite strength its capacity to absorb the sublime from the other cultures need to be highlighted. The teacher will have to play their role in cultural transmission and reconstruction.

Isolation of Teacher Education:

Teacher education institutions, which were considered islands of isolation, have gradually developed linkage with schools, peer institutions, universities and other institutions of higher learning as also the community. However much remains to be done in this direction. The curriculum of the school, its actual transactions modalities, examination system, management process and its ethos need to be the main thrust areas of teacher education program. To achieve these ends teacher education need to be made conversant with various aspects of school experiences.

Research and Innovation:

The concept of field interaction and laboratory are approach in the context of establishment of DIETS indeed timely. Research innovations and surveys must become an integral part of the training program of teacher education irrespective of the stages. The trainees need to be familiarized with innovations in general and innovative practices in teacher education in particular.

Curriculum of Teacher Education:

For global needs teacher education needs many changes as to do exchange of ideas and growth of the country, it is hour of the need. After studying and teaching the syllabi of teacher education some points have come into glances which is required to be taken care off. These are as follows:

- Whole contents of teacher training program me has theoretical base not practical. We teach them many methods like problems solving, project demonstration method but in theoretical form not with practical uses. Like where to use and how to use and which activities depicts the role of these methods.
- As above same concern comes in mind that we don't know the content of language lab of any subject from where to start and where to stop.
- Another concern is for ICT subject. It is again theoretical no educational cites are told. Students don't know how to make PPTs, documentaries and teaching material. If this is not be taught then no smart classroom concept will be taken care of by the perspective teacher. So when they go in real environment they become vague in their ideas and unable to meet the expectation of global educational system.
- Everyone aspires to earn best in his/her life and this opportunity can be availed only in English medium school. Until one gets job in govt. sect. They have to work with private sect. and most of school is in English medium so why don't we make it compulsory to learn teaching course in English and why don't we introduce a separate class for English speaking.
- Next comes the consideration of time-table. Time-table is considered as the pivot of any teaching planning but it is taught at theoretical level and not in practical way .In'' Secondary school Education'' subject this should be in a separate chapter form not just in a paragraph form.
- At institutional level stationary shop must be there as B.Ed. or any teacher-training program have many requirements to be fulfilled in stationary concerned.

Spectrum of Institutional Functions:

- Develop capacity to provide both pre service and in –service education.
- Organize programs for heads of schools and school complexes and supervisory staff.
- Undertake research and experiments with innovative educational ideas.

- Offer guidance and counseling services.
- Impart training for other areas of education, like physical education and special education.
- Act as a link between school and university system.

Other Critical Concerns:

The factor and forces influencing teacher education are many some of which have been discussed in preceding sections, certain others are being mentioned here under:-

- Gradual change over from conventional programs of teacher education to integrated courses to ensure great professionalism.
- Increased duration of teacher program to accommodate for proper assimilation of emerging professional inputs but this duration should be of six months. The reason for this is that practice of teaching and other emerging professional inputs can be covered in 6 months and no private institution will accommodate the perspective teacher for a long time and coming teacher will also not feel motivated to work without salary.
- Flexible and pragmatic approach to plans and programs of teacher education.
- Proper planning and orientation of education of teacher educators.

Conclusion:

The critical analyses of the context and concerns presented in the proceeding sections help in developing vision for teacher education in future. In global situation basic character of the framework must provide for adequate and inbuilt flexibility for incorporating the regional and local specificities. Total trust in the capabilities of institutions and organizations to develop an indigenous, comparable and area specific curriculum has to be the guiding principles. The basic tenant identified in the national basic education scheme – Head, Heart and Hand need now to be linked to another H – Highways, Information Highways, Websites and Internet are going to become terms of common usage in teacher education for sound mind we need strong hand and vibrant heart.

References

1. *Bottery, M (2006) "Education and globalization redefining the role of the educational professional" educational review 58 (I), 2006, 95-113.*
2. *Misra, S. & Bajpai, A. (2011). Implication, of globalization on education retrieved in December 15, from http//ssm.com/abstract=1800740*
3. *Pratham, R. (2007). ASER 2006, Annual Status of Education Report., Pratham, New Delhi Jan 2007.*
4. *Patted, L. (2003) Teacher Education and Global changes in the 21st century. Authors press.*
5. *Saxena, N.R., Mishra, B.K. & Mohanty, R.K. (1998). Teacher Education 1st Ed. Meerut: Surya Publication.*
6. *Talesra, H., Shukul, M & Sharma, U. (2003) Challenges of Education Technology Trends and Globalization. Author Press Delhi.*

Effect of Shift Work on Health

Vandita Sharma
Research Scholar, University of Rajasthan, Jaipur
Kanika Varma
Associate Professor, University of Rajasthan, Jaipur

shodhshree@gmail.com

Shift work includes any arrangement of daily working hours that differ from the standard and is aimed at extending the organization operational time from 8 hours unto 24 hours per day, by means of a succession of different teams of workers. (Spurgeon et al,. 2001)

Health Problems Among Call Handlers

In recent times, all countries have turned increasingly to continuous production. This is why shift (night) work is no longer a fringe problem but one of increasing importance. The main reasons for going for continuous work are economic ones, many process are said to be feasible or profitable only when used 24 hours a day, 7 days a week and 52 weeks a year (24/7/52). Shift work has both advantages and disadvantages the advantages being an increase in wages earned, a better fit in terms of domestic arrangements and fewer work days. The disadvantages of shift work include changes in the rhythm of human physiology, hormonal concentration, biochemical and behavioral changes which are the underlying causes for an increase in heart disease, gastric ulcers, and gastric disturbance, sleep disturbance and increased fatigue, social problems, minor psychiatric disturbances, an increase in absenteeism, and increased occurrence of errors and accidents (Spurgeon et al, 2001).

Shift work and shifts with extended hour (Overtime) can have significant adverse effects on health, work place accident rates, absenteeism and a worker's personal life (Giovanni costa, et al, 2004).

Circadian Rhythm

The suprachiasmatic nuclei of the hypothalamus controls circadian rhythmicity of physiological, biochemical and physiological parameters. The various bodily functions of both humans and animals fluctuate in a 24 hours cycle, called diurnal or circadian rhythm (diurnus=daily, circa dies = approximately a day). Shift work alters the normal circadian rhythmicity giving rise to concerns regarding health and well –being. The human beings are naturally in the ergotropis phase (geared to perform) in the day time and

in the trophotropic phase (occupied with recuperation and replacement of energy) during the night. Herein lies the essential physiological and psychological problem of night work, and added to that, the burden of family like and social isolation. (Kroemer et al., 1997)

There should be a health assessment schedule to determine fitness of an employee for night duty, as there is no clear guidance to decide when an employee is on longer fit to continue night/shift work.(Nicholson and auria, 1999). The call centres use the principles of ergonomics to address their health and safety issues and to retain their staff. Ergonomic principles can be applied in organizational procedures and policies, task designing and training, work place, work station andequipment designing (Deepak, 2003). Whereas Kroemer, (1997) reported that ergonomics is therefore faced with the problem of planning work schedules in such a way that shift work does as little harm as possible to health and social life of shift workers (people who work at night).

Effect of Circadian Rhythm

As mentioned earlier, the various bodily functions of both human and animals fluctuate in a 24 hour cycle called the diurnal or circadian rhythm (chandrasekaran et al., 1999). The bodily functions that are most markedly circadian are sleep readiness for work, as well as many of the autonomic process such as body temperature, heart rate, blood pressure, respiratory volume, adrenaline production, mental abilities, flicker-fusion frequency of eyes, release of hormones into the blood stream and melatonin production (Kroemer et al., 1997)Electro encephalo gram studies of length and quality of sleep among night shift workers show that daytime sleep is distinctly shorter than the night sleep compared to the sleep they take on their rest days. The average length of sleep during the daytime is 6 hours, whereas on the rest days, the average varies between 8 and 12 hours.The cause for the occupational health problem among the night workers could be due to a conflict generated in the body of a night shift worker by 'desynchronisation' of internal rhythms (Kroemar et al., 1997).

Women shift workers, particularly younger women, are less night work tolerant and report more of non- specific symptoms like fatigue more often than men (Spurgeon et al ., 2001). Shift working and particularly night working may pose risk for women of childbearing age. This may be related to their periodical hormonal body functions and to additional domestic activities, particularly to those who have children (Kroemer et al., 1997). There has been evidence of more frequent menstrual cycle and associated menstrual pain, as well as more frequent abortions and lowered rates of pregnancies and deliveries. Female night shift workers with children have shorter and more frequent interrupted day sleep and suffer from more cumulative tiredness compared to men and women without children (Kroemer et al., 1997). Women appear to be less shift work tolerant and in particular young women report non- specific symptoms (Spurgeon et al., 2001).

'Social wellbeing' is closely related to physical health. In the fore front are disturbance of family life, interference with social contacts among friends and fewer opportunities to participate in group activities. They often feel on the 'fringe of the society' or even to be in 'social isolation' (Kroemer et al., 1997).

Sleep Quantity and Quality

Sleep duration, sleep quality and daytime sleepiness have also been described in some shift work studies. One of the studies of the occupational safety and health centre (OSHC, 2001) observed the duration of sleep in a group of shift workers exposed to a 3- shift system (i.e. 6 am To 2 pm Or day shift, 2 pm to 10 pm, 10 pm to 6 am or night shift) that rotates every 15 days. The observed duration of sleep did not significantly change between days within a particular shift schedule. But comparing the duration of sleep between the day shift and the night shift, they noted longer sleep hours during the first two days

 ISSN 2277-5587

of night shift compared to the first two days of day shift. Perceived soundness of sleep of the workers in the same study did not differ within a shift and also between day and night shift. In another study conducted by Dominguez et al, (2006) on sleepiness and sleeping patterns among air traffic controllers and communicators, the prevalence of excessive daytime sleepiness (EDS) measured by the Epworth sleepiness score (ESS> 10) was 63 percent EDS was found to be more common among shift workers than among those who worked fixed hours. In a similar study on contact centre workers and regular office workers, Palabay and Jorge II, (2007) reported 55 percent prevalence of abnormal daytime sleepiness (ESS> 10) among the contact centre shift workers and 10 percent prevalence among regular office workers. No correlation was noted by the study group between ESS and hours of shift, order of shift rotation, duration of rotation of shift schedule and number of days off. Prevalence of insomnia (36 percent) restless leg syndrome (4 percent) and obstructive sleep apnea (7.4 percent) among call centre workers were also observed in the study. The prevalence of insomnia among call centre workers (36 percent) was significantly higher compared to the prevalence among regular office workers (10 percent). In addition to loss of sleep, a high level of anxiety is another direct effect of night shift work. This was observed among security guards by Bayot (2004). Security guards either smoke or drink coffee or other energy drinks to be able to avoid sleepiness during night shift work. Poor quality of sleep and lack of sleep cause dissatisfaction among night shift workers.

In a recent descriptive study of Magpili (2011) on sleep and environmental factors, 64 percent of the night shift contact centre workers who were interviewed said that the environmental factors affect their sleep the most. Topping the list of factors is noise. Other factors mentioned by the respondents that affects their sleep were bright lighting, warm temperature, not being used to daytime sleep and uncomfortable sleeping areas.

Psychological Stress

Other night shift jobs such as nursing and hotel administration are alternate between day and night but in India the working hours in transnational call centres are solely at night which is further aggravated by the dual identities and extreme work pressure. The normal social patterns tends to operate around traditional work day cycle, which effectively excludes call centre workers and leads to difficulty in structuring family and social interactions (Wilson et al, 2007).

The odd working hours along with the dual burden of work and family leads to high level of stress among the women employees. Stress can be defined as an adoptive response, mediated by individual differences or psychological processes that are a consequence of any external action. Situation or event that places excessive physical or psychological demands on person (Inanvevich and Mattension, 1991). Job stress can lead to a range of physical (insomnia), psychological (depression), behavioural (alcoralism) drug, abuse and interpersonal conflicts (Kalimo and mejoan, 1987: Levi, 1996).

In a study conducted on women working in night shift with a sample size of 500 in Coimbatore city it was found that women employees in BPO suffered from high level of stress as compared to women employees of other night shift occupations such as nursing and police services. The women employed their own mechanism to cope up with their stress. Fifty two percent of women used music as a coping up mechanism, while 23 percent preferred to socialize with friends: another fifteen percent did meditation as a means to relax while ten percent women spend time with family to cope up with stress (Usha and Geeta, 2010).

Apart from the positive coping mechanism some call center employees in order to cope up with the physical and psychological stress develop poor eatiSng habits, overeating smoking and excessive drinking of coffee. (Ramesh, 2004)

Conclusion:

Some people cope well with shift work and others poorly, leading to 'Shift Work Maladjustment syndrome'. The International Classification of Sleep Disorders (Timothy, 2000) formally lists 'Shift Work Sleep Disorder' as one of the 'Circadian Rhythm Sleep disorders'. The Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders lists shift work type as a subtype of the circadian rhythm sleep disorders. Thus, there is increasing acceptance that the difficulties some people experience with shift work should properly be regarded as a disorder worthy of medical diagnosis and treatment. Call centres are of particular concern to health and safety because of the unique type of work undertaken by the call handler. The industry is touted as a magic wand that will word off unemployment for thousands of young graduates, presented studies clearly shows that there is a concern regarding issues of health and safety that are unique to this industry.

References

1. *Bayot G. : Perceived effects of night shift work on the health and wellbeing among selected security guards in Metro Manila. Thesis.De La Salle University, Philippines, 2004.*
2. *Chandrasekaran NK, Ganguli AK. : Perspective On Shift Work – I, Shift Work – Its Impact and Physiological Basis. Indian Journal of Occupational and Environmental Medicine. January- March 1999; Vol 3, No 1, 22-24.*
3. *Dominguez EA, Salonga R, Jorge M, Terencio J. : Sleepiness and sleeping patterns among air traffic controllers andcommunicators. Chest 2006; 130:266S-d-267.*
4. *Giovanni Costa, Simon Folkard, J Malcolm Harrington. : Shift work and extended hours of work. In Peter J. Baxter, Peter H. Adams, Tar-Ching Aw, Anne lockeroft, J. Malcolm, editors. Hunter's Diseases of Occupations.2004 9th Edition. P 581-589.*
5. *Ivanvevich,J.M. and Mattenson,M.T.1993. : Organizational Behaviour Management. Third edition. Homewood, Irwin.*
6. *K H E Kroemer & E Grandjean : Night work and shift work. In Fitting The Task To The Human. A Textbook of Occupational Ergonomics.5th Edition. 1997 Publishers: Taytol & Francis.*
7. *Kalimo, R.L. and Mejman.T.1987 : Psychosocial and Behavioural Responses to Stress at Work. In R.Kalimo, M.A. El-Batawi and C.L.Cooper (Eds), Psychological Factor at Work and their Relation to Health, World Health Organization, Geneva.*
8. *Levi,L.1996 : Spice of Life or Kiss of Death, In C.L. Cooper (Ed) Handbook of Stress*
9. *Magpili KAM. A descriptive study of the sleeping areas of selected night shift call center agents in relation to environmental factors. Thesis. University of the Philippines Diliman, 2011.*
10. *OSHC (The Occupational Safety and Health Center), Department ofLabor and Employment. Comparison of Health and Well-beingof Females Working in Day and Night Shift. 2001. (URL:http://www.oshc.dole.gov.ph/201/)*
11. *P J Nicholson, D A P D'Auria : Shift work, health, the work time regulations and health assessments. Occupational Medicine. 1999; 49 (3): 127-137.*
12. *Ramesh, P. B. 2004 : "Cyber Coolies' in BPO: Insecurities and Vulnerabilities of Non-Standard Work". Economic and Political Weekly, 39 (5): 492-497.*
13. *Sharan.D : Call Centre Ergonomics. Times of India, 2003 October 18.*
14. *Spurgeon A, and Harrington JM. : Shift work and Health. In Koh D, Seng CK, and Jeyaratnam J editors.Text book of Occupational Medicine Practise.2nd Edition.World Scientific Publishing Co. Pte.Ltd. Singapore, 2001.,P: 88-96*
15. *Timothy H. Monk. : Shift Work. In Kryger, Roth, Dement editors. Principles and Practice of Sleep Medicine. Second Edition. W. B. Saunders Company. (2000) P 600- 605.*
16. *Usha, B and Geetha, K.T. 2010. : "Stress and Cope-Up Strategies: A Case Study of Odd Hour Women Employees".Social Change, 40 (4): 545-562.*
17. *Wilson,M.G., Polzer-Debruyne, A., Chen, S.,Fernandes, S. 2007 : "Shift Work Interventions for reduced work-family conflict". Employees Relations, 29(2):162-77.*

Ethnobotanical Uses of Medicinal Plants of Hadoti: A Review

Dr. Shivali Kharoliwal
Lecturer, Lzebra Girls College, Kota

shodhshree@gmail.com

All plants are, in one-way or other, useful to mankind. According to recent World Bank report; "Medicinal Plants: Rescuing a global heritage", a large number of medicinal plant are being over harvested and could soon become extinct, unless, stringent conservation measures are introduced by developing countries. Many of these plants have been used since ancient times to treat a variety of ailments but during the past few years, there has developed a booming world trade in plant remedies, leading to over harvesting. The report adds, unless swift action is taken, it warns more plants will be gone forever, more than four billion people in the developing world depend heavily on natural medicinal for their daily health and that the global trade in medicinal plants is now worth in excess of one trillion, the need for better conservation is beyond question, the report maintains with the exception of China and India which are the world's biggest suppliers of herbal medicines, most developing countries invest little or nothing in the conservations, cultivation and use of the medicinal plants. Other cash crops get millions of dollars in research support but the production of "these exceptionally promising generations of income and well being" are left to languish with the result of the many are in danger of extinction.

The use of traditional medicines and medicinal plants in most developing countries as a normative basis for maintenance of good health has been widely observed. Further an increasing reliance on the use of medicinal plants in the industrialized societies has been related to the development of several drugs and chemotherapeutics from plant species as well as from traditionally used rural herbal preparations. Herbal remedies have attained much more popularity in the treatment of minor ailments, due to increasing awareness of personal health maintenance through natural products. Indeed, the market and public demand has been so great that there is a great extinction risk to many medicinal plants and obviously the loss of genetic diversity.

Ethnobotanical studies have been conducted in different parts of India . Agarwal (2014), Bhowmick(2012), Upadhyay et al (2010) carried out ethnopharmaco-statistical ethnomedicinal and studies of Eastern Rajasthan.

Ethnobotanical studies on Cassia spp. Have also been carried out (Sharma et al, 2012a and 2012b). Farnsworth (1990) studied the role of ethnopharmacology in drug development. in India Plants have been used by tribals and local people for cure of various diseases. As most of the diseases of modern society are life style disease and the use of herbal medicines can over come such problems (Kumar 2000). More over several difficult diseases have problem related with vitality, diabetes, memory loss, could be cured effectively by use of herbal medicine, which is generally not possible by the Allopathic medicines. Upadhyay et al (2008) ;Saini et al (2010); Sharma and Kumar (2011) Sharma and Kumar (2012) have conducted studies on Ayurvedic crude drugs for cure of digestive diseases, leprosy, skin diseases, malaria and paralysis. However, there is no systematic documentation of this information the present papers attempts to review the information.

Survey Region : Region in and around kota district

Vegetation : The vegetation of the area has been classified as "decidous jungle". Plants which can either adapt themselves to high temperatures or to low temperatures and discouraging conditions of soil and rainfall can be found.

The Tribals : Tribals are the oldest ethnological groups which live far away from the civilized world. They prefer to live in forested areas, follow primitive customs and occupations, profess primitive religions, have common language and social culture, are economically dependent on each other. The tribals of Rajasthan constitute 8.07% of the total population of tribals in India. Several tribes inhabited in the state of Rajasthan, namely – 'Bhil', 'Bhil-Meena', 'Garasia' 'Damor', 'Dhanaka',, 'Kathodia', 'Meena', 'Patelia' and 'Saharia'. Besides these, there are some nomadic, semi-nomadic tribes and denotified communities also. Nomadic tribes are 'Banjara', 'Gadia–Lohar' and 'Kalbelia', whereas semi-nomadic tribes are 'Rebari', 'Jogi' and 'Masani'. 'Bori', 'Kanjer', 'Sansi', 'Bhat' are included in denotified communities. In hadoti zone Tonk, Bundi, Jhalawar and Kota districts are included where 'Bhil' and 'Meena' form the dominating tribal population. The Meena population (3,68025) found majority in Jaipur district and also in other tribal population e.g. 'Bhil', 'Kalbelia', 'GadiaLohar', 'Banjara', 'Kanjar', 'Sansi' and 'Bauria' found in minority. Several wild plant species are used by tribals as fodder.

Ethnobotanical Uses : The large number of plants are use by tribals in making the music instruments. Mythological Plants Majority of the people belonging to tribal population believe in traditional superstition. They have strong faith in tree-spirits, evil eye and magics. Tree worship was possibly the earliest and the most prevalent form of religion. Tribals are basically religious hence trees are treated by them as Gods. At the same time they feel that these trees basically fulfill their lives requirements and life is incomplete without them. So the trees are indispensable for the survival of the tribals. Tribals of Jaipur district worship all the God and Goddesses of Hindu religion along with number of local deities. These deities are associated with a number of plant species. During the present survey 16 plant species have been recorded to be scared and auspicious, important one being of genus Ficus and Acacia. Aegle marmelosand Ocimum sanctum being sacred. Some of these plant species have also been reported from tribal areas as well. Tribals use various articles made from vegetable origin, which are believed to have the power of scaring them from evil spirits and counteracting dominion influence of various kinds of evil spirits. Folk songs in praise of Bamboo (Bambusa vulgarisSchard. ex. J.C.Wendl), Basil (Ocimum sanctum Linn.), and Amaltas (Cassia fistula Linn.) are sung, believing these plants are the abode of severalGods and Goddess. A few trees such as Santalum album, held sacred by Hindus. Dried inflorescence of Prosopis cineraria Linn. (Khejiri) is held sacred by the Vaishnavas. Achyranthes aspera Linn. (Chirchiri) is used scared payees in Rajastan desert. The use of palas (Butea monosperma

ISSN 2277-5587

O.Kuntze.) for dying clothes are common in folk songs. Pharmacognostical and antibacterial effects of different extracts of Euphorbia hirtaL. and E. tirucalli L. have been studied (Upadhyay et al., 2010a, 2010b) Palas (Butea monosperma O. Kuntze.), Kachnar (Bauhinia variegata Linn.), and Mahua (Madhuca indica Gmel.) etc bear flowers and fruits which are offered to Gods and Goddess to invoke blessings for the fulfiliment of wishes .All kinds of skin and hair problems are frequently treated through external application of the herbal preparations in the form of paste, powder, lotion, body massage oil and hair oil. One can clearly identify the leaves of Azadirachta indica, Aegle marmelos, Ficus religiosa etc., flowers and fruit of Datura metel, fruits of Mangifera indica and seeds of Elaeocarpus sphaericus and Coriandrum sativum. Following is the list of important plants found in kota district.

1.Tulasi (Eng: Holy Basil; Fam: Labiatae/ Lamiaceae) Ocimum sanctum Linn., (Syn. Ocimum tenuiflorum L.) also known as 'The Mother Medicine of Nature' and 'The Queen of Herbs', is an erect, bushy, strongly aromatic herb with hairy stem. Leaves are opposite, elliptic-oblong, margins entire or slightly toothed, pubescent on both sides,dotted with minute glands, strongly scented; flowers small, purplish or reddish, borne in verticillaster inflorescence; fruits ellipsoid nutlets; seeds globose to sub-globose Slightly compressed, pale brown to reddish brown with black markings. Different parts of the plant, especially leaves and seeds, possess therapeutic potentials . Medicinal Use: Common cold and cough, fever, respiratory disorders, bronchitis, skin diseases, gastric disorders, diabetes, dysentery, headache, convulsion, earache, sore throat, chest trouble, dyspepsia, antifertility in women, antidote for scorpion sting and dog, snake and insect bites. Antibacterial, anticancer, antiasthmatic, antituberculosis, antiemetic and diaphoretic in malarial fever.

2. Sarpagandha (Eng: Rauwolfia/Indian Snakeroot; Fam: Apocynaceae) Rauwolfia serpentina (Linn.) Benth. ex Kurz is an upright, perennating, evergreen, glabrous undershrub with tuberous roots, and is popularly known as India's wonder drug plant. Leaves simple, glabrous, lanceolate or obovate and generally in whorls of three to four, crowding the upper part of the stem; flowers white or violet-tinged and borne on corymbose cymes; fruit tiny, oval, fleshy which turns shiny purple-black when ripe. The roots of the plant are mainly used for medicinal purposes. The root bark is greenish-yellow to brown and displays irregular longitudinal fissures . Medicinal Use: Insomnia, hypertension, insanity, epilepsy, hysteria, constipation, schizophrenia, intestinal disorders, cardiac and liver diseases. Anthelmintic, tranquilizer, antidote against the bites of snakes and venomous reptiles.

3. Brahmi (Eng: Thyme-leaved gratiola; Fam: Scrophulariaceae) Bacopa monnieri (L.) Penn. is a small, glabrous, creeping, somewhat succulent herb with numerous branches. It has succulent, soft, hairy stem; relatively thick, small, simple, sessile, oval-shaped leaves and light purple flowers on long pedicles in the leaf axils. The entire plant is used medicinal. Medicinal Use: Epilepsy, insomnia and skin disorders. Stomachic, digestive, antiepileptic, diuretic, antipyretic and analgesic. A good revitalizing herb for the nerve and brain cells, and a potent tonic to enhance memory power and respiratory function in cases of bronchoconstriction.

4 Meshashringi (Eng: Periploca of the woods; Fam: Asclepiadaceae) Gymnema sylvestre R. Br. is a large, woody, much branched, climbing shrub running over the tops of tall trees. Stem is sparsely lenticellate, twinning and branched; leaves simple, opposite, ovateelliptic, thinly coriaceous, acute or shortly acuminate, smooth above and sparsely or densely velvety beneath; flowers small, yellow, in axillary and lateral umbellate cymes; fruit a slender follicle, attenuated into a beak; seeds dark brown, ovate-oblong, flat with a thin broad marginal wing. The medicinally active parts of the plant are leaves and roots. The leaves, when chewed, destroy the sensory perception of sweet taste Medicinal Use: Diabetes, stomach ailments, diarrhoea, asthma, cardiopathy, glycosuria, obesity, dyspepsia, pain in

eyes, constipation, haemorrhoid and cough. Hypoglycemic, antipyretic, anthelmenthic, antiviral and diuretic.

5 Shatavari (Eng: Asparagus; Fam: Liliaceae) Asparagus racemosus Willd. is a scandent, much branched, spinous undershrub having woody stem sparsely covered with strong, straight or recurved spines. It has a stout rootstock bearing numerous, succulent fusiform roots fascicled at stem base, and an inflorescence bearing tiny white flowers in small spikes. Leaves are reduced to minute spinescent structures subtending leaf-like cladodes which are in tufts of 2-6 in a node, and constitute the main photosynthetic organs. Roots possess medicinal property . Medicinal Use: Behavioral disorder, brain dysfunction, cancer, ulcer, dysentery, diabetes, bronchitis, tuberculosis, pain, dyspepsia, constipation, wound and uterine bleeding. Antipyretic, diuretic, antispasmodic, aphrodisiac, stimulates breast milk production and a versatile female tonic.

6. Shankhpushpi (Eng: Bindweed; Fam: Convolvulaceae) Convolvulus pluricaulis Choisy is a prostrate, perennial herb with woody rootstock and slender, wiry, thinly hairy stem. Leaves radical, spathulate, small, subsessile, linear to oblong with prominent nerves; flowers 1-3, axillary, white, pale or purplish; fruit globose capsule. All parts of the herb have therapeutic value. Medicinal Use: Insomnia, epilepsy, urinary disorders, hypertension, neurodegenerative diseases, anxiety, diabetes, headache, vomiting and snake bites. Laxative, antistress, aphrodisiac, rejuvenator and an enhancer of memory and concentration.

7. Safed Musli (Eng: Indian Spider Plant; Fam: Liliaceae) Chlorophytum borivilianum Sant. & Fern. is a tuberous herb with condensed stem disc from which a whorl of leaves originates, and grows up to a maximum height of 1.5 feet. Leaves sessile with sheathing bases, linear with acute apex, slightly yellowish, coriaceous; flowers small, white, pedicellate, produced on panicles; fruit a capsule, trilobed, green to yellow; seeds black, shiny, oblong with angular edges. The white fibrous roots of the plant are modified into fasciculated roots with tapering ends, and are the medicinally useful part . Medicinal Use: Rheumatism, joint pains, gonorrhoea, leucorrhoea, prenatal and postnatal problems in women, diabetes and diarrhoea. Revitalizer, increases lactation in feeding mothers, boosts immune system and is considered as an alternative 'viagra' as it is aphrodisiac and used in male impotency.

8. Svarnapatri (Eng: Senna/Indian Senna; Fam: Caesalpiniaceae) Cassia angustifolia Vahl. is a small shrub with pale green, smooth and erect stem. Leaves compound, pinnate, usually 5-8 jugate, pale yellowish green, glabrous, leaflet oval-lanceolate with pointed apex; inflorescence raceme, axillary, many-flowered; flowers small, yellow; fruit pod, oblong, flat, brown containsing several seeds; seed obovate, cuneate, dark brown. Leaves and fruits have medicinal properties .Medicinal Use: Constipation, dyspepsia, skin diseases, anaemia, bronchitis, jaundice, dysentery, fever and haemorrhoid. Laxative, purgative, antipyretic, vermifuge, aphrodisiac, diuretic and anthelmintic.

9. Lashuna (Eng: Garlic; Fam: Liliaceae) Allium sativum Linn. is a perennial, grass-like herb with composite or compound underground bulb that has medicinal value. It has a shallow fibrous root system at the bottom of the bulb and a tall, erect flowering stem above enclosed by tubular leafy sheaths. Leaves opposite, erect, long, flat with a crease down the middle and flowers white, starry borne in umbel. Fruits and seeds are rarely used. Medicinal Use: Hypertension, high cholesterol, heart disease, nose, eye, ear and throat infections, fever, cough, headache, flatulence, dyspepsia, stomachache, sinus congestion, gout, rheumatism, bronchitis and snakebite. Aphrodisiac, anthelmintic, antiasthmatic, antispasmodic, antiseptic, anticancer, detoxifies the body and suppresses the growth of certain tumours.

10. Nimba (Eng: Neem; Fam: Meliaceae) Azadirachta indica A. Juss. is a tree with straight

ISSN 2277-5587

trunk and long spreading branches forming a broad round crown. Leaves pinnately compound, composed of short-petiolate, narrow-ovate, curved, toothed leaflets arranged in alternate pairs; inflorescence axillary panicle; fl owers numerous, white, fragrant, pedicillate; fruit yellowish drupe, oblong, containing thin pulp surrounding a single seed. All parts of the tree, especially leaf, fruit and stem bark have medicinal values . Medicinal Use: Jaundice, ulcer, ringworm, blood impurities, septic wounds and boils, cardiovascular disease, diabetes, gingivitis, malaria, rheumatism, asthma, colic, conjunctivitis, dysentery, epilepsy, kidney stones, leprosy, leucorrhoea, scabies, smallpox, sprain and muscular pain. Antiseptic, antiallergic, antibacterial, contraceptive, antiplaque, emmenagogue and as pesticide, vermicide and mosquito repellent .

11. Kutaja (Eng: Bitter Oleander; Fam: Apocynaceae) Holarrhena antidysenterica (Roth) A. DC is a large shrub or small tree with milky white latex. Leaves simple, opposite, sessile or subsessile, broadly ovate to elliptic-oblong, abruptly acuminate, rounded or obtuse at base; flowers white, fragrant, arranged in a cluster in large terminal branch; fruits long, slender follicles, twin fruits-two fruits arising from a node, each fruit containing numerous, flat, brown seeds. Stem bark and root have therapeutic values Medicinal Use: Dysentery, tuberculosis, diarrhoea, diabetes mellitus, piles, indigestion, colic, gastritis, diseases of the skin and spleen. Amoebicidal, antibacterial, anthelmintic, astringent, promotes conception and tones up vaginal tissues after delivery .

Conclusions:

Plants have been used since time immemorial/ antiquity for the treatment of human ailments. Even today, the traditional systems of medicine continue to be widely practiced. The World Health Organization currently encourages, recommends and promotes traditional herbal medicines in national health care programmes as such drugs are easily available at low cost and inherently safer than the potent synthetic drugs. According to WHO estimate, about 80% of the world population relies on traditional medicines, mostly on plant drugs. The safety, quality and efficacy of medicinal plants are, therefore, required to be addressed through interdisciplinary research due to the tremendous worldwide expansion of their use as medicines. The use of plant drugs also demands correct identification and characterization as their safety and efficacy depend on the use of proper plant part and its biological potency, which in turn depends upon the presence and nature of required active compounds/secondary metabolites. It is imperative to use phytochemical parameters to screen and analyze the bioactive compounds, not only for the quality control of the crude drugs but also for the elucidation of their therapeutic mechanisms. Good manufacturing practice (GMP) should be ensured so that products are consistently produced and controlled to the quality standards appropriate to their intended use as required under marketing authorization. The recent global resurgence of interest in herbal medicines has also led to an increased demand for them. But while the demand for medicinal plants is growing, some of them are increasingly facing constant threat of extinction under the duress of massive exploration and habitat degradation; and India's share of the world herbal trade is less than 1% despite its rich biodiversity, traditional knowledge and heritage of herbal medicines. So, a scientific approach for large scale cultivation and propagation of medicinal plants is needed to meet the market demand and to utilize them in a sustained manner. Medicinal plant species which are endangered or rare should be identified and conserved through the coordinated effort of in situ and ex situ strategies. The wild medicinal plants should be explored to bring them under cultivation.

References

1. *Agrawal, P. Sharma, B. Fatima, A. Jain, S.K. An update on Ayurvedic herb Convolvulus pluricaulis, Asian Pac J Trop Biomed ; 4(3): 2,2014.*
2. *Bhowmik, D. Kumar, K.P. Paswan,S. Srivatava, S. Yadav, A. Dutta, A.K. Traditional Indian Herbs*

Convolvulus pluricaulis and its medicinal importance, 1(1): 2012.

3. *Singh, K.P., Upadhyay, B., Prasad, R. and Kumar, A. (2010): Screening of AdhatodavasicaNees as Putative HIV-Protease inhibitor. Journal of Phytopharmacology2, 78–82.*

4. *Farnsworth, N. 1990. The roleof ethnopharmacology in drug development. In : Bioactive compoundsfrom plants, (D.J. Chadwick andJ. Marsh, eds.). JohnWiley and SonsPublisher.NewYork.pp2-21.*

5. *Santosh Sharma and Ashwani Kumar (2012) Pharmacognostical studies on medicinal plants of semi-arid region. Prime Research Medicine . 2(3): 505-512.*

6. *Sharma, S., Roy, S., Raghuvanshi R.K., Kumar, A., (2012a). Cassia fistula L. CassiaoccidentalisL.: Plants and of Traditional Medicines. The Journal of Ethnobiology and Traditional Medicine. Photon 117 156-161.*

7. *Sharma, S., Roy, S., Raghuvanshi R.K., Kumar, A., (2012b). Ethnobotanical studies on some medicinal plants: Cassia spp. The Journal of Ethnobiology and Medicine.Photon Traditional 117: 162-166.*

8. *Upadhyay, B., Dhaker, A.K., Singh, K.P. and Kumar, A. (2010): Phytochemical Analysis and Influence of Edaphic Factors on Lawsone Content of LawsoniainermisL. .Journal of Phytology Phytochemistry2, 47–54*

9. *Upadhyay, B., Singh, K.P. and Kumar, A. (2010a): Pharmacognostical and antibacterial studies of different extracts of Euphorbia hirtaL. Journal of Phytology 2, 55–60*

10. *Upadhyay,B., Singh, Kumar A. (2010b):Ethno-medicinal, K.P. and phytochemical and antimicrobial Studies of Euphorbia tirucalliL. .Journal of Phytology 2, 65–77.*

 ISSN 2277-5587

Geo-political History of Ajmer City

Dr. Babli Parveen
Research Fellow, Maulana Abul Kalam Azad
Institute of Asian Studies, Kolkata (West Bengal)

shodhshree@gmail.com

Ajmer is situated in the heart of Rajputana and has a great history of heritage, culture and historical events. Ajmer, named on Ajaymeru-durg, derived from king Ajairaja, was situated on a high plateau in a Aravalli range).[1] Besides this and many other descriptions,[2] Ajmer has been a sacred Hindu site from roughy the ancient period. Pushkar (*Pokhar*) is, in fact, the oldest *tirath* (religious journey) and the site of a Brahma Temple. As per an ancient legend, Lord Brahma was contemplating over a place to perform Yajna, when the lotus from the house fell down. Water sprang from the place where the flower struck and thus the Holy Lake of Pushkar was created.[3]

Ajmer has witnessed many critical and momentous events from the time of the Chauhanas, the first set of rulers in recorded history. Its founding is ascribed to Raja Ajay Pal Chauhan, but B.N. Dhoundiyal, the author of Ajmer's district gazetteer, contests this view. As a result, their origin is still shrouded in mystery. While Rajasthani bards and chronicles describe the Chauhans as fire-born, their *gotra* put them as the descendants of lunar lineage. We do know that the Chauhans rulers in the twelfth century were Shaivites, took part in Jain religious ceremonies, permitted them to build temples, and offeredto them a golden Kalsa for the Parsvanatha Temple.[4] At the level of everyday life, observers noted the plurality of folk culture and the celebration of festivals like Navratri Garbha, Diwali, Id, Guru Nanak Jayanti, Navrose, and Cheti Chand, Ajmer has remained a major nucleus for pilgrimage.[5]

If the Hindus had their evocative images, so did the Muslim communities. They had lived in Ajmer even before Shahabuddin Ghori seized control in 1192 or Qutubuddin Aibak, the founder of the Sultanate, took possession of it the same year.[6] But they did not play much of a role in the city's administration, for Aibak returned to Ghor and handed over the state affairs to Govindaraja, the son of Prithviraja III on condition of vassalage. But he was not destined to rule: Hariraja staged a coup and drove his nephew out of the kingdom. These unsettling developments prompted Aibak to annex Ajmer,[7] and appoint a *Darogha*.[8] This intervention changed Ajmer's fortunes and gave it a strategic importance that it did not enjoy before.

The Turks retained Ajmer until the successors of Ghayasuddin Balban lost it to Hammir Dev Chauhan of Ranthambore.[9] But the Rajput success proved to be short-lived. The Khalji Sultan besieged the fort in 1290-91, followed by an unsuccessful assault by Alauddin Khilji in 1299. He returned in 1301 to personally overseea long siege, and captured the Ranthambore fort near Sawai Madhopur in Rajasthan. Since that momentous event, the Delhi Sultans kept Ajmer and Ranthambore under their suzerainty. The great importance of the fort and the district as d'appiri in the midst of the Rajputana States was recognised them.[10]

Ajmer served as an important link between Agra and the rich coastal province of Gujarat. It was a centre of trade, with an impregnable fort to protect it, and water was plentiful as compared with the arid tracts around. Thus, the Sultans of Delhi and their Mughal successors retained their firm hold over the territory to ensure their safe passage to Gujarat. Alauddin Khalji realized its importance after the conquest of Gujarat (1299), in the course of which his forces encountered resistance from the Rajput chiefs. Thereafter, he concentrated his forces for the next twelve years in subduing them.[11]

Under Akbar, the dargah assumed special significance. Abul Fazl records: 'On a haunting excursion to Fatehpur, the emperor met a group of minstrels singing hymns in praise of Muinuddin Chishti. Overwhelmed by the saint's spiritual accomplishments, the emperor decided to visit his shrine'.[12] In 1568, when emperor won the battle against Rana Udai Singh of Mewar, he went to the dargah to offer his gratitude and gave a brazen cauldron of gigantic size to the dargah.[13] In January 1562, he paid his first visit and rewarded the servitors of the dargah.[14] Afterwards, he began to pay his homage at least twice or thrice a year. He continued doing so until 1580.[15]

Records suggest that Akbar undertook fourteen pilgrimages. Two of them, those of 1568 and 1574, were made immediately after the conquest of Chittor and Bengal respectively. According to the contemporary historian Mulla Abdul Qadir Budauni, Akbar remarked: 'All this success has been brought therough the Pir Muinuddin Chishti.' His reverence for the Chishti saints increased when Shaykh Salim Chishti, a descendant of Shaikh Fariduddin Ganj-i Shakar (1265), correctly predicted the biurth of Prince Salim. In gratitude, Akbar walked on foot all the way from Agraon 20 January 1570, and, on reaching Ajmer, 'spent several days in devotion and charity.' He returned to the city every year during the years 1570 to 1579. In 1573, he constructed rest houses, towers at every kos, studded with thousands of horns of deer which he had killed during his lifetime. These towers had wells nearby. Budauni wished that 'His Majesty had made gardens and *sarais* instead.' Akbar last visited Ajmer in 1579 to calm the public and make the recalcitrant elements to submit to his authority.

Ajmer became a Suba under Akbar. From this vantage point, he maintained a vigil on the neighbouring states and harness their power, authority, and resources in the interest of the empire. The Suba extended from Bhakkar village and the dependencies of Amber to Bikaner and Jaisalmer (roughly 336 miles). To its east lay Agra, to the north the dependencies of Delhi. The length of the Subah was 336 miles; its breadth 300 miles. Bounded by Agra, Delhi, Multan and Gujarat, it contained 7 *Sarkars* and 197 parganas, with an annual revenue of 28, 61, and 37968 Dams. It furnished 86,500 cavalry and 347,000 infantry; Ajmer's share was 16,000 cavalry and 80,000 infantry. In 1592, Akbar grouped the provinces into four zones. Ajmer, along with Gujarat and Malwa, formed one zone.[16]

Whenever Jahangir stayed at Ajmer, he heard the wide-ranging complaints of his *raiyat*, many of which were directed against the excesses of the officers or the arrogance of the nobles. The fort attracted the attention of Thomas Roe, who presented his credentials to Jahangir on 10 January 1616. He recordeds : The king comes every morning to a Window looking into a plain before his gate and shows himself to the common

people. One day I went to attend him. Coming to the place I found him at the Jharokha window and went on the scaffold under him, which place not having seen before, I was glad of the occasion. On two tresses stood eunuchs with long poles headed with feather fanning him, a venerable flat, deformed old matron, wrinkled and hung with grim belles like an image, pulled up at a hole Shahjahan put up a marble parapet on the 1240 feet long embankment of Anasagar, and built five marble pavilions and hammams in their proximity.[17]

Like individuals and groups, the fortunes of a city change. That was destined to be the fate of Ajmer after Shahjahan. Cities flourish in peace time and with political stability. That is what happened under Shahjahan. But the fortunes of the city took a turn to the worst under Aurangzeb (1658-1707). Conditions were unsettled and civil strife fairly rampant. The emperor was busy quelling rebellions and had very little time to match the burst of activity that had taken place under Akbar, Jahangir, and Shahjahan. After Aurangzeb, the Rajputs vainly atttempted the formation of an independent league for their own defence, in the shape of a triple alliance between the three leading clans—the Sesodia, the Rahtor and the Kachwaha; and his compact was renewed when Nair Shah threw all India into confusion. About 1756, the Marathas gained possession of Ajmer. Sindhia and Holkar ruled at will until Wellesley crippled the former powers in Northern India, and forced him to loosen his hold on the Rajput States in the north-east, with whom the English made a treat of alliance against the Marathas.[18]

Topography: The Aravali range runs throughout the province from north to south dividing the plains of the Rathors, a Suryavanshi clan that ruled the Marwar region, from the high label land of the country of Sisodiyas, the Chattari Rajputs also of the Suryavanshi lineage.[19] After a few miles towards south of Ajmer, it reappears in the form of a compact double range enclosing the Beawar Tahsil near Todgarh, where at Goramji, it attains a height of 3,075 feet, the average level being 1,800 feet above the sea level.[20] Breaking into hills and valleys, the mountains leave behind the southernmost point of Merwara, and finally end to the group of hills known as Abu Raj (Mount Abu).

The ranges divide Ajmer into two parts: Jodhpur, Bikaner and a small part of sarkar Ajmer and Nagaur, a city mentioned in the *Mahabharata*, lay on the western side, which is largely a desert. On the eastern side is Chittor, described as 'the epitome of Chattari Rajpur pride, romance and spirit', Ranthambore, and Kumbhalmer. The highest sections of the Arvalli range lies Northwest of Udaipur between Kumbhalmer and Gogunda, Gurushikhar, the highest peak in Rajputana, is located near Sirohi and Abugarh. The Aravallis offer protection to a number of natural fortresses;[21] Chittor was well-protected from the point of view of external invasions.[22] Similarly, Sarkar Kumbhalmer was a safe shelter place for the Ranas of Mewar.[23] At the same time, the Aravalli range does not form a continuous line to the northeast of Ajmer, but allows for easy passage at more than one point. In the West, the hills rise to above 300 and even 600 meters. Sambhar is the important salt lake in this region. The Luni River rises at Ana Sagar at Ajmer and flows towards the southeast through Jodhpur, Jalor, and Barwar. Chambal, Banas and their tributaries flow through Ranthambore. The Aravalli slopes formed the southeast boundary of the sarkar.

References

1. *E.Thornton, A Gazetteer of Territories under the government of East india Company (London, 1858), p. 517; R.C. .Bramley, Imperial Gazetteer of India: Provincial series Rajputana (Calcutta,1908), p.448.*
2. *Ibid., p.285.*
3. *B.N.Dhoundiyal, Rajasthan District Gazetteers, Ajmer, pp.105, 736-41; G.N. Sharma, Social life of Medieval Rajashtan (Agra,1960), p. 4.*
4. *Muni Jinavija (ed.), Khartarangachachha Brihadgurvavali (Bombay, 1956), p.16.*
5. *Mushirul Hasan & Asim Roy (eds), Living Together Separately (Delhi, 2005), p.151.*
6. *Minhaj us-Siraj, Tabaqat-i-Nasiri (Lucknow, 1911), p. 120.*

7. Hasan Nizami, Taj al-Maasir in Elliot and Downson's History of India (Aligarh, i952), pp.212-218.

8. Firishta, Tarikh-i-Firishta, vol. 2 (Bombay, 1832), p.71.

9. Dashratha Sharma, Early Chauhan Dynasties (Delhi, 1975), p. 107.

10. Imperial Gazetteer, op. cit., p. 153,

11. Ahsan Raza Khan, Chieftains in the Mughal empire; during the reign of Akbar (Shimla, 1977), p.97.

12. Abul Fazl, Akbarnama, vol.ii, p.237.

13. S.A.I.Tirmizi, Ajmer Through Inscriptions (Delhi, 1968) p. 19.

14. Ibid, p.243.

15. Abu Fazl, Akbarnama, vol. 1, trans., H. Beveridge, (Calcutta, 1873), pp. 154-55.

16. A.L. Srivastava, Akbar the great (Agra, 1976), p. 393.

17. Sharda, op.cit., p. 63.

18. This is based on W.W. Hunter, Imperial Gazetteer of India, vol. 11 (London, 1886).

19. C.C.Watson, Ajmer-Merwara Gazetter (Ajmer, 1904), .p. 251.

20. Rajender Joshi, Unniasvi Shatabdi ka Ajmer (Jaipur,1972), p.11.

21. V.C.Mishra, Geography of Rajasthan (Delhi, 1967), pp.23-24, 125,172-73.

22. Chittor was surrounded by Sarkar Ajmer in the north; Jodhpur in northwest; Kumbhalmer and Jodhpur on the west; Suba Malwa in south and southeast. The western part of pargana Dungarpur and nearly the whole of pargana Udaipur lay within the Aravallis. River Chambal is marked as the boundary line between Subas Malwa and Ajmer.

23. The Sarkar Chittor and Kumbhalmer lay to the southeast of Sarkar Jodhpur. it had Ajmer in the east, Nagaur in the northeast and Bikaner in the West. it consisted largely of the basin of the Luni river. The river and its tributaries drain the southeastern area of Jodhpur, Pali, Jalor and Sirohi.

ISSN 2277-5587

Role And Functions of The United Nations In Global World

Dr. Ranjana Garg
Assistant Professor,
B.G.D. Government Girls college, Shahpura

shodhshree@gmail.com

The United Nations is an international organization founded in 1945. It is currently made up of 193 members' states. The mission and work of the United Nations are guided by the purpose and principles contained in its founding charter. The UNO is an inter-governmental organization, hence composed of member-nations which are fully qualified to be called sovereign independent states.

The purposes of United Nations are:

- To maintain international peace and security; and for that aim in views to take effective collective security measures, for prevention and removal of threats to peace.
- To develop friendly relations among nations.
- To achieve international cooperation in solving economic, social, cultural and humanitarian problems.
- To be a center for harmonizing the actions of nations in the attainment of these common ends.

Thus, the United Nations is a necessity for maintenance of international peace, for protection of human rights, and for socio-economic development of the members-states.

Organization and Administration:

The Uno is Inter-Governmental organization, hence composed of member nations which are fully qualified to be called sovereign independent states. The UN consists 6 principal organs specialized agencies and other subsidiary organs which may be created of the principal organs for the realization of their different tasks.

Organization of the United Nations:

The UN consists 6 principal organs

1. The General assembly

2. The Security Council

3. The Economic and Social Council

4. The Trusteeship Council

5. The international court of justice

6. The UNsecretariat

In order to handle the complex task of getting its member states to cooperate most efficiently, the UN today is divided into six branches.

- The first is the UN General Assembly. This is the main decision-making and representative assembly in the UN and is responsible for upholding the principles of the UN through its policies and recommendations. It is composed of all member states, is headed by a president elected from the member states, and meets from September to December each year.
- The UN Security Council is another branch in the organization of the UN and is the most powerful of all the branches. It has power to authorize the deployment UN member states' militaries, can mandate a cease-fire during conflicts, and can enforce penalties on countries if they do not comply with given mandates. It is composed of five permanent members and ten rotating members.
- Assign promoting economic and social development as well as cooperation of member states.
- The trusteeship council is the counterpart of the mandatory council of the League of Nations and has similar functions. It administers, under the control of the United Nations, the non-autonomous territories which are placed under the care of a trustee state. The trusteeship council receives annual reports from the states entrusted with the administration of territories, receives petitions from individuals or group in the trust territories and organizes periodical visits to these territories. The council in turn presents its report to the general assembly.
- The next branch of the UN is the International Court of Justice, located in The Hague, Netherlands. This branch is responsible for the judicial matters of the UN.
- Finally, the Secretariat is the branch UN headed by the Secretary General. Its main responsibility is providing studies, information, and other data when needed by other UN branches for their meetings.

United Nations Membership:

Almost every fully recognized independent states are member states in the UN. As outlined in the UN Charter, to become a member of the UN a state must accept both peace and all obligations outlined in Charter and be willing to carry out any action to satisfy those obligations. The final decision on admission to the UN is carried out by the General Assembly after recommendation by the Security Council.When the UN was founded. Each of 193 members' states of the United Nations is a member of the general assembly. States are admitted to membership in the UN by a decision of the General assembly upon the recommendations of the Security Council.

Specialized Agency of UN:

The specialized agencies of the UN can be classified into four categories:

1. Those that are concerned with technical matters such as the International civil aviation organization. (ICAO), the International telecommunication union (ITU).
2. Organizations that are engaged in social and humanitarian activities like the international labor organization (ILO),the United Nations Educational, scientific and cultural organization (UNESCO),the world health organization (WHO).
3. Organizations that tackle the financial problems such as the International bank for reconstruction and development (IBRD), the International development agency (IDA).
4. Organizations concerned with economic

ISSN 2277-5587

problems such as the internationaltrade organization (ITO), the International monetary fund (IMF), the food and agricultural organization. (FAO).

Important functions of the United Nations:

- The primary functions of the United Nations are related to the declared objective to save the succeeding generations from the source of war. Thus peaceful settlement of international disputes is the main responsibility of the United Nations.
- Secondly in case a war breaks out or an act of aggression is committed, the United Nations, the united nations seeks to end the arm conflict. if it becomes unavoidable, the United Nations measures of collective security to ensure vacation of aggression through collective use of force against the aggression.
- Thirdly, the United Nations has performed the peace-keeping functions in a number of cases. When a war or an armed conflict, is brought to an end, the peace-keeping becomes a pre-condition for restoration of normalcy. Third function requires assembly of peace –keepers from different countries of the world and their proper utilization in maintaining peace in the region.
- In accordance with article1(3) of the charter the united nations has been making numerous efforts for the solution of international problem of economic, social, cultural and humanitarian charter. The coordination of various socioeconomic activities is organized by the economic and social council. The ECOSOC coordinates the activities of several functional and regional corporations mentioned above. There are several specialized agencies like ILO, WHO, FAO, UNESCO etc. who are engaged in tackling the problems such as health care, protection of the interests of the working class, tackling food shortages, coordination of educational, scientific and cultural programs and protection of children etc.
- Fifthly, the charter says that one of the purposes of the U.N. is to promote and encourage respect for human rights and for fundamental freedoms for all….." Accordingly, the United Nations constituted the human rights commission which drafted the universal declaration of human rights. The declaration was adopted by the general assembly on December 10, 1948.

The Assessment of the UN:

The United Nations organizations which succeeded the League of Nations after World War II was based on the central assumption that continued peace would depend on cooperation among the World War II allies in resisting aggression by the fascist states and by any later states which had adopted a similarly aggressive world outlook. The postulate on which the organization was conceived at San Francisco was the continued alliance of the two superpowers. Any decision of the UN which lacked the approval of the major power-the five permanent members of the Security Council-would thus be ineffective and the veto power of the big five of the Security Council was an acknowledgement of this fact. However, the evolution of international relations in the post-second world war period nullified all hope of superpower cooperation. The cold war changed the perspective of the international organization. In the context of superpower rivalry for new areas of influence geographical and ideological-the Security Council, the principal organ entrusted with the maintenance of peace, could not function as the charter intended. The exercise of veto power by the big powers could paralyse the Security Council and in any even no action could be taken in any conflict in which one of the big powers was involved.

Functions of the United Nations Today :

As it was in the past, the main function of the UN today is to maintain peace and security for all of its member states. Though the UN does not maintain its own military, it does have peacekeeping forces which are supplied by its member states. On approval of the UN Security Council, these peacekeepers are often sent to regions where armed conflict has recently ended to discourage combatants from resuming fighting. In 1988, the peacekeeping force won a

Nobel Peace Prize for its actions.

In addition to maintaining peace, the UN aims to protect human rights and provide humanitarian assistance when needed. In 1948, the General Assembly adopted the Universal Declaration of Human Rights as a standard for its human rights operations. The UN currently provides technical assistance in elections, helps to improve judicial structures and draft constitutions, trains human rights officials, and provides food, drinking water, shelter, and other humanitarian services to peoples displaced by famine, war, and natural disaster.

Finally, the UN plays an integral part in social and economic development through its UN Development Program. This is the largest source of technical grant assistance in the world. In addition, the World Health Organization, UNAIDS, The Global Fund to Fight AIDS, Tuberculosis, and Malaria, the UN Population Fund, and the World Bank Group to name a few play an essential role in this aspect of the UN as well. The UN also annually publishes the Human Development Index to rank countries in terms of poverty, literacy, education, and life expectancy.

For the future, the UN has established what it calls its Millennium Development Goals. Most of its member states and various international organizations have all agreed to achieve these goals relating to reducing poverty, child mortality, fighting diseases and epidemics, and developing a global partnership in terms of international development by 2015. Some member states have achieved a number of the agreement's goals while others have reached none. However, the UN has been successful over the years and only the future can tell how the true realization of these goals will play out.

Conclusion:

While one must admit that the United Nations has failed to "settle", definitely, a single dispute brought before it, this is not to say that it has not relived tensions in many crucial situations. The United Nations encourages the parties to a dispute to "seek a solution by negotiation, enquiry, mediation, conciliation, arbitration, judicial settlement, resort to regional agencies or arrangements, or other peaceful means of their own choice"(Article 33 of the charter).in other words, the role of the UN is an intermediary one, and only when all other procedures for peaceful settlement have been exhausted is the security council requested to invoke the more stringent provisions. moreover, it is well to again that the council cannot act unless all the great powers are ready and willing to support its action. Although the UN does not have many striking successes to its credit in handling of political disputes, its services as a mediator have been valuable in several instances. The UN specialized agencies as part of the UN system perform a variety of functions. They constitute the non-political institutions of the system, yet they are not insulate form political struggles-east-west conflicts, north-south conflicts.

References

1. *"UnitedNations: then and now", international studies. A publication of the Indian school of international studies, NewDelhi.*
2. *Wilcox, franciso.o, proposalsfor changes in the United NationsWashington, D.C.: broking institutions.*
3. *Norman d. palmer. Howard c. Perkins, international relations, CBH publishers and distributors, New Delhi.*
4. *R.k.puhorit, International relations, Mohitpublications, New Delhi.*
5. *Nau, Henry R. Perspectives on International Relations: Power, Institutions, Ideas.*
6. *Roskin, Michael G., and Nicholas O. Berry. IR: The New World of International Relations (8th Ed).*

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

Shodhshree@gmail.com

Individual Subscription Form

Name ....

Designation ....

Name of Organization ....

....

Address ....

....

District ....

State

....

Pin ....

Tel. No. (R) ....

Mobile ....

e-mail ....

Date (Signature)

Frequency	:	Shodh Shree is Published four time in a year (Quarterly) i.e. January, April , July & October.
Mode of Payment	:	Subscription fee can be deposit through online Banking.
Bank Details	:	Virendra Sharma, OBC Bank, Adarsh Nagar, jaipur SB A/C No. 06722151002965, IFSC Code ORBC 0100672, MICR Code 302022005 Subscription Fees 1200 Rs

Membership No. .... Date ....

(For Office Use only)

DECLARATION FORM FOR CONTRIBUTORS

I...

hereby declared that the paper entitled'..

......................................'is unpublished original paper which is not sent any where

for publication.

This paper is prepared by me/jointly with...

....which is

exclusively for your journal entitle 'Shodh Shree'.

I/We will not demand any honorarium for the same expect one copy of the

Journal in which this paper will appear. Please send copy of the Journal at the address of author whose name is appeared at first,

Copy right of matter is with Shodh Shree. I/We will not reproduce it in any other journal of book except prior permission of the Chief Editor.

Signature ....

Name ....

Designation ....

Official Address ....

....

Residential Address ....

....

....

Phone No. .... Pin No. ....

e-mail Address ....

Shodh Shree

(International Refereed Journal of Multidisciplinary Research)

ISSN 2277-5587 RNI No. RAJHIN / 2011 / 40531

54A, Jawahar Nagar Colony, Tonk Road, Jaipur - 302018

Shodhshree@gmail.com

Institution Membership Form

The Editor
Shodhshree
Jaipur

Dear Sir

I want to become a member of this Journal for -

☐ 1 year (Rs. 1000/-)	☐ 2 years (Rs. 1800/-)	☐ 3 years (Rs. 2500 /-)

I am sending here with Rs............ through online banking/cash for membership of your Journal.

Name of Institution ....

....

Address..

.... Pin Code..............................

Phone/Mobile No. ....

E-mail ID ....

Date: Signature

For Office Use Only

Membership No. ___________ Date ___________

Frequency	:	Shodhshree is Published four time in a year(Quarterly) i.e. January, April, July, October.
Mode of Payment	:	Subscription fees can be deposit through online Banking.
Bank Details	**:**	**Cheque /DD must be in Favor of Virendra Sharma** ,OBC Bank, Adarsh Nagar, Jaipur **SB A/C NO.06722151002965** IFSC Code ORBC0100672, MICR Code 302022005

Guidelines for the Contributors

1. All research paper must be typed in Microsoft Word and use KRUTI DEV 010 font for Hindi or Times New Roman Font for English can submit by C.D. or through e-mail.
2. A separate list of references should be given at the end of the paper and not at each page. Footnotes may be given on the same page if any technical term needs some explanation.
3. Table, Model, Graph or Chart should be on separate pages and numbered serially with appropriate heading.
4. Maximum word limit of research paper up to 1500 words.
5 Special care should be taken to avoid spelling errors and grammatical mistakes in the paper otherwise it will not be accepted for publication.
6. The author(s) should certify on a separate page that the manuscript is original and it is not copyrighted.
7. The copyright is Reserved for 'Shodhshree' for All Research papers and Book Reviews, published in this journal.
8. Publication of research paper would be decided by our editorial board or subject specialist.

Book Review : For Book Review to be included in this journal only reference books and research publications are considered. One copy of each such publication must be submitted to the Editor.

Note : Shodh Shree have copyright on papers published in the journal therefore, prior permission is necessary for reproduction of paper, anywhere by author or other person. However, papers published in the journal may be freely quoted in further study. All disputes are subject to jaipur jurisdiction.

Research Paper may be sent to our e-mail: shodhshree@gmail.com
For any assistance, Please Contact Dr. Ravindra Tailor - 09413224134

To,

प्रिन्टेड मैटर
If undelivered please return to :

शोध श्री (त्रैमासिक)
54-ए, जवाहर नगर कॉलोनी
टोंक रोड, जयपुर-302018

स्वात्त्वाधिकारी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रधान सम्पादक – वीरेन्द्र शर्मा के लिए मुद्रित व 54-ए,
जवाहर नगर कॉलोनी, टोंक रोड, जयपुर-302018 मो. 9460124401 से प्रकाशित।
मुद्रण स्थल आकृति एड्वरटाईजर्स, जयपुर